भाईजी
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
संक्षिप्त जीवन-परिचय

गो० श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी

द्वारा संग्रहीत सामग्रीका संशोधित एवं संवर्धित रूप

❀ श्रीहरिः ❀

भाईजी
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
संक्षिप्त जीवन परिचय

गोलोकवासी श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी
द्वारा संग्रहीत सामग्रीका संशोधित
एवं संवर्धित रूप

प्रकाशक एवं वितरक

साहित्य मन्दिर
गीता वाटिका,
गोरखपुर २७३००६

पुस्तक प्राप्तिके अन्य स्थान

१. भारतीय ग्रामोद्योग वस्त्र भण्डार
१८७ दादी सेठ अग्यारी लेन, बम्बई —२
२. श्रीमनोहरलालजी चौधरी (फोन नं० ३४०२९३)
५३ विवेकानन्द रोड, कलकत्ता —६
३. श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-सेवा-सङ्घ
मथुरा
४. श्रीमगनलालजी गाँधी
हुकमचन्द शिवनारायण गाँधी
नाहटा मोहल्ला, बीकानेर
५. श्रीशिवकुमार दुजारी (फोन नं० ८४४१३०)
के० आई० १५५, कवि नगर, गाजियाबाद

आश्विन कृष्ण द्वादशी श्रीभाईजी जयन्ती सं० २०४१
प्रथम संस्करण—५१००
मूल्य आठ रुपये

मुद्रक—पार्थ सारथि प्रेस
चन्द्रशाला, बेतियाहाता, गोरखपुर फोन नं० ५६२३

श्रीहरिः

नम्र निवेदन

भगवान्‌के प्रेमी-भक्तका स्मरण भगवत् प्रीतिदायक होता है। प्रेमभक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके जीवन-वृत्तका पठन-मनन भगवान्‌के प्रति अहैतुकी प्रीतिका दान करनेमें समर्थ है। हम केवल ऐसा ही न समझ लें कि वे उच्चकोटिके योगभ्रष्ट जीवके रूपमें इस भूतल पर आकर अपनी कठोर साधनासे सर्वोच्च स्थितिको प्राप्त हो गये, वास्तवमें तो उनके आविर्भाव-के प्रयोजनका सच्चा आकलन भी हमारे-जैसे जीवोंके मन, बुद्धिके द्वारा सम्भव नहीं है। इस गूढ़ रहस्यको ही नहीं अपितु अपनी साधनाकी स्थितिको भी अपने निकटतम रहनेवाले लोगोंसे भाईजीने गोपनीय बनाये रखा। इनके नित्यलीलामें लीन होनेके कुछ दिनों पूर्व इन्हींके शब्दोंमें इसका किञ्चित् संकेत मिलता है। आषाढ़ शु० ५ सं० २०२६ के एक गोपनीय पत्रमें वे लिखते हैं—

"जिस कार्यके लिये इस पाञ्चभौतिक शरीरके माध्यमसे मुझे भेजा गया था, उनका वह कार्य पूरा हो गया। जो कुछ मेरे द्वारा होना अभीष्ट था वह हो गया। उसका फल निश्चय ही बहुत ही श्रेयस्कर 'उनके' इच्छानुसार हुआ है। पर वह क्या है, आगे क्या होगा, यह जाननेकी न मुझे आवश्यकता है न इच्छा।" [भाईजी: पावन स्मरण पृष्ठ ५३६]

इसी तरह उन्होंने अपने वसियतनामेमें भी संकेत किया है--

"वास्तवमें इस पाञ्चभौतिक शरीरसे अपने कर्मके अतिरिक्त मेरे द्वारा कुछ 'विशेष कार्य' करवानेकी योजना थी, उनकी कृपा एवं शक्तिसे उनका काम बहुत अंशमें पूरा हो गया। यद्यपि मैंने जितना चाहा था, जैसा चाहा था, वैसा नहीं हो पाया। यों तो जितने लोग मेरे सम्पर्कमें आये हैं, उनका कुछ-न-कुछ कल्याण तो अवश्य ही हुआ है, और होगा...........।

यद्यपि जगत्के मङ्गलके लिये जो कुछ हुआ है, वह बहुत दूर-दूर तक हुआ है तथा उसका प्रभाव व्यापक तथा दीर्घकाल तक रहेगा। 'वह क्या है, कैसा है'—यह न मैं पूरा जानता हूँ न जाननेकी इच्छा है। हाँ, इतना जानता हूँ कि वह प्रभुका कार्य है और महान् है।"

अब इस 'विशेष कार्य'के सम्बन्धमें हम लोग अपने रज-तमाच्छादित मन, बुद्धिके द्वारा कितनी भी कल्पना करें फिर भी हम लोग उसका स्पर्श नहीं कर पायेंगे। उनका 'विशेष कार्य' वास्तवमें कल्पनातीत है।

एक ऐसे संत जिन्होंने शास्त्रोंका गहरा अध्ययन किया और भाईजीको बहुत निकटसे लम्बे समय तक देखा, उन्होंने कहा—"आज तक इस पारमार्थिक स्थितिका वर्णन मैंने किसी शास्त्रमें नहीं पढ़ा है और चैतन्य महाप्रभुके सिवा किसी भी भक्तके जीवनमें इस स्थितिका संकेत प्राप्त नहीं होता। मैं यह नहीं कहता कि जगत्के इतिहासमें भाईजीका पहला उदाहरण है। ऐसे कुछ बिरले महात्मा हुए होंगे पर वह बात

प्रकाशमें नहीं आयी और ऋषियोंने जान-बूझकर मालूम पड़ता है, शास्त्रमें इस स्थितिका उल्लेख नहीं किया और कहीं हुआ भी हो तो मेरी दृष्टिमें नहीं आया।"

भाईजीके जीवनमें जिस सर्वोच्च स्थितिके दर्शन होते हैं, वह शब्दोंमें तो आ नहीं सकती। संकेत करनेके उद्देश्यसे शाखाचन्द्र न्यायके अनुसार उसे 'भाव समाधि' या 'भागवती स्थिति' या 'महाभावमयी स्थिति' कुछ भी संज्ञा दे सकते हैं। वह सर्वोच्च स्थिति उन्हें सहज प्राप्त थी। एक विशेष बात और—वे चाहते थे जबरदस्ती वृत्तिको 'इधर' रखकर सुचारु रूपसे भगवान्‌का कार्य सम्पादन करना और वह वृत्ति चली जाती थी बरबस 'उधर' (भाव राज्यमें)। भाईजी इस स्थितिको सर्वथा अनिर्वचनीय और अचिन्त्य ही कहते थे। ऐसा तो बहुत-से संतोंके जीवनमें देखनेको मिलता है कि बिना किसी प्रयत्नके लीला दर्शन होने लग जाय एवं स्वयं भी लीलामें सम्मिलित होकर रस लेने लगे, पर वृत्तियोंको सङ्घर्षपूर्वक यहाँ लगाने पर भी बलात् जब चाहे, तब १५-२० घण्टों तक 'भाव समाधि' की स्थिति अनायास हो जाना ऐसा मेरे देखने सुननेमें नहीं आया।

इसी गूढ़ रहस्यका एक छोटा-सा संकेत मिलता है नारद भक्ति-सूत्रकी व्याख्यामें। इन सूत्रोंकी व्याख्या भाईजीने अपनी साधनाकी प्रारम्भिक अवस्थामें शिमलापालमें लिखी जब उनकी उम्र २५ वर्षकी थी। बादमें यही व्याख्या कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ 'प्रेम दर्शन' नामसे पुस्तकरूपमें गीताप्रेससे प्रकाशित हुई। इसमें उल्लेखनीय बात यह है कि शिमलापालमें तो भाईजीने अपनी साधना प्रारम्भकी थी, उस समय प्रेमाभक्तिकी ऐसी गहरी सैद्धान्तिक व्याख्या

कैसे सम्भव हो पायी, जिसे अपने प्रौढ़ आध्यात्मिक जीवनमें भी वे उसी रूपमें अपनाये रहे और आदर करते रहे। इससे यही संकेत मिलता है कि भगवान्ने जिस कार्यके लिये उनका चयन किया था उसका श्रीगणेश सहज रूपसे जीवनके प्रारम्भ कालमें हो गया।

एक बात और ध्यान देने योग्य है इनकी सर्वोच्च स्थिति-के बारेमें। उनके जीवनमें प्रगति एवं उत्थानके जो सोपान हैं, उनमें एक क्रम है और एक सहजता है। जिस भगवदीय दिव्य कार्यके लिये उनका आविर्भाव हुआ था, यदि वैसा ही दिव्य जीवन प्रारम्भसे ही सामने आ जाता तो वह हमारे लिये आदरणीय होता पर अनुकरणीय नहीं। उसे पढ़-सुनकर पवित्र तो हो जाते पर उसका अनुकरण करनेमें कठिनता आती। उस दिव्य जीवनको देखकर सहज ही मनमें यह बात आती कि हम ऐसे नहीं बन सकते। इसलिये भगवान्ने उनके माध्यमसे ऐसी जीवन लीला प्रस्तुत की जो पढ़-सुनकर पवित्र होनेके साथ ही परम अनुकरणीय भी हैं। उदाहरणार्थ जब इन्होंने शिमलापालमें साधना प्रारम्भ की तो वे कहते थे ध्यानसे कई बार मन उचट जाता था पर करीब ६ महीने बाद ही ध्यान होने लगा और चाहे जहाँ खुली आँखोंसे भगवान् विष्णुका श्रीविग्रह दिखायी देने लगा। ऐसे ही जीवनके समस्त व्यापार रहे। नृत्य होता है वेशके अनुसार तभी वह खिलता है। "जस काछिह तस चाहिअ नाचा" इस उक्तिके अनुसार भाईजीकी जीवन चर्या बहुत समय तक साधारण मानवकी भाँति रही। हँसने वालेके साथ हँसे, रोनेवालेके साथ रोये। आदर्श गृहस्थकी तरह बाहरका जीवन व्यतीत किया। आदर्श सन्यासीका जीवन

व्यतीत करना उतना कठिन नहीं है, जितना आदर्श गृहस्थ का। जिन्होंने भाईजीको निकटसे देखा है वे जानते हैं कि किसीपर भी उन्होंने शासन नहीं किया। कुछ कहना भी हुआ तो बड़ी मीठी भाषामें कह दिया—कोई उसे माने या न माने। जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके जीवनमें आदर्श नर और नारायणकी लीला एक साथ चलती रही वैसा-सा आभास भाईजीके जीवनमें देखनेको मिलता है। उनके वास्तविक स्वरूपकी कोई कल्पना भी नहीं कर सका। जैसे पत्थरोंके ढेरमें पारस पड़ा रहा। जो निकट सम्पर्कमें आये, वे अपने भावानुसार अनुभूति करते रहे। किसीने उनको विद्वान्के रूपमें देखा, किसीने सेवा परायण, किसीने सुयोग्य सम्पादक, किसीने अपना आत्मीय स्वजन, किसीने आदर्श गृहस्थ, किसीने दानवीर, किसीने सच्चा सन्त, किसीने उच्चकोटिका व्रज-प्रेमी रसिक और किसी-किसी बिरलेको राधा हृदयकी झाँकी उनके अन्दर मिली।

भाईजीने अपनी महानता कभी भी स्वीकार नहीं की। परन्तु कभी-कभी अत्यन्त भावुक प्रेमीजनोंके समक्ष कुछ संकेत हो जाता था—सर्वथा न चाहनेपर भी जगन्नियन्ताकी इच्छासे। लगभग ४० वर्ष पूर्व ऐसे ही कुछ भावुक प्रेमीजन भाईजीको घेरे हुए प्रेम चर्चा कर रहे थे। एक व्यक्ति भाईजीसे बार-बार आग्रहपूर्वक प्रार्थना कर रहा था कि महाप्रभु चैतन्यकी लीलाका पुनरावर्तन होना चाहिये। भाईजी बराबर स्वाभाविक उत्तर दे रहे थे—कहाँ चैतन्य और कहाँ मैं। पर आग्रह चालू रहा, अन्तमें भाईजीने धीरेसे कहा—देखिये लीला होती है परिकरोंके साथ, कहाँ है

नित्यानन्द प्रभु, कहाँ हैं अद्वैताचार्य, कहाँ हैं श्रद्धामय वातावरण आदि । सभीने सिर झुका लिया, कोई उत्तर तो था नहीं ।

भाईजीके उस दिव्य स्वरूपकी झाँकीको इस लघु पुस्तिकाके माध्यमसे प्रस्तुत कर सकना न तो सम्भव है, न इसका उद्देश्य ही । यह बात कई स्वजनोंके मनमें खटकती थी कि कोई ऐसी लघु पुस्तिका वर्तमानमें उपलब्ध नहीं है कि जिससे नवीन पाठकोंको भाईजीके जीवनका संक्षिप्त परिचय मिल सके । ऐसे कई स्वजनोंकी इच्छाको देखकर उस रिक्त स्थानकी पूर्तिका यह बालकोचित प्रयास किया गया है । इस पुस्तिकासे यदि किसीको भाईजीके जीवनकी गहराईमें अवगाहन करनेकी प्रेरणा मिलती है तो यह प्रयासकी सफलताका परिचायक होगा । प्रस्तुत सामग्री मुख्यतः श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीका संग्रह ही है पर अन्य प्रकाशित सामग्री––"भाईजीः पावन-स्मरण," "कल्याण पथः निर्माता और राही," "माँ और बाबूजी" आदिसे भी सहायता ली गयी है । इस पुस्तकमें भाषाकी शिथिलता, विषयोद्घाटनकी शिथिलता, वर्णन प्रवाहकी शिथिलता इस प्रकारकी अनेक न्यूनताएँ पाठकके ध्यानमें आ सकती हैं । पुस्तकमें जो भी प्रूफ संशोधन सम्बन्धी या अन्य त्रुटियाँ रह गयी हो उसके लिये कर-बद्ध क्षमा याचना ।

जयदयाल डालमिया

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या

—:○:—

श्रीहरिः

अन्तस्तलका एक स्पन्दन

स्वामिन् !

आज एक दुस्तर जलधिको तिनकेके सहारे पार करने-की कामनासे उद्यत हुआ हूँ। नहीं जानता कैसी आपदाओंको सहन करना पड़ेगा, नहीं मालूम किन कठिनाइयोंसे गुजरनेकी नौबत आयेगी। अज्ञ, अबोध, ढीठ बालक हूँ, पर आगे बढ़ानेमें ही मौज मालूम होती है। गड्ढेमें गिरूँगा कि सफलताके मधुरानन्दका उपभोग करूँगा, इसका पता नहीं केवल स्वाभाविक चञ्चलतावश सदासे हठ करना ही सीखा है और आगे बढ़ रहा हूँ।

पर नाथ ! हृदयमें भरोसा, विश्वास और दृढ़ता है। आपके वरदहस्तकी छत्र-छायाको बार-बार अनुभव कर रहा हूँ। हृदयमें उल्लासके साथ ही एक अनिर्वचनीय दिव्य शक्तिका अलौकिक प्रभाव प्रत्येक क्षण प्रोत्साहित कर रहा है। पद-पदपर आनन्दकी उत्ताल तरङ्गोंमें बहा जा रहा हूँ। आगे बढ़नेका विचार उठते ही मूर्तिमान् उत्साह बलात् खींचे लिये जा रहा है। आपकी कृपावलम्बनरूपी सुदृढ़ नौकापर आरूढ़ होकर इस अगाध सागरमें उतर पड़ा हूँ। नाथ ! अब संभालना, इस नौकाके खिवैया तुम्ही हो, मैं कहीं रास्तेकी भीषणतासे भयभीत हो व्याकुल हो जाऊँ तो मुझे सान्त्वना देना अब आपका काम है। क्षमा करना नाथ ! बालककी धृष्टताको।

तुम्हारा ही
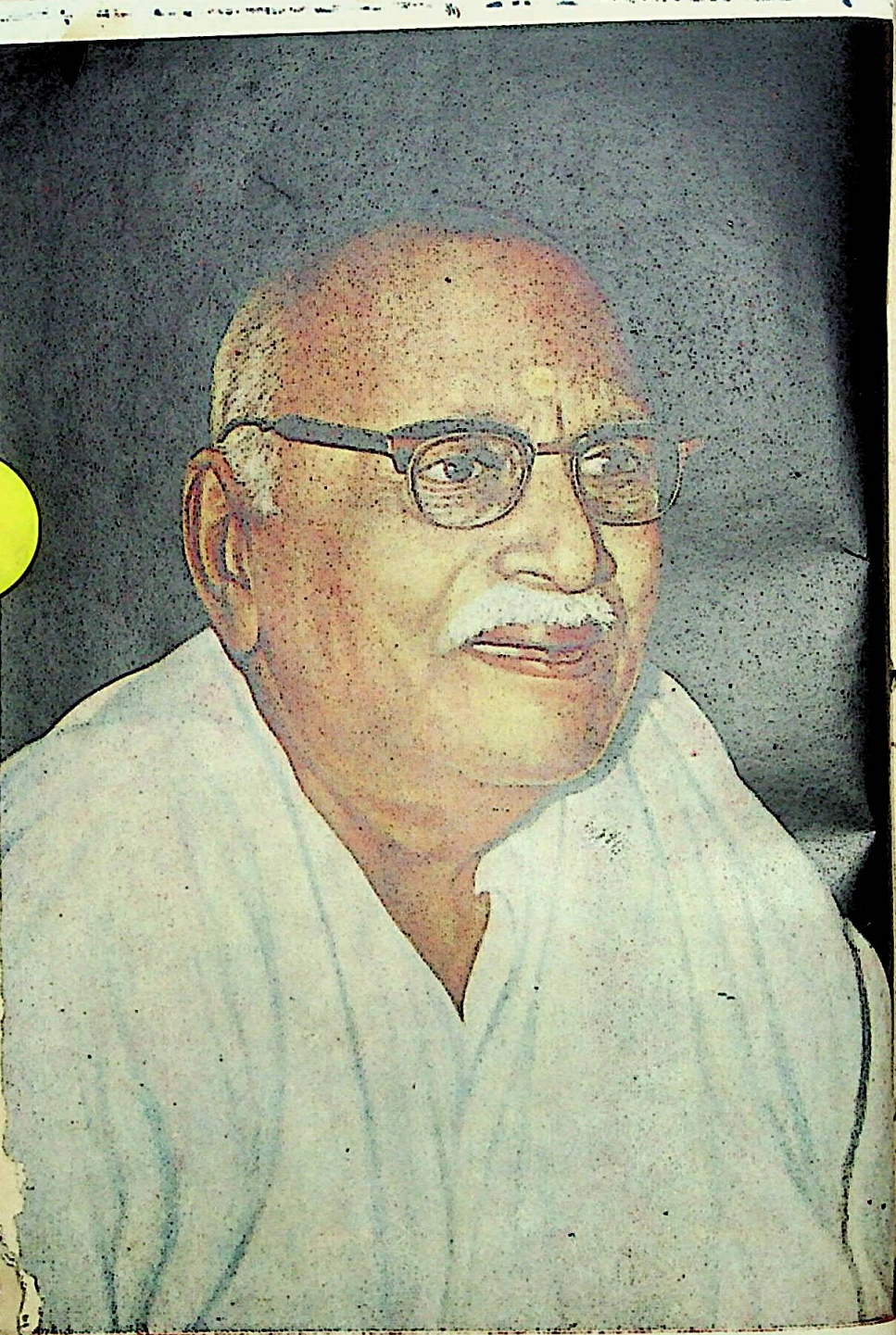
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

श्रीहरिः

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार—संक्षिप्त जीवन-परिचय

प्राक्कथन

"तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्"

देवर्षि श्रीनारदजीके इस सूत्रके अनुसार श्रीभगवान् और उनके परम भक्तमें भेदका अभाव होता है। इसलिये किसी संत-महापुरुषकी जीवनकथा लिखनेकी चेष्टा करना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य है। संतके जीवनकी प्रत्येक क्रियाका संचालन होता है श्रीभगवान्‌केद्वारा। अतः उसका यथार्थ चित्रण करना असम्भव-सदृश ही है। फिर भाईजी श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दार-जैसे परम भागवतके बारेमें कुछ लिखना और भी कठिन है; क्योंकि उन्होंने स्वयंको अन्ततक अत्यन्त गोपनीय रखा। वैसे तो भारतभूमि कभी संतोंसे रहित नहीं हुई, पर ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं प्रेमसे ऐसा समन्वित जीवन बहुत ही कम दृष्टिगोचर होता है। भाईजीने भगवान्‌की अलौकिक कृपासे अन्तर्जगत एवं बाह्य जगतके समस्त तत्त्वोंको सहज ही उपलब्ध कर लिया था।

भाईजीकी एक अद्वितीय विशेषता यह थी कि जो भी उनके निकट सम्पर्कमें आये—वे सिद्ध हों या साधक, साधनसम्पन्न हो या साधनहीन, उद्योगपति हों या राज-

नीतिक नेता, गृहस्थ हों या संन्यासी—किसी भी क्षेत्र या परिस्थितिमें वे क्यों न हों—सभी भाईजीके प्रति आकर्षित हुए बिना वे नहीं रह सके। इसका वास्तविक कारण बताना तो कठिन है, पर एक परिभाषासे यह कहा जा सकता है कि उनके भीतर श्रीप्रिया-प्रियतम अनावृत थे। अथवा यह कहा जा सकता है कि सभीको उनसे वह वस्तु मिलती थी, जो वे चाहते थे। किसी भी श्रेणीका साधक उनके पास कठिन-से-कठिन समस्या लेकर पहुँच जाता, चंद मिनटोंमें वह साधनका निरापद मार्ग पा लेता। जटिल-से-जटिल घरेलू समस्या लेकर जानेवालेका समाधान करते भी उन्हें समय नहीं लगता था। उद्योगपति उनसे अपनी समस्याओं-का हल पाते थे तथा राजनीतिक नेता अपनी गुत्थियोंका समाधान। निराश्रयको आश्रय, रोगग्रस्तको औषधि, आपद्-ग्रस्तको शान्ति, धनहीनको धन और इसी तरह न जाने किस-किसको क्या-क्या मिल जाता था उनसे; एवं लौटते समय सभी अपनेको सौभाग्यशाली मानते थे। इन सबके साथ ही प्रत्येकको मिलता था एक दिव्य स्नेह, जिसका निरुपण शब्दोंसे नहीं हो सकता। तुलसीदासजीने भगवान् श्रीरामके स्वभावके सम्बन्धमें जो चौपाई लिखी है वह मानो भाईजीके लिये ही लिखी गयी हो—

अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ।
केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥

भाईजीने विश्वको क्या दिया इसका वास्तविक आकलन शायद ही कोई कर सके।

वंश परिचय

शास्त्रकी यह स्पष्ट उद्घोषणा है—वे माता-पिता, वह कुल, वह जाति, वह समाज, वह देश धन्य है, जहाँ भगवत्-परायण परम भागवत महापुरुष आविर्भूत होते हैं। राजस्थानके बीकानेर जिलेमें रतनगढ़ एक छोटा प्रसिद्ध शहर है। भाईजीके पितामह सेठ श्रीताराचन्दजी पोद्दारकी गणना नगरके इने-गिने व्यापारियोंमें थी। वे बड़े ही धर्म-प्राण थे। उनके दो पुत्र थे—कनीरामजी और भीमराजजी। श्रीभीमराजजीको ही भाईजीके पिता होनेका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीकनीरामजी पिताकी अनुमति प्राप्त करके आसाम व्यापार करने चले गये। रतनगढ़से शिलंग जानेवाले मारवाड़ी व्यापारियोंमें ये सर्वप्रथम थे। वहाँ इन्हें सेनाको खाद्य-सामग्री पहुँचानेका ठेका मिल गया। काम बढ़ जानेसे उन्होंने पूरे परिवारको वहीं बुला लिया। श्रीकनीरामजीके कोई सन्तान नहीं थी, अवस्था भी अधिक हो गयी थी, अतः छोटे भाई भीमराजजीको ही उन्होंने दत्तक पुत्र मान लिया। जैसे आम आमके ही वृक्षमें फलता है, वैसे ही भाईजीका कुल भी दैवी सम्पदाओंसे सम्पन्न था। श्रीकनीरामजीकी रामचरितमानसमें अगाध श्रद्धा थी। ये उसका नियमितरूपसे पाठ करके ही अन्न ग्रहण करते थे। इनकी पत्नी पूजनीया रामकौरदेवी तो संत सदृश थीं। सामान्य पढ़ी लिखी होनेपर भी सत्संग तथा स्वाध्यायसे धार्मिक ग्रन्थोंका मर्म ग्रहण करनेकी उनमें अच्छी क्षमता थी। श्रीहनुमानजी उनके इष्ट थे। मानस-पाठ और नामजपमें अत्यधिक श्रद्धा थी। जबतक वे रतनगढ़में रही गृहकार्यसे

अवकाश पाते ही वे संतोंके चरणोंमें उपस्थित हो जाती। हर महीने घरमें ब्राह्मण भोजन कराती। अनेक प्रकारसे गुप्तदान भी किया करतीं। कलकत्तामें रहतीं तो प्रातः गङ्गा स्नान करने साढ़े तीन बजे श्रीसांवलियाजीके मन्दिरमें पहुँच जातीं। मङ्गला-आरतीके दर्शन करके श्रीहनुमानजी एवं श्रीसत्य-नारायणजीके मन्दिर दर्शन करने जातीं।

श्रीभीमराजजी बहुत अच्छे सत्सङ्गी थे। सनातन धर्मकी रक्षाके लिये उन्होंने कलकत्तेमें 'सनातन धर्म पुष्टिकारिणी सभा' की स्थापना की। ऋषिकेश-स्थित कैलाशाश्रमके प्रसिद्ध महन्त एवं विद्वान पूज्य श्रीजगदीश्वरानन्दजीने जब सन्यास लिया तो पहले-पहल होशियारपुर (पंजाब) से श्रीभीमराजजीके पास आये। ईमानदारी इनकी अद्वितीय थी। भूलसे भी परायी चीज घरमें आ जाय तो सहन नहीं होती। एक दिनकी घटना है—कलकत्तेमें कपड़ेका व्यापार था। एक पुर्जेमें भूलसे एक सौ रुपये जोड़में अधिक लग गये। भुगतान देनेवाले व्यापारीके यहाँ भी भूल हो गयी और एक सौ रुपये अधिक आ गये। इनके यहाँ केवलसिंह नामका एक व्यक्ति हिसाबका काम देखता था। दो दिन बाद उसके ध्यानमें वह भूल आयी तो उसने सारी बात श्रीभीमराजजीको बता दी। सुनते ही श्रीभीमराजजी बोले—एक सौ रुपये अधिक क्यों आ गये ? जाओ अभी लौटाकर आओ। उसने कहा—'अभी तो शाम हो गयी है…।' वह पूरा बोल भी नहीं पाया था कि श्रीभीमराजजी बोले—शाम हो गयी तो क्या हुआ ? अभी तुरन्त देकर आओ। बिना दिये हम रोटी नहीं खायेंगे। यह पैसा हमारे घर दो दिन

रहा, अतः दो दिनका ब्याज भी देकर आओ। यह है उनकी ईमानदारीरका एक नमूना। ये सभी पारिवारिक संस्कार भाईजीके जीवनमें बचपनसे ही उतर आये।

आविर्भावकी पृष्ठभूमि

श्रीभीमराजजी के कोई सन्तान न होनेसे रामकौर-देवी चिन्तित रहने लगीं। उनका विश्वास साधु-संतोंमें अधिक था। शिलंगमें ऐसी सुविधाएँ न होनेसे वे पतिकी अनुमति लेकर एक नौकरके साथ अकेली रतनगढ़ चली आईं। उस समय इतनी लम्बी यात्रा सहज नहीं थी——यह इनके अद्भुत साहस का परिचायक है। उन दिनों रतनगढ़में नाथयोगियोंमें शायद श्रीलक्ष्मीनाथजी, श्रीमोतीनाथजी, श्रीमंगलनाथजी, श्रीबखन्नाथजी आदि प्रमुख थे। रामकौर-देवीकी सेवाके कारण वे इनपर कृपा भाव रखते थे। रामकौर देवीने 'नाथजी' से अपनी चिन्ताकी बात कही। 'नाथजी' प्रसन्न थे, उन्होंने एक दिन वरदान रूपमें कह दिया कि आजसे एक वर्षके अन्दर आपके एक सर्वगुण-सम्पन्न पौत्र होगा——वह बहुत ही सुशील विद्वान् और भगवद्भक्त होगा। जन्मके समय उसके ये चिह्न होंगे—मस्तकपर 'श्री' का निशान, कंधों पर केश, और दाहिनी जंधापर काले तिलका निशान तथा वह साधारण बालकोंके समान जन्मके समय रुदन नहीं करेगा। ऐसा भी सुना जाता है कि उन्होंने यह भी कहा कि हमारे साथ रहनेवाले टूँटिया महाराज ही आपके घर

अवतरित होंगे। नाथजीके कृपापूर्ण वचन सुनकर रामकौर-देवीका हृदय प्रफुल्लित हो गया और पौत्र होनेमें उनके मनमें कोई सन्देह नहीं रहा।

इसी समय एक घटना और घटी। रामकौरदेवी निम्बार्क सम्प्रदाय के रतनगढ़निवासी बाबा महरदासजी महाराज़की शिष्या थीं। इनकी प्रेरणासे रामकौर देवींने स्थानीय श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिरमें विष्णुसहस्रनामके १०८ सम्पुट पाठका आयोजन किया। तीन अन्य ब्राह्मण और चौथे स्वयं बाबा महरदासजो उस अनुष्ठानको करनेमें लग गये। जिस दिन १०८ पाठ सम्पूर्ण हुए, उस दिन दीपकमें एकही बार घी डाला गया था और दीपक अखण्ड जलता रहा। अनुष्ठान-के विधिवत् पूर्ण होते ही बाबा महरदासजी बोले—रामकौर ! आज तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया। यह अभिमन्त्रित जल अपनी बहू रिखीबाईको पिला देना। निश्चयही एक भगवद् भक्त धर्मात्मा पौत्रकी प्राप्ति होगी जो तुम्हारे वंशकी कीर्तिको उज्ज्वल करेगा। उसका नाम हनुमानजीके नामपर रखना। इस बातको सुनकर देवी रामकौरके तो हर्षकी सीमा नहीं रही।

अब रतनगढ़ रहनेकी आवश्यकता नहीं थी, अतः वे शीघ्र ही शिलंग चली गयीं।

जन्म

शिलंग पहुँचने के कुछ समय बाद रामकौर देवीको रिखीबाईके गर्भवती होनेका पता लगा तो उनके आनन्दकी

सीमा नहीं रही। परम अभिलषित वस्तुकी प्रतिक्षामें हृदय-की क्या अवस्था होती है—यह किसीसे सुनकर समझा नहीं जा सकता। पल-पल पर विघ्नकी आशंकासे मन कैसे चंचल हो उठता है—यह तो सर्वथा भुक्तभोगी ही जानता है। आखिर वह परम पुण्यमय क्षण उपस्थित हुआ। आश्विन कृष्ण १२, वि० सं० १६४६ (दि० १७ सितम्बर सन् १८६२) को रिखीबाईने पुत्ररत्न प्राप्त किया। यह सुयोग हनुमानजीके दिन शनिवारको संघटित हुआ। सभीको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि रतनगढ़के महात्माने जन्मके समय जिन चिह्नोंके होनेकी बात कही थी, वे सभी नवजात शिशुके शरीरपर विद्यमान् थे। रामकौर देवीने अपनी निष्ठाके अनुसार अपने इष्टदेवका कृपा-प्रसाद मानकर बालकका नाम 'हनुमान-प्रसाद' रखा।

मातृवियोग

बालक हनुमानप्रसादके जन्मके दो मास पश्चात् सं० १६४६ के मार्गशीर्ष कृष्ण १३ को इनके वृद्ध दादाजी श्री-ताराचन्दजीका शिलंगमें देहान्त हो गया। इनकी मृत्यु बड़े विलक्षण ढंगसे ही हुई। जिस दिन देहान्त हुआ उस दिन इन्होंने घरवालोंसे पूछा कि सबने भोजन तो कर लिया है न ? फिर बोले—कनीरामको बुलाओ और मुझे घरकी गौशालामें ले चलो। यद्यपि उस समय आपकी अवस्था ८४ वर्षकी हो चुकी थी, परंतु आप अच्छी प्रकार चल फिर

कर घरका काम करते थे। गौशालामें ले जानेके बाद बोले—मेरे प्राण-प्रयाणका समय निकट आ गया है। देखो, भगवान्‌के पार्षद चार भुजावाले मेरे सामने खड़े हैं, आपलोग भी दर्शन कर लें। सब लोग 'हरेराम' महामन्त्रका उच्चारण करें और स्वयं भी इसी मन्त्रका जप करने लगे। फिर कहा—मुझे स्नान कराओ। श्रीकनीरामजीने उनको स्नान कराकर ललाटमें चन्दन लगा दिया और अपनी गोदमें लिटा लिया। देखते-ही-देखते उनके प्राण नेत्रोंद्वारा प्रयाण कर गये। वे बड़े तपस्वी थे। प्रातःकाल ३ बजे उठकर हाथ मुँह धो-कर नित्यप्रति वे पचास माला 'हरेराम' वाले महामन्त्रकी जपते और श्रीगीताजीके १८ अध्यायका सम्पूर्ण पाठ करनेके पश्चात् शौच-स्नानादि करते। नित्यप्रति १०८ पाठ श्रीविष्णु-सहस्रनामके भी करते।

शिशु अभी २ वर्षका भी न हो पाया था कि उसके लिये मातृवियोगका क्षण उपस्थित हुआ। अपने कलेजेके टुकड़े लाड़ले लालको रामकौरदेवीको सौंपकर रिखीबाई सामान्य बिमारीके पश्चात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदा सं० १९५१ को अपना पांचभौतिक कलेवर त्याग दिया। सारा परिवार शोकसागरमें निमग्न हो गया। मातृहीन शिशुके पालन-पोषणका सारा दायित्व दादीपर आ गया। बालक जब जानने-पहचानने योग्य हुआ तो मातारूपमें उसने दादी रामकौरदेवीको ही पाया। उसने उन्हें ही 'माँ' कहना प्रारम्भ किया। और यह सम्बोधन जीवन पर्यन्त चला।

पिताजीने घरवालोंके आग्रहसे दूसरा विवाह किया। आगे चलकर इनके तीन कन्याएँ हुईं—कमलीबाई, अन्नपूर्णाबाई और चन्दाबाई।

भीषण रोगसे आक्रान्त

बालक हनुमानप्रसाद लगभग तीन वर्षका होगा कि एक दिन रुग्ण हो गया। पहले समझा साधारण रोग है, शीघ्र ही ठीक हो जायगा पर बालककी स्थिति सूखा रोगके कारण चिन्ताजनक हो गयी। देवी रामकौरके मनकी क्या अवस्था होगी ? इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। कितने देवाराधन, कितनी प्रार्थना, कितने अनुष्ठानके फलस्वरूप बालक घरमें आया और वही भीषण रोगाक्रान्त होकर खाटपर पड़ा है। हर सम्भव उपचारके पश्चात् भी स्थिति बिगड़ती चली गयी। अन्तमें सब ओरसे निराश होकर दादी रतनगढ़ चली आयीं एवं संत-महात्माओंकी शरण लेकर पाठ, पूजा, जप, दान अनुष्ठानादिका मार्ग अपनाया। संतोंका आशीर्वाद प्राप्त हुआ और बालक स्वस्थ होने लगा और कुछ ही दिनोंमें पूर्ण स्वस्थ होकर अपनी मधुर मुसकानसे दादीको प्रफुल्लित करने लगा। दादी उसे लेकर शिलंग चली गयीं।

भूकम्पसे प्राण-रक्षा

"जाको राखे साइयाँ मार सकै ना कोय" इसका दूसरा उदाहरण शीघ्र ही सामने आया। वि० सं० १९५३ में शिलंगमें भीषण भूकम्प आया। सन्ध्याका समय था। देखते-

ही-देखते कतारमें खड़ी गृहावलियाँ धरतीमें लोटने लगीं, अपार धन-सम्पत्ति नष्ट हो गयी। इस दुर्घटनामें बालक हनुमानप्रसादकी रक्षा किस अचिन्त्य शक्तिकी कृपासे हो गई इसका वर्णन उन्हींकी भाषामें पढ़ें जो उन्होंने स्वयं 'कल्याण' में प्रकाशित किया—

सन् १८६६ई० (सं० १६५३ वि०) में आसाममें भयानक भूकम्प हुआ था। उस समय मेरी उम्र लगभग चार वर्षकी थी। शिलंग (आसाम) में हमारा कारबार था। मेरे दादाजी कनीरामजी वहाँ रहते थे। पिताजी कलकत्तेका कारबार सँभालते थे। माताजीकी बहुत छोटी उम्रमें मृत्यु हो जानेसे मेरी दादीजीने मुझे पाला। उनका मुझपर जो स्नेह था एवं उन्होंने मेरे लिये जितने कष्ट सहे, उसका बदला मैं हज़ार जन्म सेवा करके भी नहीं चुका सकता। उनके जीवित रहते मैंने इस ओर पूरा ध्यान नहीं दिया। अब पछतानेसे कोई लाभ नहीं। जिनके माता-पिता आदि जीते हैं,उन्हें बड़ा सौभाग्य प्राप्त है। वे जीभर उनकी सेवा करके आनन्द लूट लें, नहीं तो पीछे मेरी तरह पश्चात्तापके सिवा प्रत्यक्ष सेवाका और कोई साधन नहीं रहेगा। अस्तु मैं दादीजीके साथ शिलंगमें रहता था। मेरी बुआ भी वहीं आयी हुई थी। उनके दो सन्तान थीं। हम तीनों साथ-साथ खेला करते। भूकम्पके दिन हमारे निकटवर्ती श्री-भजनलाल श्रीनिवासके यहाँ किसी व्रतका उद्यापन था। उनके यहाँ हमें भोजन करने जाना था। बुआजीके दोनों

बालकोंने जानेसे इंकार कर दिया। मैं अकेला ही गया। वे घरपर रह गये। सन्ध्याका समय था। लगभग पाँच बजे होंगे। मैंने श्रीभजनलाल श्रीनिवासके गोलेके पीछे रसोईमें जाकर भोजन किया। रसोईसे निकलकर गोलेमें घुस ही रहा था कि धरती बड़े जोरसे काँप उठी। मैं चिल्लाया, मेरे आस-पास पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। सारा मकान मिनटोंमें ही ध्वंस हो गया। मैं दब गया, परन्तु आश्चर्य, मेरे चारों ओर पत्थर हैं, उनपर एक तख्ता आ गया और उसके ऊपर पत्थरोंका पहाड़। मैं मानो खोहमें—काली गुफामें पड़ गया। पता नहीं, वायुके आने-जानेका रास्ता कैसे रहा, परन्तु मैं मरा नहीं। भूकम्प बन्द होनेपर मूसलाधार वर्षा हुई और उसी समय हमारे बगलके एक गोलेमें आग लग गयी। चारों ओर हाहाकार मचा था। कौन दबा, कौन बचा, कुछ पता नहीं। दादाजी हम तीनों बालकोंकी खोजमें लगे। मेरी बुआजीके दोनों बालक पत्थरोंके नीचे मरे मिले। मेरी बड़ी बुआजीके पौत्र मुझसे कुछ बड़ी उम्रके श्रीरामगोयनकाकी भी लाश मिली, ढूँढ़ते और पुकारते दादाजी भजनलाल श्रीनिवासके गोलेके पास आये। वे बड़े जोरसे पुकार रहे थे 'मन्नू' 'मन्नू' *। मैंने आवाज सुन ली। नन्हा-सा बालक था। भयभीत था, रो रहा था। परन्तु न मालूम किस प्रेरणासे मैंने शक्तिभर जोरसे उत्तर दिया—"यहाँ हूँ, जल्दी निकालिये।" पत्थरों-

★ बालक हनुमानप्रसादको घरवाले इसी प्यारके नामसे सम्बोधित करते।

का ढेर हटाया गया। मैं निकलकर दादाजीके गोदी चढ़ गया, उन्होंने हृदयसे लगा लिया। दोनों रोने लगे। उनके रोनेके कई अर्थ थे। दादीजी तबतक अपने इष्ट श्रीहनुमानजीको याद कर रही थीं। हनुमानजीने उनकी पुकार सुनी, बुआजीके बालकोंके दबनेका दुःख क्षणभरके लिये कुछ हलका हो गया।

—ईश्वरांक पृष्ठ ६१३

भूकम्पके कारण कनीरामजीके हृदयको धक्का लगा। सहसा वे रुग्ण हो गये और मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा सं० १६५६ के दिन कलकत्तेमें 'सोहं सोहं' का जप करते हुए शरीर छोड़ दिया।

शिक्षा एवं दीक्षा

श्रीभीमराजजीके लिये अकेले विस्तृत व्यापार देखना सम्भव न था, अतः आसामका व्यापार समेटपर कलकत्ते आकर वहाँकी दूकानका काम देखने लगे। रामकौरदेवी पौत्रको लेकर रतनगढ़ चली आईं। महान् संतोंकी बचपनकी चेष्टाएँ भविष्यकी सूचना देती हैं। विशाल प्रसादके निर्माणके पूर्व उसकी नींव स्वतः उसके अनुरूप ही होती है। बालक हनुमानप्रसादके जीवनमें भी आध्यात्मिक प्रवृत्तिका श्रीगणेश बचपनसे ही हुआ। दादी रामकौरके प्यारमें पला हुआ बालक न अधिक चञ्चल था, न अधिक गम्भीर। पवित्र हृदय संत जब देवी रामकौरसे भगवत् चर्चा करते, बालक

बड़े ध्यानसे सुनता एवं प्रफुल्लित होता। दादीने उन्हें हनुमान कवचका पाठ सिखाया। दीक्षाका समय जानकर दादीने वैष्णवी दीक्षा दिलायी एवं निम्बार्क सम्प्रदायके संत श्रीव्रज-दासजीको इनके दीक्षा गुरु होनेका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब दादी संत श्रीबखन्नाथजीके पास सत्संगके लिये जाती तो साथमें बालक हनुमानप्रसाद भी जाता। धीरे-धीरे नाथजीने बालकके संस्कार देखकर गीताजीके श्लोक कंठस्थ कराने शुरु किये। बालकने एक वर्षके अन्दर सारी गीताजी कंठस्थ करके सुना दी। अद्भुत प्रतिभा और आध्यात्मिक प्रवृत्ति देखकर 'नाथजी' और दादीजी बड़े प्रसन्न हुए।

यह आश्चर्यकी बात है कि जो आगे चलकर कई भाषा-ओंके इतने बड़े विद्वान बने उस बालकने कहीं विधिवत् पढ़ाई नहीं की। बचपनमें एक मारवाड़ी ब्राह्मण श्री जोरजीकी पाठशालामें कुछ महीने हिन्दी और महाजनीकी पढ़ाईकी बादमें कलकत्ता वासके समय तत्कालीन हिन्दीके प्रसिद्ध विद्वानों एवं सम्पादकोंके सम्पर्कमें आकर इन्होंने हिन्दी-साहित्यका समुचित ज्ञान प्राप्त किया। अंग्रेजीका सामान्य ज्ञान भी कलकत्तेमें ही व्यक्तिगत रूपसे श्रीअयोध्याप्रसाद-जीके पास अध्ययन करके प्राप्त किया। अन्य भाषाओंका ज्ञान इन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभासे समय-समयपर बढ़ाया। उपनयन-संस्कार पं० श्रीछोटेलालजी द्वारा सम्पन्न हुआ।

विवाह

उन दिनों कम उम्र में विवाह होनेकी प्रथा थी। बालक

हनुमानप्रसादकी आयु १२ वर्षकी थी। व्यापारमें इनकी दूकानकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। दादीको इन्हें दूल्हारूपमें देखने-की बड़ी इच्छा थी इसलिये रतनगढ़ निवासी श्रीगुरुमुखरायजी ढंढ़ारियाकी पुत्री महादेवीबाईसे सगाई तय कर दी। इस समयका प्रसंग बड़ा रोचक है, जिसमें देवी रामकौरका आदर्श रूप सामने आता है। विवाहके पूर्व ही महादेवी चेचकसे आक्रान्त हो गयीं, फलस्वरूप सारे शरीरमें चेचकके धब्बे रह गये। सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया। इनके माता-पिता चिन्तामें निमग्न थे कि अब सगाई निश्चय ही छूट जायेगी। पर देवी रामकौरने स्पष्ट कह दिया कि जैसे कन्याका वाग्दान एक बार ही होता है वैसे ही मैं अपने पौत्रका वाग्दान महादेवीके लिये कर चुकी हूँ। उसके जीवित रहते मैं अपने वचनको कदापि नहीं छोड़ूँगी। प्रथम जेष्ठ कृष्ण ४ सं० १९६१ को विवाह संस्कार धूम-धामसे सम्पन्न हुआ। पर विधिका विधान और ही था। यह दाम्पत्य-सुख अधिक दिन न रह सका। विवाहके ५ वर्ष बाद महा-देवीने प्रथम पुत्रका मुँह देखा पर स्वयंने सदाके लिये आँख मूँद ली। उस दुःखको भूलनेके पहले ही नवजात शिशु हठात् परलोक चल बसा। वि० सं० १९६८ में देवी रामकौरने राजगढ़ निवासी श्रीमँगतूरामजी सरावगीकी पुत्री सुवटीबाईसे द्वितीय विवाह सम्पन्न कराया। अब पितृ वियोग सामने आया। श्रावण कृष्ण ४ सं० १९६९ के दिन रतनगढ़में श्रीभीमराजजीने पाञ्चभौतिक शरीर छोड़ दिया। श्राद्ध-आदिसे निवृत्त होकर ये कलकत्ते आये और

दूकानका सारा भार मनोयोगसे संभालने लगे। वि० सं० १९७२ में सुवटीबाईने एक पुत्र प्रसव किया। जन्मके दो ही दिन बाद शिशु परलोक चल बसा और उसके ६ महीने बाद माँ भी चल बसी। देवी रामकौरपर इन सभी घटनाओंका बड़ा आघात लगा। वे गृहस्थकी समस्याओंसे बड़ी चिन्तित थीं। पौत्र जिसकी उम्र अभी २३ सालकी थी पुनः गठ-बन्धनके लिये दबाव डालने लगीं। भाईजी उस समय देश-सेवाकी धुनमें मस्त थे पर दादीके प्यार भरे आग्रहके सामने सिर झुका दिया। दादीने अपने पौत्रका तीसरा विवाह अक्षय तृतीया वि० सं० १९७३ को श्रीसीतारामजी सांगानेरियाकी पुत्री रामदेईसे किया। श्रीरामदेईने गृहलक्ष्मीके रूपमें अंततक साथ निभाया। इन्होंने भाईजीके मनमें अपना मन मिलाकर उनके हर कार्यमें कन्धेसे कन्धा मिलाकर सतत सहयोग दिया। अपना अलग अस्तित्व रक्खा ही नहीं।

भाईजीका चरित्र-बल एवं सरोजिनीका अलौकिक आत्मोत्सर्ग

जब भाईजीकी आयु पन्द्रह वर्षकी थी, उनके जीवनमें एक विस्मयपूर्ण घटना घटी। बात सं० १९६४ की है, जब ये ननिहाल चाँदपुर स्टीमरमें बैठकर जा रहे थे। साथमें इनका जमादार सुखलाल भी था। स्टीमरमें इनके निकट ही भाग्यचक्रसे एक बंगाली परिवार बैठा था, जिसमें दम्पतिके साथ उनकी १३-१४ वर्षकी कन्या एवं ५-६ वर्षका

बालक था। भाईजीके पास कुछ मेवे थे, स्वाभाविक ही उन्होंने मेवा उस बालकको भी दिया। थोड़ी देर बाद लोहजङ्ग स्टेशन आया एवं वह परिवार उतरकर नावमें बैठकर चला गया।

यह घटना कितनी स्वाभाविक दीखती है। प्रतिदिन न जाने कितने यात्री इसी प्रकार मिलते हैं एवं बिछुड़ जाते हैं। भाईजी भी इस साधारण घटनाको भूल गये थे और उन्हें कल्पना भी नहीं थी कि इसके अन्तरालकी घटना उनके जीवनमें फिर नाच उठेगी। किन्तु प्रभुका विधान नियंत्रित क्रमसे नाचता है।

अचानक इसके चार वर्ष बाद श्रावण कृ० ९ सं० १९६९ को पगैयापट्टीवाली पारख-कोठीमें भाईजीको दूकानपर एक पत्र मिला। पढ़नेपर पता लगा कि पत्र सरोजिनी नामकी लड़कीका है। पत्रमें पूर्ण विवरण दिया हुआ था कि किस प्रकार आप स्टीमरमें चाँदपुर जा रहे थे एवं मैं अपने पिताके साथ आपके समीप बैठी थी। पत्रमें वर्तमान पता कालीघाट लिखा था। पत्रमें पूर्ण विवरण था—कैसे सुखलाल जमादारसे इनका नाम-पता पूछकर डायरीमें नोट कर लिया था, कैसे लोहजङ्ग स्टेशनपर वह उतरी थी तो अपना सर्वस्व इनके चरणोंमें सदाके लिये समर्पित कर चुकी थी; इच्छा न होनेपर भी माता-पिताके द्वारा सं० १९६७ में परिणय-सूत्रमें बाँधे जानेपर सतीत्व-रक्षाके लिये अन्ततोगत्वा उस सम्बन्ध-को त्यागकर मताके द्वारा दी गयी ३० गिन्नियोंको लेकर

कलकत्ता पहुँचनेकी बात लिखी थी। मिलनकी तीव्र उत्कण्ठा होनेसे एक दिन बर्दवानकी बाढ़से प्रभावित लोगोंकी सहायता-के सम्बन्धमें प्रकाशित सूचनामें इनका नाम और वर्तमान पता समाचार-पत्रमें पढ़कर यह पत्र लिखा था। अन्तमें अगले दिन कालीघाट-मन्दिरके पास प्रातः ९ बजे आकर एक बार मिलनेकी प्रार्थना की थी।

पत्र पढ़कर भाईजी सारी बातें सोचने लगे। अन्तमें पत्रमें सात्त्विक भावोंकी झलक देखकर दूसरे दिन कालीघाट जानेका निर्णय किया। अपने एक मित्र बालचन्द मोदीको साथ लेकर समयपर ये कालीघाट पहुँचे; किन्तु वहाँ कोई लड़की दिखायी न दी। कुछ देर रुककर ये वापिस लौट आये। दूसरे दिन एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था—'आप जिस समय पहुँचे, मैं वहीं थी; किन्तु आपके साथ एक सज्जन और थे, इससे मैंने मिलना उचित नहीं समझा। अब आप-को मुझे खोजनेकी आवश्यकता नहीं। मैंने आपका स्थान जान लिया है, स्वयं आकर मिलूँगी।' थोडी देर बाद रात्रिमें एक पत्र फिर मिला, जिसमें इनसे 'आउटराम-घाट'के स्टैचूके पास आकर मिलनेकी प्रार्थनाकी थी। ये दूसरे दिन समयानुसार वहाँ गये, पर वहाँ कोई नहीं मिला; मिला एक चिट, जिसमें लिखा था—'आपके आनेमें विलम्ब होनेसे मैं जा रही हूँ। यहाँ ठहरना मेरे लिये निरापद नहीं। अब मैं स्वयं मिलूँगी।'

उसी दिन रातमें जब ये दूकान बन्द करके घर जा रहे थे, रास्तेमें शिव-मन्दिरके पास एक सिख-बालक मिला। उसने अपना परिचय दिया—'मैं सरोजिनी हूँ।' इसके

बाद दोनोंने घंटों दिल खोलकर बातें की, पर किसीने भी एक दूसरेका स्पर्श नहीं किया। सरोजिनीने अपने सर्वस्व समर्पणकी भावनाको दुहराया। ये बोले—'देवि! तुम्हारे सात्त्विक प्रेमका मैं आदर करता हूँ पर मेरा विवाह हो चुका है, अतः शरीरसे तुम्हें अपनानेमें सर्वथा लाचार हूँ। मैं तुम्हारे जीवन-यापनकी व्यवस्था कर सकता हूँ। सरोजिनी इनसे ऐसे ही उत्तरकी आशा करती थी, अतः उसे आश्चर्य नहीं हुआ। उसके वरणमें भी भोगलिप्सा नहीं थी, अतः उसने उत्तर दिया—'मेरा दूर रहना ही उचित रहेगा।' जाते समय इस मधुर-मिलनकी स्मृतिमें उसने अपनी सोनेकी अँगूठी इन्हें दे दी।

इसके पश्चात् उसी वर्ष कार्तिकमें सरोजिनीका एक पत्र मिला। जिसमें लिखा था—'शरीर वियोग व्यथा सहनेमें असमर्थ है अब इसे नहीं रखूँगी "हिन्दू रमणी वरे एक पति"। यह सन्देश पाकर इन्होंने उसे ढूँढ़नेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु कोई पता नहीं चल सका। ज्ञात हुआ कि उसने प्रयागमें जाकर त्रिवेणी सङ्गममें जल समाधि ले ली।'

प्रेम-प्रतिमा देवी सरोजिनीके हृदयकी प्रतीक वह अँगूठी जिसको उसने इन्हें भेंट स्वरूप दी थी, एक स्वर्ण-पदकमें परिवर्तित करवाकर इन्होंने जलंधर-कन्या-महाविद्यालयकी एक प्रतिभा-सम्पन्न बालिकाको पुरस्कार रूपमें प्रदान कर दिया, जिसके एक ओर खुदा था—'सरोजिनीके स्मृत्यर्थं' और दूसरी ओर था—'हिन्दू रमणी वरे एक पति'।

बहुत वर्षों बाद इस घटनाकी चर्चा करते हुए भाईजीने कहा कि सरोजनीके विशुद्ध प्रेमका आदर करते हुए भी मेरे

मनमें कभी कोई लौकिक वासनाकी गंध भी पैदा नहीं हुई एवं सरोजिनी भी आर्य-मर्यादा पर दृढ़ रही।

सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे मिलन

परम संत सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका एक ऐसे मारवाड़ी संत थे, जिन्हें लोग जानकर भी नहीं जानते। उनका रहन-सहन, वेष, मारवाड़ी-मिश्रित हिन्दी भाषा इतने साधारण थे कि लोग निकटसे देखकर भी नहीं पहचान पाते थे कि ये आध्यात्मिक जगत्की एक विशेष विभूति हैं। साधारणतया सत्संगी लोग इन्हें सेठजीके नामसे ही पुकारते थे। सत्संग करानेके उद्देश्यसे ये स्थान-स्थानपर जाया करते थे। भाईजीने भी इनकी प्रशंसा अपने व्यापारिक जीवनके बीच सुनी थी। सं० १९६७-६८ में श्रीसेठजीका कलकत्ता आगमन हुआ। संयोगवश उनके सत्संगका आयोजन पगयापट्टीमें श्रीहरिबक्सजी साँवलकाकी दूकानपर हुआ। इनकी दूकान भाईजीकी दूकानके सामने थी। अतः भाईजी भी इनके सत्संगमें गये। उनका प्रेमिल स्वभाव, मौलिक चिन्तन, दम्भहीन अन्तःकरण, अनुभूतिपूर्ण आध्यात्मिक उद्गार भाईजीको आकर्षित करने लगे। यद्यपि उस समय भाईजीके जीवनमें राजनीतिक एवं सामाजिक विचारोंकी प्रधानता थी, फिर भी श्रीसेठजीके सत्संगमें ऐसा आकर्षण, ऐसा रस भाईजीको मिला कि ये उनके कलकत्ता आनेपर नियमित रूपसे सत्संगका लाभ उठाने लगे। कुछ समय बाद श्रीसेठजीको सत्संगके लिये ये अपनी दूकानपर लाने लगे। साथ ही इनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर अपने मित्रोंको भी इनसे मिलाने लगे। श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया,

श्रीबनारसीप्रसादजी झूँझनूवाला आदिको इनसे मिलाया।

आगे चलकर तो भगवान्की अचिन्त्य शक्तिकी प्रेरणासे श्रीसेठजी और भाईजीका अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। भाईजीके जीवनको एक ही अध्यात्मपथ पर सुरक्षित रखनेका सारा श्रेय उन्हींको है।

स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें सक्रिय सहयोग

भाईजीकी रुचि सामाजिक तथा राजनितिक गति-विधियोंमें तो पहलेसे ही थी, पिताजीका नियन्त्रण न रहनेसे इन कार्योंमें पूरी स्वतन्त्रतासे भाग लेने लगे। वैश्य-सभा, हिन्दू-क्लब, हिन्दी-साहित्य-परिषद, सावित्री कन्या-पाठशाला, मारवाड़ी सहायक समिति (मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी) कलकत्ता हिन्दू महासभा आदि सभीमें इनका प्रमुख सक्रिय सहयोग था। वह समय था, जब देशमें स्वतन्त्रता-आन्दोलन चल रहा था एवं बंगालका स्थान विशेष उल्लेखनीय था। भाईजी जैसे संवेदनशील व्यक्तिके लिये अपनेको अलग रखना असम्भव था। इनका चित्त उत्तरोत्तर देश-प्रेमसे भरता जा रहा था, उधर दूकानकी संभाल शिथिल होती जा रही थी। भाईजीको उग्रवादी सिद्धान्त ही समयोचित जान पड़े। स्थान-स्थान पर गुप्त-समितियाँ बनने लगी। भाईजी भी एक ऐसा ही गुप्त-समितिके सक्रिय सदस्य थे। इसकी सारी कार्यवाही गोपनीय रखी जाती थी। इस समितिके कुछ सदस्योंका बंगाली क्रान्तिकारी समितिसे सम्बन्ध था, जिसमें श्रीविपिन चन्द्र गांगुली, श्रीवैद्यनाथ विश्वास आदि प्रधान थे। श्रीज्वाला-प्रसादजी समितिके प्रमुख थे एवं समितिकी बैठकें श्रीफूलचन्दजी चौधरीके बगीचे बेलूर तथा बिरलाकोठी, लिलुआमें हुआ करती

थी। उस समय आन्दोलनका उद्देश्य था —देशके लिये तन-मन-धन सर्वस्व अर्पण कर देना। इससे भाईजीको नियमानुवर्तिता, संयम, त्याग, सादगीकी क्रियात्मक शिक्षा मिली। इसी प्रसंगमें श्रीअरविन्द, श्रीसुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्रीविपिनचन्द्र पाल, श्रीचितरञ्जनदास, श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीश्यामसुन्दर चक्रवर्ती, श्रीब्रह्मबान्धव उपाध्याय, श्रीसत्याचरण शास्त्री, श्रीसखाराम गणेश देउस्कर, श्रीशारदाचरण मिश्र, श्रीकृष्णकुमार मिश्र आदि विभिन्न क्षेत्रोंके महानुभावोंसे बार-बार मिलने तथा बहुतोंके साथ भाईजीको अन्तरंग सम्पर्कमें आनेका सुअवसर मिला। इनका जीवन त्यागमय बना। इसीके साथ उस समयके कलकत्ताके धुरीण साहित्यिक प० गोविन्दनारायणजी मिश्र, पं० दुर्गाप्रसादजी मिश्र, श्रीबालमुकुन्दजी गुप्त, पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, पं० अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयी, श्रीपाँचकड़ी बनर्जी, पं० झावरमलजी शर्मा, पं० लक्ष्मीप्रसादजी गर्दे, श्रीरामकुमारजी गोयनका, श्रीबाबूविष्णु पराड़कर आदि विद्वानोंके तथा सफल सम्पादकोंके बहुत निकट सम्पर्कमें आये। उसके कुछ समय बाद ही महात्मा पं० मदनमोहनजी मालवीय, डा० राजेन्द्रप्रसादजी, महात्मा गाँधी, पुरुषोत्तमदासजी टंडन, लोकमान्य तिलक आदिसे इनका निकटका सम्बन्ध हो गया।

सं० १९७१ के लगभग मालवीयजी कलकत्ता पधारे तो भाईजीने काशी हिन्दू विश्व-विद्यालयके लिये लोगोंसे मिलकर आर्थिक सहायता भी दिलवायी। उसी समयसे इनके साथ स्थायी प्रेमका सम्बन्ध स्थापित हो गया। सं० १९७२ में महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रिकासे लौटनेपर रंगून होकर

कलकत्ता पधारे तो भाईजीने हिन्दू-महासभाके मन्त्रीके रूपमें उन्हें अभिनन्दन-पत्र दिया। आगे चलकर गाँधीजीसे घर-जैसा सम्बन्ध हो गया था।

जेल एवं नजरबन्दी

गुप्त समितिमें सक्रिय भाग लेनेसे तथा क्रान्तिकारियोंके मुकदमोंकी पैरवीमें सहयोग देनेसे भाईजीका नाम भी पुलिसकी डायरीमें आ गया। इनकी गतिविधिका निरीक्षण होने लगा। ये बिना किसी भयके अपने कार्यक्रमोंमें भाग लेते रहे। बन्दी होनेके एक मास पूर्व इनको सूचना मिल गयी कि सरकार कोई-न-कोई उपयुक्त अवसर पाकर इनको बन्दी बनानेकी चेष्टामें है। इसे जानकर भी न तो ये कहीं भागकर छिपे, न अपने कार्यक्रमसे विरत हुए। अचानक एक दिन सदलबल पुलिस इनकी क्लाइव स्ट्रीट स्थित दूकानपर पहुँच गयी एवं श्रावण कृ० ५ सं० १९७३ को राजद्रोहके अपराधमें इन्हें बन्दी बनाकर ले गयी। इनके मित्र श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया एवं श्रीफूल-चन्द चौधरीको भी बन्दी बना लिया गया। आरम्भमें १५ दिन तो इन लोगोंको डुराण्डा हाउसमें रखा गया। उसके पश्चात् अलीपुर जेलमें स्थानांतरित कर दिया।

अभी इनका विवाह हुए तीन महीने भी नहीं हुए थे तथा घरमें अकेली स्त्रियाँ थी। यह पता नहीं था कि कारावास-में कितने दिन रहना पड़ेगा। इन सब बातोंको सोचकर एक बार तो ये घबरा गये। उस समय मनकी क्या दशा थी उसका विवरण उन्हींके शब्दोंमें पढ़ें—

"ज्वालाप्रसादजी आदि हम लोग कई साथी थे। पर

पकड़े जानेके दिन ही जेल जानेपर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरा हृदय तड़फड़ाने लगा। मेरे हृदयमें व्याकुलता छा गयी, चारों ओर अन्धकार दिखाई पड़ता था। जब कोई सहारा न मिला तो अन्तमें मुझे उस परमपिता परमेश्वरका नाम स्मरण हो आया, अशरणके शरणको स्मरण करना ही मुझे एक अवलम्ब मालूम हुआ। मैंने नामकी रट लगा दी। भज़न करनेकी देर थी कि शान्तिका आविर्भाव होने लगा। धीरे-धीरे व्याकुलता दूर हो गयी, हृदयमें शान्तिका साम्राज्य छा गया। इसी समय मुझे नामका माहात्म्य मालूम हुआ। मुझे मालाकी आवश्यकता मालूम पड़ी।.........मेरी उन्नतिका प्रथम सूत्रपात यहींसे हुआ।"

इन्होंने पहरेदारसे माला माँगी। उसने माला देनेमें तो अपनी लाचारी प्रकट की, किन्तु एक उपाय बताया कि गिनती करके माला पूरी होनेपर इस कीलसे दीवारपर एक लकीर खींच दो। एक कील इन्हें दे दी। इनका जप चलने लगा।

राजद्रोहका मुकदमा चलानेको सरकारने पूरी चेष्टा की, परन्तु ठोस आधार न मिलनेसे सम्भव नहीं हो सका। सन्देहके आधारपर लम्बे समयके लिये जेलमें रखना सम्भव नहीं था। अतः भारत-रक्षा-विधानके अनुसार साथियों सहित इनको अनिश्चित कालके लिये नजरबन्द करनेका आदेश दे दिया। सभी साथियोंको विभिन्न स्थानोंपर भेजा गया। इनको बाँकुड़ासे २४ मील दूर शिमलापाल नामक ग्राममें जानेका आदेश मिला। जानेसे पूर्व एक घंटे घरवालोंसे मिलनेकी अनुमति मिली। उस एक घंटेके मिलनमें घरवालोंकी मनः-स्थितिका अनुमान लगाया जा सकता है।

शिमलापालकी साधना

भगवान् कुछ छीनते हैं, उससे अनन्त गुना देते हैं। वे देनेके लिए ही छीननेसे दिखाई देते हैं। भगवान्ने भाईजीके देश-प्रेमकी सारी उमंगें छीन ली, मित्र-मण्डली तोड़ दी, प्रियजनोंसे अलगकर दिया, परिवारके किसी व्यक्तिको साथ नहीं रहने दिया पर इनके बदलेमें ऐसी वस्तु दी जिसकी तुलनामें विश्वकी समस्त लोभनीय वस्तुएँ सर्वथा तुच्छ, अत्यन्त नगण्य है। वह वस्तु थी भगवान्का मंगलमय स्मरण। कलकत्तेकी दिनचर्या कुछ और थी, शिमलापालकी कुछ और ही।

नजरबन्दीके जीवनमें श्रीभाईजीमें एक विलक्षण परिवर्तन हुआ। शिमलापालका जिवन एक कठोर साधनाका समय बन गया। सरकारके नियमके अनुसार ये गाँवके बाहर जा नहीं सकते थे, शामके बाद गाँवके भी किसी व्यक्तिसे नहीं मिल सकते थे। शिक्षा सम्बन्धी किसी व्यक्तिसे न मिले, शाम को ६ बजे से प्रातः ६ बजे तक झोपड़ीसे बाहर न जायँ, जो भी पत्र आवे वह पुलिसके मार्फत। सरकार इन्हें खर्चके लिये ८०) मासिक देती थी जिसमेंसे ये ३०) अपने खर्चके लिये रखकर बाकी ५०) अपनी दादीके पास परिवारका खर्च चलाने भेज देते। उन दिनों भाईजी प्रायः तीन-चार बजे प्रातः उठ जाते एवं तीस माला 'हरे राम' षोडशमन्त्रको जपकर फिर शौच-स्नानके लिये जाते। नहाकर सन्ध्या-वन्दन, गीता, विष्णुसहस्रनामका पाठ करके रविवर्मा-के बनाये ध्रुव-नारायणके चित्रके आधारपर ध्यान करते। थोड़े ही दिनोंमें वृत्ति ध्येयाकार बनकर ध्यानका इतना सुन्दर अभ्यास हो गया कि प्रातः, दोपहर एवं रात्रिमें ३-३

घंटे ध्यानमें बीतने लगे। शेष समय नाम-जपमें एवं स्वाध्यायमें लगाते। बहुत थोड़े समयमें शरीरके आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होकर शेष सारा समय इसी तरह साधना-तपस्यामें व्यतीत करते। आगे चलकर ६ महीनेमें ध्यानका इतना अभ्यास हो गया कि आँखें खुली रहते हुए जिस वस्तुके स्थानपर धारणा करते, वहीं श्रीविष्णु भगवान्की मूर्ति दिखलायी देने लगती। बादमें भाईजीने कई बार यह बताया कि यह कोई सिद्धि या चमत्कार नहीं है, जो भी इस तरह अभ्यास करेगा, उसे ऐसा अनुभव हो सकता है।

नाम-जपमें इतना रस आने लगा कि नाम-जप छूटना सहन नहीं होता था। मनमें आती कि कोई बात न करे एवं आवश्यक बात करनी ही पड़े तो मुझे बोलना न पड़े। जीभ सतत नाम-जपमें लगी रहती। जब कभी आनेवाला व्यक्ति बहुत देर बैठ जाता तो विनम्र शब्दोंमें बोल देते—"देखिये मैं तो निकम्मा आदमी हूँ, बहुत देर हो गयी, आपको काम होगा। अतः आप पधारिये।" इनकी चेष्टा यही रहती कि कम-से-कम लोगोंके सम्पर्कमें आना पड़े। नाममें धन-बुद्धि हो जानेसे ऐसा होना स्वाभाविक ही था।

उस समय इनके द्वारा किसीके प्रति यदि रूखा व्यवहार हो जाता तो इन्हें बड़ा दुःख होता। एक दिनकी बात है ये स्वाध्यायमें तल्लीन थे। एक सज्जन चाकू माँगने आये। इन्होंने स्वाध्यायमें विघ्न न पड़े इस दृष्टिसे कह दिया—'अभी नहीं पीछे ले जाइयेगा।' वे सज्जन तो चले गये पर इनको इतना दुःख हुआ कि ये दौड़कर उनके पास गये, चाकू देकर उनसे विनम्र शब्दोंमें क्षमा याचना करके उन्हें सन्तुष्ट किया।

इसी समय इन्होंने नारद-भक्ति सूत्रोंकी हिन्दी टीका की। यह आगे चलकर कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ गीताप्रेससे 'प्रेमदर्शन' नामसे प्रकाशित हुई। इतनी छोटी उम्रमें प्रेम-रूपा भक्तिकी इतनी गम्भीर व्याख्या की कि वह चिरकालके लिये एक मनन करने योग्य पुस्तक बन गयी।

इस प्रवास कालमें एक और सेवा कार्यमें ये समय लगाते—वह था दवा बाँटनेका। जो सिविल सर्जन इनको देखने आते थे उन्हींके सहयोगसे इन्होंने कुछ होमियोपैथिक दवाएँ एवं पुस्तकें मँगाली एवं उसीके आधारपर रोग-ग्रस्तोंकी सेवा करने लगे। बादमें इनकी धर्म-पत्नीको भी सरकारने रहनेकी अनुमति दे दी एवं वह भी इस सेवा कार्यमें हाथ बँटाने लगी। सच्ची सेवा भावना होनेसे भगवान्ने कल्पनातीत सफलता दी। एक बार वहाँ हैजा फैला जिसमें ६१ व्यक्तियोंकी इन्होंने चिकित्सा की, जिसमेंसे ५८ को लाभ हुआ। एक मुसलमान बहुत वर्षोंसे गूंगा था। उसके घरवाले दवाई दिलाने लाये। पहले तो ये निर्णय नहीं कर सके कि कौन-सी दवा दें, फिर पुस्तकसे कुछ लक्षण मिलाकर दवाई दे दी। इनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही जब तीन दिन बाद बहुत भीड़के साथ वह व्यक्ति बोलता हुआ आया एवं लोग इनको बधाई देने लगे। वहाँके लोगोंसे, पुलिसवालोंसे सभीसे बहुत ही प्रेमका-घर-सा संबन्ध हो गया था।

एक और विलक्षण अनुभव इन्हें हुआ। एक बार इन्हें समाचार मिला कि इनकी दादीजी कलकत्तामें बीमार हैं एवं इनसे मिलना चाहती हैं। ये नियमानुसार बाहर जा नहीं

सकते थे। दादीजीके विशेष स्नेहके कारण इनकी उनसे मिलनेकी तीव्र इच्छा हो गयी। सरकारको तार दिया पर अस्वीकृति आ गई। इनके मनमें बड़ी व्याकुलता हुई एवं इसी निमित्तसे भगवन्नाम जप आरम्भ कर दिया। उसी दिन एक मुसलमान डिप्टी कलक्टर मुआयना करने आये। उनको भाईजीने सारी बातें कही। वे बड़े सहृदय थे, उन्होंने कहा—आपके लिये कल ही आर्डर आता है। इन्हें विश्वास नहीं हुआ क्योंकि आर्डर गवर्नर ही दे सकता था। ये अपने नाम-जपमें लग गये। दूसरे ही दिन सात दिनके लिये पेरोलपर जानेकी आज्ञा मिल गई एवं ये आश्चर्य चकित हो भगवत्कृपाका अनुभव करते हुए उसीमें डूब गये।

इस नजरबन्दीके जीवनमें भाईजी साधनाके सोपानोंपर बढ़ते ही जा रहे थे। वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गयी थीं। २१ मासकी अवधिके वाद इन्हें सरकारका विमुक्तिका आदेश मिला कि २४ घंटेके अन्दर बंगाल छोड़ दो।

पौने दो वर्ष रहकर सचमुच ही भाईजीने एक नया परिवार बसा लिया था। ग्रामवासियोंके सुख-दुःखमें हाथ बँटाकर, उनकी सेवा करके इन्होंने उनके हृदयपर अधिकार कर लिया था। सरकार द्वारा नजरबंदीकी समाप्तिके आदेशकी सूचना जब वहाँके लोगोंको मिली तो वे स्तब्ध रह गये एवं कष्टकी प्रतीति होने लगी। आह, जो प्रतिदिन उनकी सार-सँभाल करता था, अपने हाथोंसे दवा देता था, जिसके पास वे अपना रोना सुनाकर हृदयको हल्का करते थे, जो सबको प्यार, सम्मान देता था, वह उनके बीचमेंसे हमेशाके

लिये चला जायगा। ग्रामवासियोंके आँखोंसे आँसू रुक नहीं सके और सबने भाईजीको घेर लिया। उधर बाँकुड़ा जानेके लिये बैलगाड़ी तैयार खड़ी थी। ये हाथ फैलाकर आन्तरिक स्नेहसे एक-एकको हृदयसे लगाकर सान्त्वना दे रहे थे, उनके आँसू पोंछ रहे थे। इन्होंने सबसे अपनी त्रुटियों-के लिये क्षमा माँगी और आशीर्वाद चाहा कि जीवन भगवान्‌की ओर तीव्र गतिसे बढ़े। सबने हृदय भरकर आशीर्वाद दिया। दोनों बैलगाड़ीपर बैठे। गाड़ी चली—लगता था शिमलापाल निवासियोंका हृदय चला जा रहा है—आगे-आगे गाड़ी जा रही थी और पीछे-पीछे चल रहा था—शिमलापालका जनसमूह-आबाल-वृद्ध नर-नारियाँ। भाईजी हाथके इशारेसे सबको लौट जानेका संकेत कर रहे थे, पर भाव-प्रवाहका बाँध टूटनेपर उसकी गतिमें विराम आना कठिन होता है। शिमलापाल गाँव बहुत पीछे छूट गया था। भाईजीको ग्रामवासियोंके लौटनेकी चिन्ता हुई। इन्होंने साहस बटोरा और अवरुद्ध कण्ठसे अस्पष्ट वाणीमें हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"भैयाओं बहुत दूर चले आये, अब लौट जाइये; अब आगे मत चलिये। आपलोग कितनी दूर चलेंगे ? आपलोगोंका स्नेह-प्यार मैं जीवनभर स्मरण रखूंगा। वह मेरे जीवनकी परम निधि है..............।" अन्तस्तलके निकले शब्दोंका प्रभाव पड़ा और ग्रामवासी वहीं रुक गये। वे लोग तबतक वहाँ खड़े रहे, जबतक गाड़ी आँखोंसे ओझल न हो गयी। ये भी ग्रामवासियोंकी ओर मुँह किये उनको निहारते रहे। कई घंटोकी यात्राके पश्चात् ये बाँकुड़ा पहुँचे। वहाँ सम्बन्धियों और मित्रोंसे मिलकर

रेलसे आसनसोल आये। दादी तथा अन्य कुटुम्बी पहलेसे ही आसनसोल पहुँच गये थे। सभीको साथ लेकर ये वहाँसे सीधे रतनगढ़ पहुँचे।

बम्बईका जीवन

भाईजी सपरिवार रतनगढ़ पहुँच गये पर वहाँ घरके सिवा और कुछ था ही क्या ? दादाकी कमाई शिलंगमें भूकम्पके भेंट चढ़ गई थी। कलकत्तेकी वृत्तिसे जो कुछ मिला वह राजनीति, समाज-सेवा और संत-महात्माओंके समर्पित हो गया। पिताजीके जानेके बाद कलकत्तेकी दूकान भाईजी ही सँभालते थे, इनकी अनुपस्थितिमें वहाँ केवल कर्ज ही बचा था। इस अव्यवस्थित स्थितिमें पारिवारिक जीवन-निर्वाहकी समस्या सामने थी। भाईजीके मनमें कोई उद्वेग नहीं था, क्योंकि ये सब बातें पहले सोचकर ही राजनीतिमें प्रवृष्ट हुए थे। अनुकूल पत्नी और सहिष्णु दादीके कारण दिन हँसते-हँसते कट रहे थे। पर वृत्तिके लिये कुछ व्यवस्था तो करनी ही थी। इसी सोच-विचारमें थे कि एक दिन अचानक सेठ जमनालालजी बजाजका पत्र मिला कि तुम बम्बई चले आओ। कोई काम शुरू करा दिया जायेगा। पत्र मिलनेके एक-दो दिन बाद ही बम्बई जानेका निश्चय कर लिया। मुहूर्त दिखाकर भाद्र सं० १९७५ में ये अकेले बम्बई चले गये। वहाँ अपनी बुआके यहाँ एक बार ठहरे। दूसरे दिन जमनालालजी बजाजसे मिलने गये। उनके स्नेहको देखकर ये गद्गद हो गये। यह स्नेह-सम्बन्ध निरन्तर बढ़ता ही रहा।

सर्वप्रथम गुलाबरायजी नेमाणीके साझेमें रुईकी दलालीका कार्य आरम्भ किया। तीन-चार मासके बाद शेयरोंकी

दलालीकी ओर झुकाव हुआ और श्रीमदनलालजी चौधरीके साझेमें शेयरोंकी दलालीका कार्य करने लगे। यह काम १२ महीने चला पर विशेष आमदनी नहीं हुई। नया आयोजन सोचने लगे। श्रीजमनालालजीके कौटुम्बिक भाई श्रीगंगा-विष्णुके साथ 'गंगाविष्णु हनुमानप्रसाद'के नामसे शेयरोंकी दलाली करने लगे। इसमें भी लाभ हुआ पर परिवारके आने-से बम्बईमें खर्च भी बढ़ गया था। रामकौर जैसी दादी और भाईजी जैसे पौत्रकी जोड़ी मिल जानेसे दान-पुण्य भी बहुत बढ़ गया था। नई व्यवस्था सं० १९७७ में 'ताराचन्द घन-श्यामदास' फर्मके मालिक श्रीबालकृष्णलालजी एवं श्री-निवासदासजी पोद्दारके साझेमें शेयरोंकी दलाली 'एस० डी० पोद्दार'के नामसे हुई। लाखों रुपयोंका व्यापार होने लगा। अचानक तीन लाख रुपये व्यापारियोंमें लेने रह गये। दो लाख तो किसी तरह आये पर एक लाख तो नहीं आये। मुनिमोंने भाईजीकी शिकायत की। किन्तु श्रीनिवासदासजीने मुनीमोंको डाँट दिया—मेरी सम्मतिसे सब कार्य हुआ है। घाटा हुआ तो हो गया। भाईजीके हृदयपर इस घाटेका गहरा धक्का लगा और ये रुग्ण हो गये। स्वास्थ्य-सुधारके लिये नासिक जाना पड़ा। वहाँ एक मास रहनेसे स्वास्थ्यमें लाभ हुआ। जमनालालजीको पता लगा तो उन्होंने अपने साले चिरंजीलालजी जाजोदियाके साथ काम शुरु करवा दिया। 'चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद' के नामसे तीसी आदिके सट्टेकी दलाली, निजी व्यापार एवं आढ़तका काम होने लगा। यह काम जबतक बम्बई रहे तबतक चलता रहा।

राजनीतिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियोंका पुनर्जागरण

भाईजीने जबसे होश सँभाला तबसे देश-सेवा एवं

समाज-सेवाकी प्रबल इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही थी। यदि नजरबन्दका प्रतिबन्ध-बीचमें न आ जाता तो न जाने उसका मूर्त-रूप अबतक क्या होता ? पर भगवान्ने इनको दूसरे कार्यके लिये भेजा था। अतः शिमलापालकी साधनाके बाद इनका हिंसात्मक राजनीतिमें विश्वास नहीं रहा। बम्बईमें अनुकूल वातावरण मिलनेसे पुराने संस्कार फिर जगने लगे। जमनालालजीका संग इसमें अत्यधिक सहायक बना। वे उस समय राष्ट्रनेताओंके एक प्रकारसे आश्रयदाता थे। सभी नेता प्रायः इनके ही अतिथि-गृहमें ठहरते एवं उनकी व्यवस्थाका भार भाईजीपर ही था। भाईजीका राष्ट्रनेताओंसे परिचय तो कलकत्तेसे ही था, अब और निकटता बढ़ने लगी। गाँधीजीसे तो अत्यन्त आत्मीयता हो गई थी। यहाँतक कि गाँधीजी जब भी बम्बई आते, तो दादी रामकौरसे मिलने इनके घरपर अवश्य आते थे। श्रीबालगंगाधर तिलक एवं लाला लाजपतरायसे भी स्नेहका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। सं० १९७६ में अ० भा० काँग्रेसका अधिवेशन पं० मोती-लाल नेहरुके सभापतित्वमें अमृतसरमें हुआ। उस समय ये गरम दलके नेता लोकमान्य तिलकके अनुयायी थे। सं० १९७७ में काँग्रेसका अधिवेशन कलकत्तामें लाला लाजपत-रायके सभापतित्वमें हुआ उसमें भी ये गये। उसी वर्ष नाग-पुरमें काँग्रेसने विजयराघवाचार्यके सभापतित्वमें कुछ परिवर्तन-के साथ असहयोग प्रस्तावको स्वीकार किया। इस अधिवेशनमें भी भाईजी उपस्थित थे। सं० १९७८ में हकीम अजमलखाँके सभापतित्वमें काँग्रेसका अधिवेशन अहमदाबादमें हुआ उसमें भी इन्होंने भाग लिया। पर काँग्रेसके साथ क्रियात्मक

सहयोगकी यहींसे इति श्री हो गई। भाईजीकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ही इसमें कारण बनी। इतने वर्ष शीर्षस्थ नेताओंके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहनेसे भाईजीको देशके प्रसिद्ध नेताओंसे मिलने और विचारोंके आदान-प्रदान करनेका सुयोग प्राप्त हुआ। इनमें प्रमुख थे—श्रीविट्ठलभाई पटेल, श्रीवल्लभभाई पटेल, विनायक दामोदर सावरकर, महादेवभाई देसाई, काका कालेलकर, खान अब्दुल गफ्फार खाँ, विनोबाजी, मुहम्मद अली जिन्ना, शौकत अली आदि।

देश-सेवाके साथ ही समाज-सेवामें भी पूर्ण तत्परतासे भाईजी लग गये थे। उस समय समाजकी प्रमुख संस्था 'अखिल-भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल सभा' के सं० १९७६ से ही सक्रिय सदस्य थे। उसी वर्ष महासभाका पहला अधिवेशन हैदराबादमें हुआ। अपने नये व्यापारिक कार्यको गौण करके ये हैदराबाद गये। सं० १९७७ में ये महासभाकी बम्बई शाखाके मन्त्री चुने गये। इस वर्ष महासभाका अधिवेशन बम्बईमें हुआ, जिसकी सफलताका श्रेय इन्हींको था। तृतीय अधिवेशन कलकत्तामें एवं चतुर्थ इन्दौरमें आयोजित हुआ, उनमें भी भाईजीने सक्रिय भाग लिया।

जैसे-जैसे आध्यात्मिक प्रवृति प्रधान होने लगीं, सामाजिक कार्योंमें गौणता आने लगी। व्यक्तिगतरूपसे भा सेवाके कार्य करते ही रहते थे। एक बार गुण्डोंसे एक पापरत लड़कीका उद्धार किया था पर गुण्डोंने इनके विरुद्ध पुलिसमें रिपोर्ट कर दी। सी० आई० डी० के इन्सपेक्टर श्रीपट-वर्धनने इन्हें बुलाकर समझाया कि आप तो विशुद्ध सेवा-भावसे इस कार्यमें पड़े हैं पर यह खतरेका काम है। आप

इस कार्यको छोड़ दें, हमलोग यथाशक्ति प्रयत्नशील हैं। भाईजीको बात युक्तिसंगत लगी। अतः इन्होंने उस कार्यसे अपना हाथ खींच लिया।

इन कार्योंके अतिरिक्त गुप्तरूपसे अनाथोंकी सेवा, निर्धन विद्यार्थियोंकी सहायता, विधवाओंकी आर्थिक सहायता, रोगियोंकी तन-मन-धनसे सेवा करते रहते थे। आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न होनेपर भी इन कार्योंके लिये घरके खर्च कम करके रुपयोंकी व्यवस्था कर देते थे। इन कार्योंके कारण ये सभीके प्रिय हो गये थे।

विदेशी-वस्त्रोंकी होली

भाईजीकी आयु जब तेरह वर्षकी थी, उसी समय सं० १९६२ में लार्ड कर्जनद्वारा बङ्ग-भङ्गकी घोषणा होनेपर स्वदेशी-व्रत ले लिया था। बचपनका यह निश्चय जीवन-पर्यन्त निभा ही नहीं, उसमें और उज्ज्वलता आ गई। गाँधीजीसे भी डेढ़ साल पहले भाईजीने खादीका प्रयोग आरम्भ किया और अन्ततक खादी ही पहनते रहे। बम्बईके जीवनमें जब गाँधीजीसे आत्मीयता बढ़ी तब खादीके प्रचारमें भी सक्रिय सहयोग दिया। यहाँतक कि भाईजी एवं उनके कुछ साथी अपने व्यापारसे समय निकालकर खादीके बंडल पीठपर लादकर घर-घर बेचने जाते थे।

इसके बाद गाँधीजीके स्वदेशी-आन्दोलनने जोर पकड़ा तो केवल विदेशी-वस्तुओंका बहिष्कार ही नहीं हुआ विदेशी-वस्त्रोंको जलाया जाने लगा। गाँधीजीका कहना था, जब विदेशी-वस्त्र पहनना पाप है तो उसे दूसरेको पहनेके लिये न देकर जलाया जाना ही उचित है। गाँधीजी भाईजीके घर

आकर दादी रामकौरसे भी विदेशी वस्त्र माँगकर ले गये और उन्हें जला दिया गया।

भाईजी भी इस आन्दोलनके पूरे पक्षमें थे। उन्हें पता था कि दादीके द्वारा विदेशी वस्त्र दिये जानेके पश्चात् भी उनकी धर्मपत्नीके पास विदेशी वस्त्र थे। उनको भी जलानेके उद्देश्यसे उन्होंने अपनी धर्मपत्नीको बोले कि यदि तुम्हारी अनुमति हो तो घरके सारे विदेशी वस्त्र जला दिये जायँ। उनकी इच्छा थी जलानेके स्थान पर गरीबोंको बाँट दिये जायँ। किन्तु भाईजीने गाँधीजीकी दलील रख कर समझाया। जब भाईजीकी हार्दिक इच्छा देखी तो सच्ची पतिव्रताकी तरह घरके सारे विदेशी वस्त्र एकत्रित करके सामने रख दिये। यह विचार भी नहीं किया कि अमुक साड़ी तो बहुत कीमती है। जब वस्त्रोंका ढेर लग गया तो भाईजीने पूछा—'और तो कोई विदेशी वस्त्र घरमें बचा नहीं है न?' उत्तर मिला—नहीं। भाईजीने सावधान किया कि फिर देख लो, शायद कहीं बचा-खुचा पड़ा हो। वही उत्तर मिला—'कहीं कुछ नहीं है।' भाईजीको एक साड़ी दिखलायी दे रही थी, अतः उन्होंने पत्नीकी पहनी हुई साड़ीको देखा। भाईजीके बार-बार आग्रह करनेका अर्थ अब उनकी समझमें आया। 'अभी आती हूँ' कहकर वे कमरेमें गयीं, अपनी साड़ी बदलकर उस अन्तिम अवशेष साड़ीको भी वस्त्रोंके ढेरपर डाल दिया। देखते-ही-देखते वह ढेर राखमें परिणत हो गया।

इसी तरहकी दूसरी घटना घटी जब भाईजी गोरखपुरमें गोरखनाथ मन्दिरके निकट बगीचेमें रहते थे। एक सम्बन्धी उनकी एक मात्र सन्तान सावित्रीके लिए कुछ

विदेशी वस्त्र दे गया । शामको गीताप्रेससे भाईजी लौटे तो उन्हें पता लगा । उसी समय वे वस्त्र मँगवाकर आँगनमें ही वस्त्रोंको जलाकर होली कर दी ।

अध्यात्म-भावनाका पुनरुद्रेक

भगवान्‌ने जिस कार्यके लिये भाईजीको भेजा था, उसकी ओर आकर्षण बम्बईके भोग-प्रधान व्यापारिक जीवन-में रहते हुए भी होने लगा । यह साधारण नियमका अपवाद कहा जा सकता है । प्रधान रूपसे व्यापार करते हुए तथा राजनीतिक एवं सामाजिक कार्योंमें पूरा भाग लेते हुए किसी-का जीवन साधनाके सोपानोंपर चढ़ने लगे और वह भी बम्बई जैसे नगरमें रहते हुए तो उसे अवश्य ही भगवद्-इच्छा ही कहना पड़ेगा । भाईजीके जीवनमें यही हुआ ।

बम्बई आनेके दस महीने वाद ही छोटी बहिन अन्नपूर्णा-के विवाहके लिये भाईजीको बाँकुड़ा जाना पड़ा । इस निमित्तसे सेठजी श्रीजयदयालजीका सत्सङ्ग भी प्राप्त हुआ । लगातार कई दिनोंतक दोनोंके साथ रहनेका सुअवसर इसके पहले नहीं आया था । इस बार दोनों पावन हृदयोंका सम्मेलन अत्यन्त निकटसे ही रहा था । भाईजीका हृदय कृत-ज्ञतासे पूर्ण था, क्योंकि सेठजी इनकी नजरवन्दीके समय जब भी कलकत्ता जाते, तब भाईजीके परिवारसे अवश्य मिलते थे । इस मिलनके वाद भाईजी सेठजीके प्रति और भी खींच गये । बम्बई लौटनेपर मिलनेकी इच्छा होती थी । इच्छा सच्ची होनेसे उसके अनुरूप भगवान् व्यवस्था कर देते हैं । थोड़े समय बाद श्रीजमनालालजी बजाज श्रीसेठजीसे मिलने चक्रधरपुर जा रहे थे । भाईजी भी उनके साथ हो गये ।

चक्रधरपुरमें श्रीसेठजीके सत्संगका लाभ तो मिला ही साथ ही उन्होंने अपनी दो पुस्तकें 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' और 'प्रेमभक्ति प्रकाश'के भाषा संशोधनका कार्य भाईजीको सौंपा। भाईजीने केवल उनकी भाषा ही नहीं सुधारी, एक प्रकारसे उनका कायाकल्प कर दिया। सेठजी अपने मूल भावोंको अत्यन्त स्पष्ट तथा प्रभावशाली शैलीमें अभिव्यक्त देखकर गद्‌गद हो गये। उनको भाईजीके हृदयके भावों एवं योग्यताका परिचय प्राप्त हो गया। श्रावण सं० १९७७ में ये पुनः बम्बई लौट आये।

सं० १९७८ में 'भिवानीके भक्त' श्रीलक्ष्मीनारायणजीका हरिनाम प्रचारके लिये बम्बई आगमन हुआ। ये नवद्वीपवासी गौड़ीय संत श्रीरामकरणजीके अनुगत थे। स्थान-स्थानपर घूमकर मस्त होकर कीर्तन करते हुए हरिनामका प्रचार करते थे। कीर्तनमें नृत्य करते हुए इन्हें मूर्छित होते हुए भाईजीने देखा तो इनकी कीर्तन निष्ठासे भाईजी बहुत प्रभावित हुए। इनके संगसे भाईजीके मन, प्राण, वाणी, शरीर सब भगवद्-रसमें डूबने लगे। पुनः वही सत्संग, भजन, कीर्तनका प्रवाह जीवनको जगत्‌की ओरसे मोड़कर अनन्तकी ओर बहा ले चला। लगभग माघ सं० १९७८ से भाईजीकी साधना पुनः विशेष तत्परतासे प्रारम्भ हुई। उन्हीं दिनों कुछ भगवत्कृपाके चमत्कारकी ऐसी घटनायें हुईं जिन्हें देखकर भाईजीका भगवत्कृपापर अखण्ड विश्वास हो गया। पद-रचना भी इन्हीं दिनों प्रारम्भ हुई।

श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे बम्बईमें भेंट

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया भाईजीके कलकत्तेसे ही

घनिष्ठ मित्र थे एवं सेठजीमें परम श्रद्धा रखते थे। उन्होंने भाईजीको पत्र लिखा कि चेष्टा करके श्रीजयदयालजीको बम्बई बुलाओ। पत्र पाते ही भाईजीने चेष्टा प्रारम्भकर दी। स्वयने पत्र, तार दिये एवं अनेकों मित्रोंसे तार एवं बार-बार पत्र दिलाये। प्रेमके आग्रहकी उपेक्षा सेठजी कैसे करते ? सं० १९७९ की शरदऋतुमें सेठजी अपने २०-२५ साथियों सहित बम्बई पधारे। भाईजीकी प्रेरणासे सैकड़ों प्रतिष्ठित व्यक्ति स्टेशन आये एवं सेठजीका भव्य स्वागत हुआ। भीड़ देखकर सेठजी पैदल ही सुखानन्दजीकी धर्मशाला गये, अपने आप ही जुलूस बन गया। सेठजी १० दिन बम्बई ठहरे। धर्मशालामें पहला व्याख्यान निष्काम कर्मयोगपर हुआ। श्रीनर-नारायणजीके मन्दिरमें कीर्तन प्रारम्भ हुआ। दस दिनोंमें सत्संगकी पवित्र-धारामें न जाने कितने व्यक्तियोंने निमज्जन किया। लौटनेके दिन सत्संगमें सेठजीने सुन्दर विदाईकी याचनाकी। नम्रतासे कहा—"मेरे जानेके बाद आपलोग प्रतिदिन नियमसे सत्संग करें।" उत्तरमें श्रीशिवनारायणजी नेमाणी बोले—'सत्संग अवश्य होना चाहिये। स्थान मैं अपनी बाड़ीमें कम-से-कम पाँच सालके लिये देता हूँ। वक्ताकी व्यवस्था आप करें।' सेठजीने भाईजीको आदेश दिया कि कुछ देर सत्संगकी बातें कहा करें। भाईजी पहले तो कुछ झेंप-से गये पर आदेशके सामने नत मस्तक हो गये। सेठजी बम्बईसे लौट गये, पर अपनी स्मृतिमें सत्संगकी धारा छोड़ गये। धारा भाईजीके साथ तेजीसे बह चली। भाईजी विस्तारसे गीतापर प्रवचन करने लगे। कई वर्षोंतक यह क्रम चालू रहा।

गीताकी दो आवृत्तियाँ विस्तार पूर्वक समाप्त हुई। सोलहवें अध्यायके पहले तीन श्लोकोंपर लगातार कई महीनोंतक व्याख्या चली। अठारहवें अध्यायके ६६वें श्लोकपर एक महीने प्रवचन हुआ। पहले तो सत्संग दिनमें होता रहा पर कुछ दिनों बाद रात्रिमें होने लगा। सत्संगमें मारवाड़ी, मराठी, गुजराती सभी लोग आते। श्रीजमनालालजी बजाज जब बम्बईमें रहते, तब बराबर आते। गाँधीजीके अनुयायी श्रीकृष्णदास जाजू नियमित आते। बादमें रामचरित मानस पर भाईजी प्रवचन करने लगे। प्रवचन अत्यन्त भावपूर्ण होता एवं श्रोता मन्त्र-मुग्धकी तरह सुनते। बीच-बीचमें साधु महात्मा भी पधारते तो भाईजी उनसे सत्संग कराते। इस नाते भाईजीका परिचय अच्छे-अच्छे महात्माओंसे हो गया। इनमें मुख्य थे—श्रीस्वामी अच्युतमुनीजी, श्रीभोलेबाबाजी, श्रीउड़िया स्वामीजी, श्रीहरिबाबाजी, स्वामी शिवानन्द-जी, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी। रामानुज सम्प्रदायके आचार्य श्रीअनन्ताचार्यजी महाराज एवं बल्लभ सम्प्रदायके आचार्य श्रीगोकुलनाथजी महाराजसे भी स्नेहका सम्बन्ध हो गया। इन्हीं दिनों पं० हरिबक्सजी जोशी सत्संगमें आने लगे। ये संस्कृतके सुन्दर-सुन्दर श्लोक भाईजीको सुनाते। भाईजीसे इनकी मित्रता हो गई। प्रसिद्ध गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बरजी महाराजसे भी परिचय हो गया। वे भी भाईजीपर बड़ा स्नेह रखने लगे। सं० १९८० के पुरुषोत्तम (ज्येष्ठ) मासमें इनकी कथा प्रातः ७ से ९ बजे तक सत्संग भवनमें हुई। कथाके समय रसका श्रोत

बहता। कभी-कभी रात्रिमें भी पधार कर कथा कहने लगे। समय-समयपर नगर संकीर्तनका भी आयोजन होता। रामनवमी, जन्माष्टमी, छारण्डीके दिन वृहद् नगर संकीर्तन निकलता। हजारों व्यक्ति सम्मिलित होते। भाईजी कभी-कभी कीर्तनमें बेसुध हो जाते। इनके प्रवचनोंसे प्रभावित होकर स्थानीय मारवाड़ी विद्यालयमें बालकोंको गीताकी शिक्षा देनेके लिये भाईजीको आग्रह पूर्वक बुलाया। ये बड़े प्रेमसे एक घंटे विद्यार्थियोंको गीताका मर्म समझाने लगे। प्रसिद्ध नेता डा० राममनोहर लोहिया उन दिनों इस विद्यालयके विद्यार्थी थे। भाईजीकी गीता शिक्षाकी बातें उन्हें जीवनभर स्मरण रहीं एवं कई बार अपने व्याख्यानोंमें इसकी चर्चा की। यह सब सेठजीकी बम्बई यात्राका ही परिणाम था। भाईजीकी साधना भी उद्दीप्त होने लगी।

दादी रामकौर अपने पौत्रकी दिनचर्यासे परम प्रसन्न थी। संतोंके आशीर्वादसे लेकर अभी तकका दृश्य उनके सामने था। अब उनका अभिनय समाप्त हुआ। देवी रामकौर हँसती हुई नृसिह जयन्तीके दिन वैसाख शुक्ला १३ सं० १९८० बम्बईमें सूत्रधारके चरणोंमें जा पहुँचीं। सभीने देखा रामकौर देवी प्रसन्न चित्तसे "सोऽहम्-सोऽहम्" का जप कर रही थीं। भाईजीके परिवारकी कर्णधार ये ही थी, उनके जानेसे परिवार एकबार सूना-सा हो गया। भाईजीने बहुत उदारतासे धन व्यय करके इनका श्राद्ध सम्पन्न किया मानो कोई विशेष आनन्दोत्सव हो।

भगवत्कृपाके चमत्कारकी चार घटनायें

भाईजी बराबर कहते थे कि भगवान्की कृपासे असंभव

भी सम्भव ही जाता है। यह केवल शास्त्रोंके आधारपर नहीं कहते थे। उनके जीवनमें ऐसी अनेक घटनायें हुई, जिनसे उनका विश्वास अडिग हो गया। यहाँ ऐसी चार घटनायें प्रस्तुतकी जा रही हैं।

(१) बम्बईमें भाईजीके एक साथी हरीराम शर्मा थे, जो रुईकी दलाली करते थे। भाईजीने हरीरामको सलाह दी कि तुम 'अमुक' मित्रके सट्टेका काम मत करना। उनको घाटा लगा हुआ है, यदि और लग जायगा तो वह दे नहीं सकेगा। पर विधिका विधान हरीरामने दलालीके लोभवश उनका बड़ा सौदा कर दिया। बड़ा नुकसान हुआ, भुगतान न देनेसे इज्जत जानेका भय था। हरीराम उदास मुँहसे भाईजीके पास आकर बैठ गया। सारी परिस्थिति बता दी। भाईजीने कहा इसीलिये मैंने तुम्हें पहले सावधान किया था। वह बहुत कातर भावसे बोला—"अब क्या करूँ।" भाईजीने कहा—"भगवान्‌के सामने रोओ; वे सच्ची प्रार्थना अवश्य सुनते हैं।" वह समीपकी कोठरीमें जाकर कोठरी बन्द करके प्रार्थना करने लगा। थोड़ी देर बाद भाईजीके मित्र श्रीबालकृष्णलालजी पोद्दारका फोन आया कि घूमने चलोगे क्या? भाईजीके हाँ कहनेपर वे गाड़ी लेकर आ गये और दोनों घूमने चले गये। वापिस लौटे तो उन्होंने भाईजीसे पूछा—हरीराम कहाँ है? भाईजीने सारी बातें बता दी। उन्होंने कहा कल मेरेसे ब्लैंक चेक मँगवा लीजियेगा। भाईजीने हरीरामको कोठरीसे निकालकर सारी बातें कह दी। दूसरे दिन उन्होंने चेक भेज दिया और हरीरामका भुगतान हो गया। भगवान्‌की कृपाके चमत्कारसे सभी आश्चर्यचकित थे, क्योंकि बालकृष्णलालजी रुपयोंके सम्बन्धमें

अनुदार थे। दो तीन महीने बादमें रुपये ब्याज सहित लौटा दिये गये।

(२) आवश्यकता होते ही जीवके पास भगवान्की असीम करुणाभरी सहायता आ पहुँचती है। बिना प्रार्थना किये भी जब उनकी सहायता मिलती है, फिर प्रार्थना करनेपर मिले, इसमें तो कहना ही क्या है? घटना यह हुई थी—एक गुजराती सज्जनको फाटकेमें बड़ा घाटा लगा, उस समय उसे कोई सहायक नहीं मिला। भाईजी उसके परिचित थे। इनके पास आकर करुण हृदयसे उसने अपनी सारी परिस्थिति बता दी तथा २७,००० रु० माँगे। दयासे पूर्ण इनका हृदय आरम्भसे ही था, भजनके प्रभावसे भी कोमल होता जा रहा था। इन्होंने बिना अपने साझीदारसे परामर्श किये ही २७,००० रुपये रोकड़में लिखे बिना ही उसे अपने रोकड़ियेसे दिला दिये। रुपये लेकर वह चला गया, पर जिस दिन रुपये वापस देनेका वचन दे गया था, परिस्थितिवश उस दिन रुपये लौटा न सका। उधर दूसरे दिन ही साझीदार द्वारा रोकड़ सँभालनेकी बात थी। न तो इन्होंने कोई बेईमानी की थी, न उस गुजराती सज्जनके मनमें ही कोई बेईमानी थी, परिस्थिति ऐसी हो गयी थी कि दूसरे दिन रोकड़ सँभालते समय इन रुपयोंके सम्बन्धमें इनके पास कोई उत्तर न था। सच-सच बतला देनेपर भी इनका विश्वास साझीदारको उस समय न होता और ये बेईमान सिद्ध हो जाते—इन सब बातोंको सोचकर इनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो गया। २७,००० रुपये कहींसे उधार मिलनेका भी ढंग नहीं था। अत: सर्वथा उद्विग्नचित्तसे ये दुकानसे बाहर निकल पड़े। निरुद्देश्य चले जा रहे थे, मुखसे भगवन्नामकी रट लग रही

थी। दो तीन मील पैदल चले गये, यह भी ज्ञान नहीं था कि किस पथसे, किस तरफ जा रहा हूँ। हठात् एक मित्रसे भेंट हो गयी, मित्रने आग्रहसे पूछा—बताओ बात क्या है? इन्होंने बतला दिया कि २७,००० रु० की जरूरत है। उस मित्रने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा कि मेरे आज रुपये आनेवाले थे, चलो बैंकमें पता लगा लें, यदि आये होंगे तो मैं तुम्हें दे दूँगा। इधर विधि ऐसी बैठी कि सामने ही इण्डिया बैंक था। दैवक्रमसे दोनों मित्र ठीक बैंकके सामने फुटपाथपर मिले थे। अतः एक मिनटके अन्दर ही बैंकमें जा पहुँचे। मित्रने जो सहानुभूति प्रकट की थी, उसमें सर्वथा शिष्टाचार ही था तथा उसे यह निश्चित पता था कि आज तो बैंकमें रुपये नहीं आयेंगे। इस प्रकार रुपये भी देने न पड़ेंगे तथा सुन्दर ढंगसे मित्रोचित व्यवहार भी निभ जायेगा। पर दैवका विधान था, बैंकके बाबूसे पूछते ही उत्तर मिला कि अभी रुपये आये हैं तथा उतनी ही रकम आयी थी, जितनी भाईजीको आवश्यक थी। बैंकके क्लर्कका स्पष्ट उत्तर भाईजी बगलमें खड़े होकर सुन चुके थे। अतः अब कोई बहाना भी नहीं चल सकता था, मित्रने असमंजसमें पड़कर उतने ही रुपयोंका चेक काट दिया। रुपये लेकर इन्होंने अपनी दुकानकी रोकड़में जमा करा दिये, इनकी प्रतिष्ठा बच गयी। कुछ दिन बाद उस गुजराती सज्जनने भी रुपये लौटा दिये और उन्होंने भी अपने मित्रको रुपये दे दिये। भगवान्‌की यह अप्रत्याशित कृपा पाकर इनका रोम-रोम कृतज्ञतासे भर गया। भगवत्कृपा कैसे व्यवस्था करती है, इसे देखकर भाईजी आश्चर्यमें डूब गये।

(३) केवल रुपयोंकी ही बात नहीं है। भगवत्कृपा-से कैसे प्राण-रक्षा होती है इसका एक चमत्कार तो आसाम-में भूकम्पके समय देख चुके थे। अब बम्बईमें एक घटना ऐसी हुई कि जिससे भाईजीके मनमें श्रीभगवान्‌पर अत्यधिक विश्वास बढ़ा। यह घटना उनकी लेखिनीसे ही आगे चलकर कल्याणमें प्रकाशित हुई।

"सन् १६१६ ई० की बात है। मैं बम्बईमें रहता था। रातको अपने फूफाजी श्रीलक्ष्मीचन्दजी लोहियाके घरपर, जो बम्बईसे कुछ दूर बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे शान्ताक्रुज स्टेशनके पं० शिवदत्तरायजी वकीलके बँगलेमें रहते थे, जाकर खाया और सोया करता था। एक दिनकी बात है रातको करीब ८ बजे थे। कृष्ण पक्षकी अँधेरी रात थी मैं लोकल ट्रेनसे जाकर शान्ताक्रुजके प्लेटफार्मपर उतरा। अब तो दोनों ओर प्लेटफार्म है, उस समय एक ही ओर था। और रोशनीका भी प्रबन्ध नहीं था। न इंजिनकी सर्चलाइट थी। श्रीशिवदत्तरायजीके बँगलेमें जानेके लिये रेलवे लाइन लाँघकर उस ओर जाना पड़ता था। मैंने बेवकूफी की। दौड़कर इंजिनके सामनेसे लाइन पार करने चला। लोकल ट्रेन एक ही मिनट ठहरती है, मैं नया था, मैंने समझा गाड़ी छूटनेके पहले ही मैं लाइन पार कर जाऊँगा, परंतु ज्यों ही मैंने लाइनपर पैर रखा, त्यों ही गाड़ी छूट गयी। परंतु ईश्वरीय प्रेरणा और प्रबन्धसे उसी समय किसी अज्ञात पुरुषने मेरा हाथ पकड़कर जोरसे खींच लिया। मैं दूसरी लाइनपर जा गिर पड़ा। गाड़ी सर्राटेसे निकल गयी, तीन काम एक साथ हुए। मेरा लाइन लाँघना,

गाड़ी छूटना और अज्ञात व्यक्ति द्वारा खींचे जाना। एक ही दो सेकेंडके विलम्बमें मेरा शरीर चकनाचूर हो जाता। परन्तु बचानेवाले प्रभुने उस अँधेरी रातमें उसी जगह पहले ही मुझे बचानेका प्रबन्ध कर रखा था। मैं थर-थर काँप रहा था। ईश्वरकी दयालुतापर मेरा हृदय गद्गद् हो रहा था। आँखोंसे आँसू बह रहे थे, मैंने स्टेशनके धुंधले प्रकाशमें देखा, एक नौजवान बोहरा खड़ा हँस रहा है और बड़े प्रेमसे कह रहा है आइन्दे ऐसी गल्ती न करना आज भगवान्‌ने तुम्हारे प्राण बचाये। मैंने मूक अभिनन्दन किया, कृतज्ञता प्रकट की। लाइनपर रोड़ोंमें गिरा था पर दाहिने पैरमें एक रोड़ा जरा-सा गड़नेके सिवा मुझे कहीं चोट नहीं लगी। मैं दौड़कर घर चला गया। और ईश्वरको याद करने लगा"।

—ईश्वरांक पृष्ठ सं० ६१४

अनन्त दयामय प्रभुने हम सबकी भी न जाने कैसे-कैसे कितनी बार रक्षा की होगी, अब्र भी करते हैं। पर हम अभागे प्राणी इस अयाचित, अप्रत्याशित करुणाकी बात भूल जाते हैं। इन घटनाओंसे हमारे मनमें उनकी मधुर स्मृति नहीं जाग उठती, भाईजी हृदयकी अनुभूतियोंका आदर करना जानते थे। इसीलिये इन्होंने इसे मस्तिष्कपर न तौलकर हृदयकी अनुभूतिसे परखा और आनन्द लिया।

(४) एक ऐसी ही और घटना हुई जिसे भाईजीने 'कल्याण'में इस प्रकार प्रकाशित किया—

"सन् १६२६ की बात है मैं लक्ष्मणगढ़के भाई श्री-लच्छीरामजी चूड़ीवालेके धन और परिश्रमसे स्थापित

ऋषिकुलके उत्सवमें-शरीक होने बम्बईसे जा रहा था। अहमदाबाद से दिल्ली ऐक्सप्रेसके द्वारा रवाना हुआ। मैं सेकेण्ड क्लासमें था। मेरे साथ एक ब्राह्मण बालक ऋषि-कुलमें भर्ती होने जा रहा था। मैं इधर की एक सीट पर सोया था और सामनेकी सीटपर वह सोया था। दूसरे दिन सुबह अन्दाजसे पाँच बजे थे। ब्यावर स्टेशन पर एक टी० टी० महोदय हमारे डिब्बेमें सवार हुए। 'मैं जिस सीटपर सोया था, उसी सीट पर मेरे पैरोंके पास वे बैठ गये। मैं जग रहा था। अपने पैरों के पास किसीका बैठना मुझे अच्छा न लगा। इससे शिष्टाचारके नाते मैं उठ बैठा। सोया था, तब मेरा सिर सीट की अन्तिम तीसरी खिड़कीके पास था, जागकर बैठा तो वह खिड़की खाली हो गयी। मैं बीचकी खिड़कीके पास बैठ गया, और टी० टी० महोदय इधरकी तीसरी खिड़कीके पास बैठे थे। तीनों खिड़कियाँ बन्द थीं। मैं टी० टी० महोदयके साथ बातें कर रहा था। इतनेमें ही पीछेसे बड़े जोरकी आवाज हुई और दूसरी सीटपर सोये हुए ब्राह्मण बालकने एक चीख मारी। हमलोग भौंचक्के रह गये। पीछे घूमकर देखा तो मालूम हुआ कि एक बहुत बड़ा पत्थर खिड़कीके काँचके लगा। खिड़कीका बहुत मोटा काँच टूटकर चूर-चूर हो गया। और उसके टुकड़े-टुकड़े उछल-उछलकर सब तरफ बिखर गये। उसीका एक जरा-सा टुकड़ा बालकके सिरमें लगा था। इसीसे उसने चीख मारी थी। मैं सोया होता तो अवश्य ही खिड़कीके पास मेरा सिर रहता और वह जरूर ही पत्थर और काँचकी चोटसे टूट जाता, परंतु बचानेवालेने टी० टी० महोदयको भेजकर मुझे प्रेरणा की।

मैं बैठ गया और बच गया । यह घटना अजमेरके पास मकरेरा और सरघना स्टेशनके बीचकी है ।

——ईश्वरांक पृष्ठ ६१४

निराकारकी साधना एवं स्थिति—भगवान् श्रीरामके दर्शन

श्रीसेठजीके दस दिनोंके सत्संगके पश्चात् भाईजीकी अपनी साधनामें बड़ी तीव्रता आगयी थी । उन दिनों भाई-जी विशेष रूपसे निर्गुण निराकार की उपासना करते थे पर उनकी निष्ठा भगवान् और भगवन्नाममें वैसे ही बनी हुई थी । सच्चे संतका संग अमोघ होता ही है ।

श्रीसेठजीसे निर्विशेष ब्रह्मकी धारणा, ध्यानकी बात भी दस दिनोंमें काफी हुई थी । उसीके अनुसार नियमित रुपसे ध्यान करने लगे । कितनी शीघ्रतासे एवम् कितनी ऊँची स्थिति होने लग गयी थी——इसका विवरण स्वयं भाईजीके श्रीजयदयालजीको समय-समय पर लिखे हुए पत्रों-से ही पता चलता है । ये लिखते हैं——

मेरे ध्यानकी स्थिति ठीक मालूम होती है । कार्य करते समय समष्टि चेतनमें स्थिति निरन्तर बनी रहती है । यों भी शायद कहा जा सकता है कि कार्य कालमें क्रिया सहित और जो कुछ भी भान होता है सो स्वप्नकी सृष्टिवत् होता है । साथ-ही-साथ यह प्रत्यक्ष-सा भास होने लगता है कि स्वप्नवत् भी नहीं है । वास्तवमें परमात्मा-ही-परमात्मा है । वैसी स्थितिमें किसी-किसी समय बिल्कुल अचिन्त्य अवस्था हो जाती है, तब कार्यमें रुकावट भी आती है । ध्यान करते समय तो अब प्रायः बाहरके शब्दोंका भी ख्याल नहीं

रहता है। सारे आकारोंका अभाव करनेवाली वृत्ति भी शान्त होकर अचिन्त्यके अस्तित्वमें विलीन हो जाती है। केवल बोधस्वरूप आनन्दघन ही रह जाता है। ध्यानके बाद और समय जो स्थिति रहती है, वह ऊपर लिखी गयी है। शरीरको या जगत्को साथ मानकर तो शरीरमें स्थिति कभी होती ही नहीं; पर न मालूम क्यों जगत्की क्रियाओंमें जो शरीरद्वारा होती हैं और जो समय-समयपर केवल स्वप्नकी सृष्टि या आकाशके तिरमिरोंके समान ही अपना अस्तित्व रखती हैं, उनसे भी उपराम होनेकी स्फुरणा होती है। ऐसी स्फुरणा होती है कि ये क्रियाएँ भी न हों तो अच्छा है। आपके साथ या किसी गङ्गास्थित देशमें रहा जाय तो ठीक है। ऐसी स्फुरणा हुआ करती है। संभवतः यह सब अपनी कमजोरियाँ होंगी, पर ऐसी स्फुरणा होते समय भी जगत्का अस्तित्व स्वप्नवत् ही रहता है। यह अच्छी बात है और जो कुछ मेरे लिये ठीक समझें, लिखना चाहिये। ध्यानकी स्थिति निरन्तर गाढ़ बनी रहे, जगत्की स्वप्नवत् स्फुरणा भी न हो।*

.........रातमें सोनेके अतिरिक्त अन्य समयमें अधिकांश कालमें प्रायः इस प्रकारकी भावना हुआ करती है। किसी समय भूल हो जानेपर फिर तत्क्षण भावना जागृत हो जाती है। भूलकी स्थिति अधिक कालतक नहीं रहती है। जगत् स्वप्नवत् मृगतृष्णाके जलवत् प्रतीत होने लग जाता है। इस प्रकारकी स्थिति है। हर्ष-शोकका विकार बहुत ही कम होता है। अब मेरे लिये जो कुछ ठीक समझा जावे उसी

* यह पत्र सं० १९८० वि० के वैशाख मासमें दिया गया था।

तरह करना चाहिये ।*

पत्र लिखते समय आनन्दमय बोध स्वरूप परमात्मामें प्रत्यक्षवत् स्थिति है । कलमसे अक्षर लिखे जा रहे हैं। लिखनेकी जो स्फुरणा हो रही है, वह सच्चिदानन्दके अन्तर्गत कल्पित रूपसे भास रही है । कभी-कभी यह भी नहीं भासती । एक परमात्माके अतिरिक्त किसी वस्तुके अस्तित्वका अनुभव नहीं रह जाता––मानो अनन्त जलके अथाह समुद्रमें एक बरफ पिण्डके आकारकी प्रतीति हो रही थी, वह भी मिट गयी, केवल जल ही जल रह गया······फिर भी कलम चल रही है, लिखी जा रही है । हाँ बोध स्वरूप आनन्द, भूमानन्दमें स्थितिमें कोई अन्तर आता हुआ नहीं दीखता। स्थिति क्या है, वह लिखी नहीं जा सकती······बहुत देर बाद फिर लिखनेकी स्फुरणा सी अनुमान होती है, पर भाव उसी तरह है······इस समय जैसी स्थिति है, वह सदा ऐसी नहीं रहती । बीच-बीचमें कुछ परिवर्तित-सी दीखती है, पर परिवर्तनकालमें भी अधिक-से-अधिक इतना ही परिवर्तन होता है––अचिन्त्यकी स्थितिसे एक प्रकारके अनुभवगम्य आनन्दकी स्थिति तथा इससे भी कुछ नीचे आनन्दकी स्थितिसे द्रष्टाकी स्थिति होती है, काम करते समय जिस समय विषयोंकी स्फुरणा होती है, उस समय उस शरीरके सहित और सारे विषय अपने समष्टि, सर्वव्यापी चेतन स्वरूपमें कल्पित भ्रमवत ही प्रतीत होते है, पर प्रतीत् अवश्य होते हैं । हाँ कभी-कभी इस तरह होते-होते विषयोंके

---

* यह पत्र सं० १९८० वि० के श्रावण शुक्लामें बम्बईसे बाँकुड़ा लिखा गया था।

अस्तित्वकी प्रतीति भी सर्वथा नष्ट हो जाती है। कोई वृत्ति अवशिष्ट नहीं रहती। एक अनुपम, अनिर्वचनीय, अप्रमेय आनन्दकी इन्द्रिय, मन, बुद्धिसे अतीतकी अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह अवस्था पीछे अच्छी तरह स्मरण भी नहीं रहती, विस्मृत भी नहीं होती, शब्दोंमें उसका वर्णन नहीं कर पाता............।*

उपर्युक्त पत्रोंके विवरणसे यह स्पष्ट है कि ज्ञानकी बातें भाईजीके लिये केवल सुनने-सुनानेकी चीज नहीं रही थी, बल्कि सचमुच ही अन्तस्तलमें जा पहुँची थी। उन बातोंने मनमें घर कर लिया था। जगत् उनके लिये सत्य-वस्तु नहीं रह गया था, पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि जगत्को मिथ्या माननेके साथ वे आजकलके ज्ञानाभिमानोंकी भाँति भगवान्के विग्रह अवतार आदिको भी मिथ्या, मायाकल्पित मानते थे। एक तरफ तो उनके ध्यानकी ऐसी ऊँची अवस्था होती थी कि रात्रिमें लगातार नौ-नौ घंटे वे समाधिस्थसे रहते थे। बात करते हुए उन्होंने सत्सङ्गमें स्वयं कहा था कि उस समय मुझे शरीरका बिल्कुल भान नहीं रहता था। यदि मेरे शरीरमें कोई सूई चुभा देता तो मुझे बिल्कुल प्रतीति नहीं होती—इतनी गाढ़ अवस्था ध्यानकी होती थी, और व्यवहार करते समय यह प्रतीति होती थी कि आकाशमें तिरमिरोंकी भाँति जगत् शुद्ध अनन्तानन्द, बोध स्वरूपानन्द ब्रह्ममें भ्रमवत् है। पर यह होते हुए भी भगवान्, भगवन्नामपर उनकी आस्था ज्यों-की-त्यों बनी

---

* यह पत्र सं० १९८० वि० के कार्तिक कृष्णमें बम्बईसे बाँकुड़ा दिया गया था।

हुई थी। साकार विग्रहके प्रति उनके मनमें यह भाव कदापि नहीं था कि यह भी तिरमिरेकी भाँति एक मिथ्या प्रतीति है। वे तो भगवान्, भगवत्कृपा, भगवन्नामकी कृपाका पद-पदपर निरन्तर अनुभव करते रहते थे। उन दिनों एक अनुभव तो इन्हें ऐसा हुआ कि जिसके लिये बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र भी लालायित रहते हैं। उसका वर्णन करते हुए गोरखपुरमें एक दिन सत्सङ्गके समय उन्होंने स्वयं कहा था—"बम्बईकी बात है। मैं श्रीसागरमल गनेड़ीवालेके साथ सूरदासका नाटक देखनेको जानेवाला था। सागरमलका घर रास्तेमें ही था। सागरमलने कहा—चलो घर चलकर पानी पी लें। मैंने स्वीकार कर लिया और हम दोनों उसके घर पहुँचे। घर पहुँचनेपर श्रीभगन्नामके सम्बन्धमें बात चल पड़ी। सागरमलका कहना था कि भगवन्नाम जप, भगवत्-स्मृतिके साथ होनेसे ही विशेष फल होता है। मैं कहता था कि नहीं, किसी भावसे जाने या अनजानेमें अन्त समय यदि "रा" और "म" ये दो अक्षर मुखसे निकल गये तो प्राणीकी सद्गति होगी ही। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इस मंत्रके अक्षरोंमें ही ऐसी शक्ति है। यह सुनकर सागरमलने कहा—आर० ए० एम०—रामका अर्थ अंग्रेजीमें मेंढ़ा होता है। यदि कोई अंग्रेज मरते समय मेंढ़ेके भावसे "राम" पुकार उठे तो क्या उसकी सद्गति हो जायेगी? उसके ज्ञान-में रामका अर्थ मेंढ़ेके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। बोलो क्या उत्तर है? मैंने कहा—मेरे विश्वासके अनुसार तो उसकी गति हो ही जानी चाहिये। यह बात हो ही रही थी कि हठात् मेरा बाह्य ज्ञान जाता रहा। मेरे नेत्र तो खुले हुए

थे पर बाहरसे कुछ भी होश नहीं रहा । नेत्र खुले हुए मैं ज्यों-का-त्यों उसी स्थानपर बैठा रहा । मुझे इतना स्मरण है कि उस समय मुझे वनवेषधारी भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके दर्शन हुए । कितनी देरतक दर्शन होते रहे, यह याद नहीं । बातें भी हुई थीं, पर सब बातें स्मरण नहीं रही । केवल दो बातें याद रहीं । एक तो भगवान्ने कहा था—किसी प्रकार भी नामलेनेवालेकी सद्गति ही होगी । दूसरी यह कि भगवान्ने भक्त विष्णुदिगम्बरजी गायनाचार्यका इसी सिलसिलेमें नाम लिया था । इसके अतिरिक्त और कुछ भी याद नहीं रहा । होश आनेपर दूसरे दिन सागरमलने मुझसे कहा कि तुम उस समय कह रहे थे कि "यह भगवान् हैं, इनके चरण पकड़ लो" आदि-आदि । [illegible]र मुझे न तो बाहरका ज्ञान था, न मैंने अपने ज्ञानमें कुछ [illegible]हा ही था । अस्तु, इस प्रकार सारी रात बीत गयी । मुझे बाह्यज्ञान नहीं हुआ । अब सागरमल घबड़ा गया कि इसे [illegible]या हो गया ? आखिर उसने मेरा हाथ पकड़कर खड़ा [illegible]िया, पकड़े हुए ही मुझे सीढ़ीयोंसे नीचे उतार लाया । [illegible]र उसी तरह मेरे घर मुझे ले आया । घर आनेपर मुझसे [illegible]हा कि शौच हो आओ, पर मुझे तो बिल्कुल ही होश नहीं था [illegible] बाहर क्या हो रहा है । इसलिये मैंने उसे कोई उत्तर [illegible]हीं दिया । मुझे उसी तरह बाह्यज्ञान शून्य देखकर उसने [illegible]के पानीके नलके नीचे बिठा दिया । मेरे सरपर जलकी [illegible]र गिरने लगी और स्वयं सागरमलजी नाम-कीर्तन [illegible]ने लगे । अब जाकर मुझे कहीं धीरे-धीरे बाह्यज्ञान [illegible]। उसी दिन दोपहरके समय श्रीविष्णुदिगम्बरजी मुझसे

मिले। मैंने उन्हें सारी घटना सुना दी, सुनकर वे रोने लग गये।"

अब सहज ही अनुमान हो सकता है कि किस प्रकार भाईजीका हृदय एवं मस्तिष्क दोनों ही भगवान्‌से जुड़ते जा रहे थे। भगवान्‌के निर्विशेष ब्रह्मस्वरूपकी ज्योति मस्तिष्कको उद्भासित कर रही थी। इधर रसमय भाव हृदयमें संचित होता जा रहा था। यद्यपि यह सारी बातें भगवत्कृपासे ही इनके जीवनमें हो रही थीं, पर निमित्तके लिये कहा जा सकता है कि इनकी साधनाकी लगन भी अद्भुत ही थी। साधनाकी तत्परता ऐसी थी कि रातमें नींद प्रायः दो-ढाई घंटेसे अधिक नहीं लेते थे। कामकाज अथवा अन्य पारमार्थिक प्रचारमें शरीरको, मस्तिष्कको काफी परिश्रम पड़ता था। फिर भी बड़ी लगनके साथ यह रातको साधना करते। पर शरीर तो आखिर प्राकृतिक नियमोंके बन्धनमें ही रहता है। नींद नहीं लेनेके कारण इनके सिरमें भयानक पीड़ा हुई। बड़े-बड़े वैद्य डाक्टरोंके द्वारा औषधोपचार हुआ। हजारों रुपये खर्च किये गये, पर कोई लाभ न हुआ। दो-तीन वर्षके बाद जब वेदान्तकी साधना छूट गयी, तब दर्द भी अपने-आप चला गया। वेदान्तकी साधना छूटनेमें साक्षात् भगवान्‌की ही इच्छा हेतु थी।

स्वजनोंकी सहायता

जैसे-जैसे भाईजीकी साधनाकी स्थिति प्रगाढ़तर होती जा रही थी वैसे ही साधकोंका जमघट भी उनके पास एकत्रित हो गया। साधकोंके लिये बीस नियम बनाये जिनके पालनसे पारमार्थिक उन्नति हो। इन्हीं दिनों भाईजीने अपने

अनुभवके आधारपर एक पुस्तक लिखी "मनको वशमें करनेके उपाय।"

प्रसिद्ध गायनाचार्य श्रीविष्णुदिगम्बरजी भाईजीके एक परम मित्र थे। उन्होंने एक संस्था "गान्धर्व महाविद्यालय" खोल रखी थी। उदारतावश वे पैसा खुले हाथ खर्च करते अतः लगभग ७५ हजारका ऋण हो गया और महाविद्यालयके नीलाम होनेकी नौबत आ गयी। भाईजीके पास यह बात आयी। उनकी स्वयंकी ऐसी स्थिति नहीं थी कि इतनी रकम दे सके। मित्रका सङ्कट दूर करनेकी प्रबल लालसाने इन्हें ऋण लेनेको बाध्य किया। कई मित्रोंसे अपने नामपर ऋण लेकर पौन लाख रुपया इकट्ठा करके महाविद्यालयका ऋण चुकाया। पं० विष्णुदिगम्बरजीका रोम-रोम इनके प्रति कृतज्ञतासे भर गया। इससे भाईजीको भी बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी और इसका परिशोध १२ साल बाद सं० १९९२ में हुआ।

एक बारकी बात है मारवाड़ी अग्रवाल जातीय कोषके कैशियर श्रीराजारामने अपने खर्चके लिये दो हजार रुपये रोकड़मेंसे ले लिये। पता लगते ही अधिकारियोंने उसे पुलिसमें गिरफ्तार करा दिया। किसीको अपना सहायक न देखकर वह भाईजीके सामने रोने लगा। भाईजीके हाथमें उन दिनों रकमकी बिलकुल छूट नहीं थी। परन्तु इसकी परवाह न करके दो-तीन मित्रोंसे भाईजीने रुपये उधार लेकर उसे छुड़ा दिया। वह भाईजीके कृपाके सामने नतमस्तक हो गया। भाईजीने अनेकों बार अपने कष्टकी परवाह न करके दूसरोंको कष्टसे मुक्त किया।

दूसरी बारकी बात है——सांगीदास जैसीरामके नाममें इनके फर्म 'चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद' के लगभग दस हजार रुपये लेने थे। भाईजी यह जानते थे कि सट्टेके कारण सांगीदासजीकी अवस्था गिरी हुई है। अतः तकाजा करना तो दूर रहा, जब सांगीदासजी कहीं रास्तेमें मिले जाते तो ये आँख बचाकर निकल जाते, जिससे उन्हें संकोचमें न पड़ना पड़े। एक ओर इनका तो इतना साधु व्यवहार था, पर इनके साझीदार चिरंजीलालजी रुपया वसूल करनेके लिये आकाश-पाताल एक कर रहे थे। उन्होंने देखा कि भाईजीकी जानकारीमें तो रुपये वसूल होना कठिन है। इसलिये इनसे कुछ नहीं कहकर उन्होंने नालिश कर दी तथा उनके नाम वारंट कट गया। वारंट कटनेपर बात भाईजीके पास जा पहुँची और पता लगते ही अविलम्ब पहली चेष्टा इनकी यह हुई कि टेलीफोनसे सांगीदासजीको सूचित कर दिया कि इस प्रकारसे मेरे अनजानमें बातें हुई हैं। तुम्हें पकड़वाने लोग जा रहे हैं। तुम अपना बचाव कर लेना। सचमुच ही अपने साझीदार चिरंजीलालजीके व्यवहारसे भाईजीके मनमें बड़ा विचार हुआ, पर शीलतावश ये उनसे भी प्रकटमें कुछ नहीं कह सके। जो हो, इस प्रकारकी अनेकों अत्यन्त साधुतापूर्ण चेष्टासे लोग इनके प्रति बहुत विश्वास रखते थे। इसीसे बम्बईके मित्रोंका आग्रह देखकर जब भाईजी ऋषिकेश गये तो वहाँसे शीघ्र लौटना पड़ा। इसके अतिरिक्त इनके बाहर चले जानेसे सत्सङ्गभवनकी सम्भालका काम भी अस्त-व्यस्त हो जाता था। सत्सङ्गका काम स्वयं इन्हें तथा इनके पथ-प्रदर्शकको अतिशय प्रिय

था। अतः यह भी शीघ्र लौट आनेमें हेतु हुआ।

कल्याणका शुभारम्भ

भाईजीका "मारवाड़ी अग्रवाल सभा" के साथ सम्बन्ध था, केवल समाजसेवाकी दृष्टिसे। उनकी परमार्थ-साधनाका यह विशेष अङ्ग कदापि नहीं था। यों तो सभी शुभ चेष्टायें परमार्थमें सहायक होती हैं, पर जैसे कर्मयोगीका तो साधन-क्षेत्र ही शुभ कर्म होता है, वैसे इन चेष्टाओंसे सम्बन्ध नहीं था। फिर भी ये प्रत्येक अधिवेशनमें ही जाया करते थे। उसमें हेतु था लोगोंका विश्वास, प्रेम तथा आकर्षण। कई लोग तो इन्हें अपना-से-अपना मानते। महासभाका ७ वाँ अधिवेशन * फतेहपुर (सीकर)में हुआ था तो शिवनारायणजी नेमाणी सभापति हुए। नेमाणीजीका इनपर इतना विश्वास था कि सभापतिकी हैसियतसे दिया जानेवाला भाषण उन्होंने इनसे ही तैयार करवाया। इस बार सभाके प्रति भाईजीने भी बड़ी रुचि प्रकट की, कई प्रस्ताव किये। अधिवेशनके साथ ही कवि-सम्मेलन भी हुआ था। लोगोंने बड़े आग्रहसे इन्हें ही सभापति बनाया। हिन्दी साहित्यकी रक्षाके सम्बन्ध-में इन्होंने बड़ा ही मर्मस्पर्शी भाषण दिया तथा भाषणके अन्तमें स्वरचित एक कविता पढ़कर सुनायी। साहित्यप्रेमी श्रोता कविता सुनकर आनन्दमग्न हो गये। इसके दूसरे वर्ष ही मारवाड़ी अग्रवाल महासभाका आठवाँ अधिवेशन ** दिल्लीमें हुआ। इस बार सभापति श्रीजमनालालजी बजाज थे तथा स्वागताध्यक्ष थे श्रीआत्मारामजी खेमका। दोनोंसे

* चैत्र शुक्ल १, २, ३/१९८२ वि०

** चैत्र शुक्ल १, २, ३/१९८३ वि०

ही भाईजीका घनिष्ठ सम्पर्क था। किसी कारणसे आत्मारामजीने तो पहले स्वागताध्यक्षका पद ग्रहण करना ही अस्वीकार कर दिया था, पर पीछे श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं भाईजीके आग्रहसे स्वीकृति दे दी। स्वीकृति मिल जानेपर यह प्रश्न उठा कि इतनी शीघ्रतामें स्वागताध्यक्षका सर्वांग सुन्दर भाषण तैयार हो जाना बड़ा ही कठिन है, क्योंकि २४ घंटेमें लिखकर छपकर दूसरे ही दिन उसे पढ़ना था। खेमकाजीने इसका भार भाईजीपर डाला। सचमुच ही इनके सिवा इतनी शीघ्रतामें गम्भीरतापूर्ण भाषण तैयार कर देने वाला और कोई था भी नहीं। ये भी खेमकाजीकी प्रेमभरी इच्छाकी उपेक्षा नहीं कर सके। रात-रातमें ही भाषण लिखकर, छपाकर इन्होंने तैयार कर दिया। दूसरे दिन अधिवेशनमें भाषण पढ़ा गया। लोगोंको बड़ा सुन्दर लगा। अधिवेशनमें श्रीघनश्यामदासजी बिड़ला भी आये हुए थे। यद्यपि बिड़लाजीके एवं भाईजीके विचारोंमें मतभेद था, पर बचपनकी मित्रता थी। इस बारका भाषण उन्हें भी मतभेद रहते हुए भी अच्छा लगा। वे अधिवेशनके समाप्त होनेपर बातके सिलसिलेमें भाईजीसे बोले—भाई, तुम लोगोंके विचार क्या हैं? कैसे हैं? कहाँतक ठीक हैं? इसकी आलोचना हमें नहीं करनी है, पर इसका प्रचार जगत्‌में तुम लोगोंके द्वारा हो रहा है। जनता इसे दूरतक मानती भी है। यदि तुमलोगोंके पास अपने ही विचारोंका, सिद्धान्तोंका एक पत्र होता तो तुम लोगोंको और भी सफलता मिलती। तुम लोग अपने विचारोंका एक पत्र निकालो।

बिड़लाजीने परामर्शके रूपमें एक चुभती हुई-सी बात

बात कह दी थी, पर सचमुच ही चर्चा 'कल्याण' मासिक पत्रके जन्ममें हेतु बनी। अधिवेशन समाप्त होनेपर सभी अपने-अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चल पड़े। भाईजी भी बम्बईकी ओर चले। उस समय श्रीजयदयालजी चूरूसे भिवानी आये हुए थे। उन्हें बाँकुड़ा जाना था। सत्सङ्गके लिये भिवानीमें ठहर गये थे। भाईजीके मनमें आया कि दर्शनका सुयोग क्यों छोड़ूं ? भिवानी चलूं, वहाँसे साथ ही रिवाड़ी चला जाऊँगा। रिवाड़ीसे बम्वई चला जाऊँगा, यही हुआ। भिवानीका सत्सङ्ग समाप्त करके श्रीजयदयालजी बाँकुड़ाके लिये रवाना हुए। गाड़ीमें अधिवेशनकी चर्चा छिड़ गयी। उसी प्रसङ्गमें भाईजीने घनश्यामदासजीकी पत्र निकालनेकी सलाहवाली बात कह डाली। पासमें बैठे थे लच्छीरामजी मुरोदिया। मुरोदियाजी सुनते ही बोले——बस-बस बिल्कुल ठीक है, अवश्य निकलना चाहिये। इतना ही नहीं, गाड़ीके एक कोनेमें ये भाईजीको ले गये तथा अत्यन्त प्रेमभरे आग्रहसे समझा-बुझाकर इनसे वचनतक ले लिया कि मैं प्रतिदिन दो घंटा सम्पादनका कार्य किया करूँगा। इनसे वचन लेकर गोयन्दकाजीके पास आये तथा पत्र निकालनेकी स्वीकृति माँगने लगे। गोयन्दकाजीने जब यह सुना कि भाईजीने सम्पादनका भार सम्भालना स्वीकार कर लिया है तो उन्होंने भी सहर्ष अनुमति दे दी। गाड़ीमें ही चैत्र शुक्ल ९ सं० १९८३ को यह निश्चय हुआ कि पत्रका नाम 'कल्याण' रहेगा तथा यह व्यवस्था हुई कि बम्बईसे इसका प्रकाशन प्रारम्भ हो। पास बैठे हुए सत्सङ्गियोंके आनन्दका पारावार न रहा। देखते-ही-देखते गाड़ी रिवाड़ी

आ पहुँची। गोयन्दकाजी बाँकुड़ेकी ओर चल पड़े और भाईजी बम्बईकी ओर। हृदयमें एक नयी सेवाका भाव, नया प्रेम, नयी उमङ्ग लेकर बम्बई आ पहुँचे।

'कल्याण' की तैयारी आरम्भ हुई। सबसे पहले उसके रजिस्टेशनका प्रश्न था। इस क्षेत्रका अनुभव तो इन्हें था नहीं कि कैसे क्या होता है। अतः किञ्चित् विचारमें पड़ गये। पर जिन विश्वसूत्रधार प्रभुको 'कल्याण' निकलवाना अभिप्रेत था, उन्होंने अपने-आप सारा संयोग लगा दिया। भाईजीके मित्रोंमेंसे वेंकटेश्वर प्रेसके मालिक श्रीनिवासजी बजाज भी थे। उनसे बात चलनेपर प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य करा देनेका भार उन्होंने उठा लिया। इनको साथ लेकर उन्होंने रजिस्टेशन आदि सभी कार्यवाहियोंकी व्यवस्था करा दी तथा 'कल्याण' के प्रथम अङ्ककी तैयारी होने लगी।

इसी बीचमें भाईजीको पुनः एक बार राजस्थान जाना पड़ा। लक्ष्मणगढ़में लच्छीरामजी चूड़ीवालाका एक ब्रह्मचर्याश्रम है, उसीका वार्षिकोत्सव था। लच्छीरामजीका अत्यन्त आग्रह था कि भाईजी उत्सवमें पधारें, इसलिये इन्हें जाना पड़ा।

बम्बई लौटनेपर 'कल्याण'के प्रकाशन कार्यमें तत्परतासे जुट पड़े। भाईजीके अथक परिश्रमसे 'कल्याण' का प्रथम अङ्क सर्वथा शुद्ध आध्यात्मिकतासे रंगा हुआ श्रावण कृष्णा ११ सं० १९८३के दिन सत्सङ्गभवन, बम्बईके द्वारा वेंकटेश्वर प्रेसमें छपकर प्रकाशित हुआ। प्रथम अङ्कमें श्रीसेठजीके दो लेख तथा एक पत्रको स्थान दिया गया। महात्मा गाँधीका एक लेख था। इसके अतिरिक्त प्राचीन-अर्वाचीन संतोंकी वाणीसे, शास्त्रोंसे संकलन

था तथा शेष भाईजीकी कृतियाँ थी। दूसरे वर्षसे प्रथम अङ्क विशेषाङ्कके रूपमें निकलने लगा। प्रथम विशेषाङ्क था 'भगवन्नामांक'।

बम्बई छोड़नेका उपक्रम एवं विदाई

'कल्याण' का पहला अङ्क निकालकर भाईजी निश्चित हुए ही थे कि एक नयी चिन्ता आ पड़ी। श्रीगोयन्दकाजीका स्वास्थ्य विशेष खराब हो गया। औषधोपचारसे कोई लाभ नहीं हुआ। उनके लिये एक विशेष अनुष्ठान उनके यज्ञोपवीत-गुरु बीकानेरके पं० गणेशदत्तजी व्याससे भाईजीने करवाया। भगवत्कृपासे अनुष्ठान पूरा होते ही श्रीसेठजी स्वस्थ हो गये।

अब भाईजीके मनमें इस प्रपञ्चसे उपरामता तेजीसे बढ़ रही थी। सारे कार्य करते हुए भी मन प्रभुकी ओर लगा रहता था। प्रभु तीव्रतासे अपनी ओर खींच रहे थे। सोचने लगे कहीं एकान्तमें गङ्गातटपर जीवन व्यतीत किया जाय। ज्येष्ठ सं० १९८४ से निराकारके ध्यानके स्थानपर शिमलापालके सदृश श्रीविष्णुभगवान्का प्रत्यक्ष ध्यान होने लगा।

श्रीसेठजीकी प्रेरणासे अग्रवाल-महासभाके कामसे कलकत्ता जाना पड़ा। वहाँसे भाईजी अपनी जन्मभूमि आसाम गये। इनके सास-ससुर गोहाटीमें रहते थे और उन दिनों वे अस्वस्थ थे। उनसे मिलने गोहाटी गये। मन तीव्र वैराग्यसे भरा हुआ था। वहीं भाईजीने बम्बईकी दूकानसे अलग होनेका निश्चय कर लिया। वहाँसे बम्बई दूकानवालोंको तार दे दिया कि घरू सौदे (माथे पोतेके कामको) बराबर कर

दो । वहाँसे बाँकुड़ा श्रीसेठजीसे मिलने गये ।

अब इन्हें बम्बईका रहना एक-एक दिन भारी लगने लगा । इन्हें अपने फर्म "चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद" से अपना हिस्सा निकालना था । यद्यपि इनके पास उस समय पूँजी एकत्रित नहीं थी पर फर्ममें उस समय लाभ था अतः अपने साझीदारसे अपना हिस्सा निकालनेका दृढ़तापूर्वक नम्र प्रस्ताव किया । उन्होंने पहले तो स्वीकार नहीं किया । पर इनकी उपराम वृत्तिसे वह परिचित था, इसलिये अपने मनमाना जमा खर्च कराके इन्हें अलग कर दिया । भाईजीको धनकी परवाह तो थी नहीं, उन्होंने जैसे कहा वैसे ही लिखा-पढ़ी कर दी और व्यापारसे सर्वथा अलग होकर साधन-भजनमें मस्त हो गये ।

इधर 'कल्याणके' प्रकाशनकी योजना गीताप्रेस, गोरख-पुरसे बनने लगी । श्रीगोयन्दकाजीका जसीडीहसे तार मिला कि 'कल्याण' का सब स्टाफ लेकर शीघ्र गोरखपुर जाकर दूसरे वर्षका दूसरा अङ्क वहींसे प्रकाशित करो । भाईजी तो बम्बई छोड़नेको लालायित थे हीं । इन्होंने श्रीगोयन्दकाजीको अपने गङ्गातट सेवनकी अभिलाषासे अवगत कराया । उनका उत्तर आया २-३ महीने गोरखपुर रहकर 'कल्याण' का काम वहाँके लोगोंको समझाकर पीछे तुम जहाँ जाना हो चले जाना और वहींसे प्रति मास छापनेकी सामग्री भेज देना । भाईजीको यह बात अपने मनके अनुकूल लगी । भाई-जी कहीं एकान्तमें भजन करनेके लिये बम्बईसे विदा ले रहे हैं—यह संवाद आगकी तरह चारों ओर फैल गया । जो जो सुनता वही अधीर हो जाता । भाईजीसे रहनेका आग्रह भी करने पर ये अपने निर्णय पर अडिग थे । यह समाचार

पाकर उनके मित्र पं० हरिवक्षजी जोशी मिलने आये। बोले——"भाईजी आप जा रहे हैं, मन बड़ा भारी है। मैं चाहता हूँ आपका भावी जीवन भी ऐसा पवित्र बना रहे और साधनोंमें उत्तरोत्तर उन्नति करें। पर आप किसी सत्संगीसे पैसेका सम्बन्ध कभी मत रखियेगा।" भाईजीने इस बातकी गाँठ बाँध ली और जीवन पर्यन्त इसे निभाया। शरीर छोड़नेके १० दिन पहले भाईजीसे मिलने जोशीजी गोरखपुर आये तो भाईजीने कहा--"पण्डितजी आपने मुझे बहुत बड़े दोषसे बचनेकी जो बात कही थी, वह मुझे बराबर याद रही और उसके कारण मैं अनेक दोषोंसे बच गया। भगवानकी कृपासे मेरा वह व्रत अक्षुण्ण निभ गया।"

गोरखपुर जानेकी तैयारी होने लगी और श्रावण शुक्ला १३ सं० १९८४ के दिन ३५ वर्षकी अल्पायुमें व्यापारसे सर्वथा विलग होकर अध्यात्म साधनाके लिए बम्बईसे चल पड़े। रात्रिको दिल्ली एक्सप्रेससे रवाना होना था। स्टेशनपर सैकड़ों प्रेमीजन एकत्रित होकर चर्चा कर रहे थे "क्या भाईजी सदाके लिए बम्बई छोड़ रहे हैं ?" समाजके अनेक प्रतिष्ठित लोग आये थे। भाईजीने सबसे अपनी त्रुटियों-के लिए क्षमा याचना की और आजीवन कृपा बनाये रखने-की भीख मांगी। गाड़ी रवाना हो गयी। भगवान्‌के नामका जय घोष हुआ, सभीके नेत्र बरस पड़े। भाईजी हाथ जोड़े सबकी ओर स्नेहभरी दृष्टिसे निहारते रहे। इनका 'भाईजी' नाम बम्बईसे ही पड़ा जिसे बादके जीवनमें बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभीने अपनाये रक्खा।

प्रलोभनोंमें न फँसना

गोरखपुर पहुँचकर भाईजी 'कल्याण' के काम में लग

गये । बम्बईके साथी-मित्र सभी भाईजीसे मिलनेको उत्सुक थे । उनका भाव सच्चा था अतः प्रभु ने वैसी व्यवस्था की । अभी गोरखपुर आये १५ दिन भी नहीं हुए थे कि श्रीरामकृष्णजी डालमियाके विशेष कार्यसे बम्बई जाना पड़ा । भगवत्-साक्षात्कारके पहले प्रायः परीक्षा होती ही है। भाईजीकी भी परीक्षाका समय आया । बम्बईमें सभी प्रतिष्ठित मारवाड़ी बन्धुओंके ये आदरणीय सुहृद थे । वहाँ 'हरनन्दराय रामनारायण रुइया' एक करोड़पति फर्म था । उस समय उनकी ३-४ बड़ी मीलें थीं । भाईजीके बम्बई पहुँचनेका समाचार सुनकर फर्मके मालिक श्रीरामनारायणजी रुइया पूनासे बम्बई आये । इन्हें एकान्तमें ले जाकर अपने हृदयकी बात कही कि मेरी अवस्था वृद्ध हो गयी है एवं बच्चे अभी छोटे हैं । इसलिये अब बम्बईमें रहकर आप मेरे फर्मकी एवं बच्चोंकी देख-भाल करें । इसके लिये ५० हजार रुपये सालाना अपने खर्चके लिये लेते रहें, रहनेके लिये बंगला और गाड़ी भी रहेगी । इसके साथ ही आप जिस काममें चाहें अपना हिस्सा रख लें । मैं आपको पूर्ण अधिकार देकर आपकी इच्छानुसार लिखा-पढ़ी कर देता हूँ । वास्तवमें भाईजीके सामने बड़ा लुभावना प्रस्ताव आया । परन्तु जिनके मनमें भगवान्के दर्शनोंकी उत्कंठा जाग उठती है, उनको प्रलोभन क्या लुभाये ? भाईजीने बड़ी नम्र भाषामें उत्तर दिया कि "मैंने तो बम्बई रहनेका विचार ही छोड़ दिया है अतः मैं बम्बई रहकर आपके कार्य संचालनमें सर्वथा असमर्थ हूँ । उन्होंने बहुत कुछ अनुनय-विनय की, परन्तु भाईजी पूर्ण दृढ़ रहे । प्रभुने परीक्षा लेनी चाही जिसमें भाईजी सर्वथा उत्तीर्ण हो गये ।

भगवद्दर्शनकी उत्कंठा

भाद्र शुक्ला ३ सं० १९८४ को भाईजी पुनः गोरखपुर आ गये एवं 'कल्याण'के दूसरे वर्षके तीसरे अङ्कके सम्पादनमें लग गये। ऊपरसे तो ये सारा कार्य कर रहे थे, परन्तु इनके हृदयमें भगवद्दर्शनकी लालसा प्रतिपल तीव्र होती जा रही थी। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सुहाता था। इस उत्कंठासे भरे हृदयके समय उनकी लेखनी चल पड़ी, जिसे इन्होंने 'कल्याण' वर्ष दो अङ्क तीनमें 'कातर प्रार्थना' शीर्षक देकर प्रकाशित किया——

अब तो कुछ भी नहीं सुहावै, एक तूंहीं मन भावै है।
तनै मिलणनै आज मेरो, हिवड़ो उझल्यौ आवै है॥
तड़फ रह्यों ज्यूं मछली जल विन, अब तूं क्यूं तरसावै है।
दरस दिखाणंमैं देरी कर क्यूं, अब और सतावै है॥
पण, जो इसी बातमैं तेरौ, चित्त राजी होतो होवै।
तो कोई भी आँट नहीं, मनै चाहै जितणौ दुख होवै॥
तेरे सुखसैं सुखिया हूं मैं, तेरे लिये प्राण रोवै।
मेरी खातर प्रियतम! अपणै सुखमें मत काँटा बोवै॥
पण या निश्चै समझ, तनें मिलणैकी खातर मेरा प्राण।
छिण-छिणमें ब्याकुल होवै है, दरसणकी है भारी टाण॥
बाँध तुड़ाकर भाग्या चावै, मानै नहीं किसीकी काण।
आठों पहर उड्या-सा डोलै, पलक-पलककी समझै हाण॥
पण प्यारा! तेरी रानीमैं है नित्त राजी मेरौ मन।
प्राणाधिक, दोनूं लोकाँकौ, तूं ही मेरौ जीवन-धन॥
नहीं मिले तो तेरी मरजी, पण तन-मन तेरे अरपन।
लोक-वेद है तूं ही मेरौ, तूं ही मेरौ परम रतन॥
चातककी ज्यूं सदा उड़ीकूं, कदे नहीं मुँहनै मोड़ूं।
दुख देवे, मारै, तड़पावै, तो भी नेह नहीं तोड़ूं॥
तरसा-तरसाकर जी लेवै, तो भी तनैं नहीं छोड़ूं।
झाँकूं नहीं दूसरी कानी, तेरैमैं ही जी जोड़ूं॥

भाईजीका मन छटपटा रहा था, प्रभु सामने क्यों नहीं आते । हमलोग बिना वैसी स्थिति हुए कुछ भी कल्पना नहीं कर सकते । भाईजी सब कुछ स्वाहा करनेको तैयार थे ।

"मिलनेको प्रियतमसे जिसके, प्राण कर रहे हा-हाकार ।
गिनता नहीं मार्गकी कुछ भी, दूरी को वह किसी प्रकार ॥
नहीं ताकता किंचित भी शत-शत बाधा-विघ्नोंकी ओर ।
दौड़ छूटता जहाँ बजाते, मधुर बंशरी नन्द-किशोर ॥"……

यही हालत भाईजीके हृदयकी थी । हर समय एक ही लालसा लगी हुई थी ।

एक लालसा मनमहँ धारौं ।
बंशीबट, कालिंदी-तट नटनागर नित्य निहारौं ।"………

अपने अध्यात्मपथपर चलते हुए भाईजी श्रीभगवान्‌के अत्यन्त निकट आ गये थे । दर्शनोत्कंठा प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी । श्रीसेठजी भी इस उत्कंठाको और तीव्र करते जा रहे थे । उस समय श्रीसेठजी जसीडीहमें स्वास्थ्य लाभके लिये गये हुए थे । वहाँ रहते हुए भी वे भाईजीकी मनःस्थितिसे पूर्ण परिचित थे और सूक्ष्मतासे निहार रहे थे । उपयुक्त अवसरकी ताकमें थे ।

जसीडीहमें दो बार श्रीभगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शन

भाईजीकी परीक्षा भी हो गयी थी एवं साधना भी पूर्ण परिपक्व हो गयी थी । सचमुच इनके तन-मन-प्राण भगवान्‌की रूप-माधुरीके दर्शनके लिये छटपटा रहे थे । न दिनमें चैन थी; न रातमें नींद । अजीब-सी आकुलता हृदय और आँखोंमें छायी हुई थी । भक्तके हृदयकी आकुलता

भगवान्के हृदयमें प्रतिबिम्बित हो जाती है और वे अपने प्राकट्यकी भूमिकाका निर्माण कर देते हैं। भाईजी अपने गुरु रूपमें श्रीगोयन्दकाजीको ही मानते थे, अतः यह कार्य भगवान्ने उनके माध्यमसे ही पूर्ण किया। श्रीगोयन्दकाजीने अवसर देखकर इन्हें तार देकर अपने पास जसीडीह बुलाया। तार मिलनेकी देर थी, उसी दिन सायंकाल ये श्रीघनश्यामदासजी जालानके साथ गोरखपुरसे रवाना हो गये।

अब आगे जो घटना घटी वह अध्यात्म-जगत्की एक सुदुर्लभ घटना थी। जहाँ भी भगवान्के साक्षात् दर्शन होते हैं, साधककी परिपक्वास्थामें एकान्तमें ही प्रायः होते हैं। पर भाईजीको साक्षात् दर्शन १५-२० महानुभावोंकी उपस्थितिमें होना एक अनहोनी बात है, जिसका रहस्य श्रीगोयन्दकाजीने ही आगे चलकर खोला। अब आगेकी घटना श्रीघनश्यामजी जालानद्वारा लिखित और भाईजीद्वारा संशोधित किये हुए कागजकी नकलके रूपमें दी जा रही है। भाषा मारवाड़ी है, पर समझमें आ जानी चाहिये।

पहली घटना

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

स्थान—जसीडीह मारवाड़ी आरोग्य भवन,

मिति—आसोज बदी छठ, शुक्रवार, सं० १९८४ वि०

समय—दिनके ग्यारह बजे।

आप श्रीजयदयालजी उतरा था, जिके कमरेमें आप पलङ्गपर लेट रह्या था। हनुमान पोद्दार और घनश्यामजी नीचे बैठे थे। हनुमानके साथ आपकी ध्यान विषयकी बातां हुई।

हनुमान आगे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन हुआ था, जिकी बात फिर कही तथा शिमलापाल मांय आँख खुले हुए भगवान् श्रीविष्णु भगवान्को ध्यान होने लग गयो थो, बीच मांय बन्द हो गयो थो, अब फिर होवे है——जिकी बात कही। आप बोलो कि भगवान्का दर्शन होनेके बाद तत्त्वज्ञान उसी वख्त होनो चाहिये। यदि कोई प्रतिबन्ध हो जावे तो उसी वख्त नहीं होवे। बाकी उसको भार भगवान्पर आ जावे। फेरूँ एक या दो चार बार दर्शन देकर उसको तत्त्वज्ञान करा देवे। मुक्तिमें कोई संशय रवे ही नहीं। फिर आप बोल्या— तेरे जो विष्णुभगवान्को ध्यान होवे छे, जिके मांय तेरी के धारणा है? ध्यान है या साक्षात् माने है? जणा हनुमान कही कि बातचीत व स्पर्श होनेके सिवाय साक्षात् होनेके ज्यूं ही होवे है। आप बोल्या कि यदि तूं साक्षात् समझे तो चरण-स्पर्श करनेकी कोशिश कोनी करे तो तेरे दृढ़ भावना ही होने सके है। जणा हनुमान बोल्यो मेरे भी दृढ़ भावना ही लागे है, क्योंकि जब तक मैं ध्यान करूँ..........जद ताई मूर्ति दीखे तथा फिरे, दीखे बैठे ही दीखे तथा आसपासकी चीजां भी दीखे। जणा आप बोल्या इने तो ध्यानकी गाढ़ स्थिति समझनी चाहिये। इसके बाद आपको सोनेको समय होनेसे हनुमान, घनश्याम दोनूं चले आये। फिर हनुमान-के ऐसी प्रबल इच्छा हुई कि आपसे भगवान्के सगुण साक्षात्कार होवे, जैकेलिये प्रार्थना करनी। थोड़ी देर बाद दो बजे हनुमान तथा घनश्याम आपके पास गया। जणे जातां ही आप बोल्या आज तो ध्यानके वास्ते पहाड़ी पर चलनेको विचार है। इतने मांय और भी लोग आ गया।

जणे सब लोग पहाड़ीपर गया।

आसोज बदी ६ शुक्रवार सं० १९८४ वि० जसीडीहमें उस स्थानपर नीचे लिखे अनुसार उपस्थिति थी। श्री-ज्वालाप्रसादजीके हाथसे लिखे हुए पन्नेकी नकल की--

(१) श्रीजयदयालजी गोयन्दका (२) श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दार (३) श्रीघनश्यामदासजी नुवेवाला (४) रामेश्वरलालजी नुवेवाला (५) द्वारकादासजी नुवेवाला (६) सुखदेवजी [गीताप्रेस] (७) प्रह्लादरायजी जालुका (८) शुभकरणजी चूड़ीवाला (९) रामलालजी चूड़ीवाला (१०) डूँगरमलजी बागला (११) ज्वालाप्रसादजी का-नोडिया (१२) केदारनाथजी कानोडिया (१३) शिव-दयालजी गोयन्दका (१४) दौलतरामजी (१५) वैद्यनाथ-जी शेखपुरवाला।

श्रीजयदयालजी द्वारा ध्यानके वर्णनकालमें (नीचे लिखे व्यक्ति भी आ गये थे)--

(१) बद्रीप्रसादजी गोयन्दका (२) कुञ्जलालजी सुलतानिया (३) सीतारामजी पोद्दार

आगे-आगे आप गया, रास्ते मांय कई जगह देखी। लोगाने कही--जगह चोखी लागे है। बाकी आप पसन्द कीनी नहीं। पीछे आप एक जगह चुनकर बतायी। वह स्थान महेन्द्र सरकारके कोठीके पूर्व दक्षिण भागमें सीताफल-के वृक्षके समीप है। लोग सगला जना उस तरफ बैठ गया, हनुमान श्रीजयदयालजीके सामने बेठो थो। उसके एक तरफ श्रीज्वालाप्रसादजी और दूसरी तरफ घनश्याम थो। आप बोल्या--हनुमान आंख खोले हुए भगवान का ध्यान किया

करे है, उसी तरह करणो और कहणो चाहिये । हनुमान पूरो हुंकारो भर्‌यो नहीं, जणे वैद्यनाथजी शेखपुरवाला बोल्या—आप ही कहो । जणा आप बोल्या—म्हें तो या ही विचारकर आया था कि हनुमानके द्वारा ही लोगोंने बात सुणाणी । इस वास्ते तनै ही उस तरियाँ ध्यान करनों चाये और लोगांने बताणो चाये । मेरो भी पीछे कहणेको विचार है । इतनी कहते ही हनुमान बोल्यो आपकी आज्ञासे कहनेको तैयार हूँ । तब आप बोल्या गीता ४/७ 'यदा-यदा' तथा भगवान्‌की स्तुतिका श्लोक बोलकर भगवान्‌को ध्यान कर । जणे हनुमान पहले 'शान्ताकारं', 'सशङ्खचक्रं', 'यदा-यदा हि', 'परित्राणाय' चार श्लोक बोलक आपके शिमलेपालमें ध्यान हुयो थो, जिकी बात बोलकर थोड़ी देर चुप हो गयो । फिर अकस्मात् बोल्यो—मने जिस प्रकार भगवान्‌के स्वरूपका दर्शन होय छे, सो बोलू हूँ । आपलोग भी उसी प्रकार ध्यान करो । हनुमान भगवान्‌के स्वरूपको वर्णन करने लग गयो । जणा वैद्यनाथजी शेखपुरवाला बोल्या— भगवान् बैठ्या है या खड़ा है ? जणा हनुमान बोल्यो—कमलपर बैठ्या है । फिर थोड़ी देरतक हनुमान स्वरूपको वर्णन करकर चुप होय गयो । फिर थोड़ी देर बाद बोल्यो मैं चरणस्पर्श वास्ते हाथ आगिने बढ़ाऊँ हूँ, बाकी अभी वे बढ़े नहीं । हाथ रुक गया । फिर थोड़ी देर बाद बोल्यो—हाथ तो बढ़े हैं, बाकी भगवान् आगिने सरक गया । फिर थोड़ी देर बाद बोल्यो—यह देखो, भगवान्‌का चरण मेरे समीप आ गया है । मैं स्पर्श करूँ हूँ, थे भी स्पर्श करो । इतने मांय जोरसे बोल्यो—भगवान् तो अन्तर्धान हो गया । यह सगली बात हनुमान

आँख खुले हुए करी। इसपर आप बोले--अन्तर्धान होनेको और तो के बेरो--मेरे या फुरणा होई कि हनुमानने या बात पूछूँ--तूँ ध्यानकी बात कवे छे या मैं कहूँ ? इसपर हनुमान बोल्यो--फेरूँ बात मैं ही कहस्यूँ, बाकी मने चरणोंका स्पर्श जरूर होना चाहिये। जणा आप बोल्या--ध्यान तो जिस प्रकार हुयो थो, वैसो होनो सहज ही है, बाकी चरणोंके स्पर्शकी आगलेकी मरजी।

इतने मांय हनुमान फेरूँ उन तरह ही होय गयो और उसने फिर भगवान्‌का दर्शन होने लग गया और आँखें उसके खुली रही और बोल्यो--किसीने दर्शन करना हो तो मेरे पास आप आकर दर्शन करो। यह भगवान्‌का चरण रया। मैं स्पर्श करूँ हूं, थे लोग भी स्पर्श करो। इतनी कहकर जोरसे हाथ बढ़ाकर श्रीजयदयालजीके दाहिने चरणने पकड़कर बाह्यज्ञानसे शून्य होकर पड़ गयो। जणे आप बोल्या--घनश्याम इने उठा। बाकी घनश्यामसे उठ्यो नहीं। आप कही ज्वालाप्रसादजी, आप हनुमानने उठावो। जणे ज्वाला-प्रसादजी सावधानीसे उठायकर हनुमानने अपणी गोदी मांय सुवाय लियो। इस प्रकार निष्पंद और निश्चल अवस्थामें प्रायः डेढ़ घंटा पड्यो रह्यो।

इसी बीच आप श्रीविष्णु भगवान्‌को ध्यान वर्णन करनो आरम्भ कियो। आरम्भमें 'त्वमेव माता', 'सशङ्खचक्रम्' श्लोकको बहुत प्रेमसे उच्चारण कर-कर भगवान्‌के स्वरूपको वर्णन करने लग गया। फिर वर्णन करनेके बाद भगवान्‌ने हृदयमें शेष शैया पर सुलाकर मैं सूक्ष्म शरीर धारणकर पूजा करूँ हूँ। इस प्रकार बोल्या--प्रेम-भक्ति-प्रकाशके

अनुसार पूजा करी । बाकी इतनी बातां नयी और होई—

१. पूजाकी सब सामग्री दाहिने ओर रखी हुई थी। पाद्य, अर्घ्य, आचमनका कलश न्यारा-न्यारा था।

२. उच्छिष्ठ कलशांने बांई तरफ राखता जावे था। हाथ धोयकर फिर पूजा करे था।

३. भगवान्‌को चरणामृत मस्तकपर धारण कर्‌यो और सगले छींट्यो गयो।

४. पुष्प चढ़ावे था, जिका जेयाका जैया आकाशमें स्थित रह जावे है, जमीनपर गिरे छे नहीं।

५. माला पहराणे लाग्या, जणा भगवान् माला पहरणे-के समय जैसे सिर झुकाया करे छे, उस प्रकार भगवान् भी माला पहनने तांई सिर झुकाय लियो।

६. फेरी देनेके समय भगवान्‌के मुखारविन्दने छोड़कर पीठकी तरफ जानेकी इच्छा नहीं हुई, जणे फेरीके साथ भगवान् भी चारों तरफ फिरता रया।

७. भगवान्‌ने हृदयमें सुलाकर सूक्ष्म शरीरसे हवा की गयी।

८. बहुतसे ऋषियोंको आवाहन कर्‌यो गयो, जणा नारदजी, सनकादिक, हनुमानजी, गरुड़जी तथा और बहुत-सा ऋषि आया।

इसके बाद भगवान्‌की बहुत मार्मिक शब्दोंमें स्तुति करी, जिकी इस प्रकार छे.................स्तुति करते समय बिहारीलालजी गयाजीका, कुञ्जलालजी सुलतानिया, सीता-रामजी पोद्दार आय गया। स्तुति समाप्त होनेके थोड़ी देर बाद हनुमान आँख खोलकर, फिर उसी वक्त आँख मींच लेई।

फिर थोड़ी देर बाद आँख खोलकर बोल्यो—भगवान् तो चल्या गया। जणे आप बोल्या—ग्रापनें भी चालो। इसके बाद सगला चालने लाग गया। ग्रागे-ग्रागे ग्राप चले छे। आप बहुत उन्मत्ततासे चाले छे। शरीर डगमगा रयो थो, पग इधर-उधर पड़ रया था। रामेश्वर तथा शुभकरण आपके ग्रास-पास चाले था ग्रौर हनुमान पीछे-पीछे ग्राय रयो थो। घनश्याम तथा ज्वालाप्रसादजी उसने पकड़ राख्यो थो। शरीरको होश-हवाश बिलकुल थो नहीं। पग डगमगा रया था। भवन मांय आनेके बाद ग्राप तो आकर कमरे मांय चला गया। और हनुमान श्रीज्वालाप्रसादजी उतरा था, जिके कमरेके बाहर के तखत पर सूतो-सूतो बेहोशी मांय यह शब्द बोल्यो। उसके पास घनश्याम थो—

"शेष शैया पर वह सूता"

"प्रसाद राखो हो, थाने याद है ने ? कितना पेड़ा था ? कितना लाडू था ?"

"ॐ भवनके कमरेके बाहरनै मांड्यो हुओं थो, जिके मांय हनुमान बोल्यो देखो—ॐ मांय भगवान् बैठ्या छे। अठेसे कठे जावे। सुन्दर बहुत है, "ॐ मांय बैठ्या छे।"

—"देख तो सरू, कैसो सुन्दर स्वरूप है प्रकाश-ही-प्रकाश चारों तरफ होय रयो है।"

—"थारी जगह भी वही है, म्हारी जगह भी वही है। जावे कठे वे सगले ही है।"

—"लक्ष्मीनारायणजी मुरोदिया आया है के ? ग्रापणे भले ही ग्रावो, लक्ष्मीनारायणजो भी तो वही है।"

—"सो जाऊँ, सोनो कौ बींईमें, सोवे कौन ?"

—"आयकर हाथ पकड़कर अठे ताईं पहुँचा गयो, फिर तो चल्यो गयो। गयो, जासी कठे ? सगले वही है।"

—"आँख मीचू हूँ मैं, उरे सी चरण कर, अठै आव, आव, सोतो हूँ तो के ?"

—"जायो ही होना, और तो कोई आंट ही कोनी।"

पीछे घनश्याम ज्वालाप्रसादजीने बठाकर जीमने चल्यो गयो। जणे आप पूछ्यो—हनुमानको के हाल है ? जीमसी कें ? जणा घनश्याम बोल्या—वे तो कहे था, भौत लाड़ू-पेड़ा खाया। जणा आप घनश्यामने कही—तूं बीने दूध भी पाया। लाड़ू-पेड़ांपर दूध भी पी ले। जणा घनश्याम एक गिलास दूध पिलाने ल्यायो। घनश्याम बोल्यो—दूध आप भेज्यो है। जणे हनुमान बोल्यो—"प्रसाद सागलांने बाँट दे। जणे घनश्याम दूध द्वारके, शुभकरण, रामेश्वर, केदारनाथजीने दियो तथा आप भी लियो। पीछे बाकी रयो, जिको दूध हनुमान लियो। दूध पीनेके उपरान्त बोल्यो, आपके पास चालां के ? जणे आपके पास चला गया और तख्तेपर बैठ गया। इतने मांय ही आप आवे था। जणे हनुमान बोल्यो—भगवान् आवे छे, उठो—और बेहोशीमें आपके चरणांमें पड़ गयो। फिर कितनी देर आपके पास रहकर सोने आय गयो। रात्रिमें आनन्द बहुत बेसी रयो। निद्रा बिलकुल आयी नहीं।

मेरी बड़ी उत्कंठा थी कि मैं कोई रहस्यकी बात प्रत्यक्ष देखूं। ये बातें भाईजीने बादमें बोलकर लिखायी। उस की आपसे भगवान् रामके दर्शनोंकी बात और ज्वालाप्रसाद-जीसे आपके प्रेम-प्रभावकी बात होनेसे उत्कंठा बहुत ज्यादा

बढ़ गयी थी।

भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंकी इतनी उत्कंठा मेरे जीवनमें कदे भी हुई नहीं।

इस निमित्त उनसे प्रार्थना करनेकी ......घनश्याम मेरे साथ थो। जाते ही बिना कहे ही आप बोल्यो कि चलो, आज ध्यान करने पहाड़ीपर चालां। पहाड़ी पै जानेकी बात अलग लिख्योड़ी छे ही। जद मैं ध्यानकी भावना करी, जद सब दृश्य एकदम जातो रह्यो।

चारों तरफ अकस्मात् बड़ो भारी प्रकाश होय गयो।

जिस जगह आप विराजमान था, उस जगह भगवान्‌की चतुर्भुज मूर्तिका मने प्रत्यक्ष आंख्या खोल्या हुआ दो जना आपने सामने बैठ्या जेयां दर्शन होने लग गया। मेरे आनन्दको पार रह्यो नहीं। मैं थोड़ी देर भगवान्‌के रूपको वर्णन कर्‌यो। वृत्तियाँ बाहरसे बिल्कुल हट गयीं। मैं भगवान्‌के चरणाँकों स्पर्श करनेके लिये हाथ आगे बढ़ानेके लिये कई दफे चेष्टा करी। हाथ आगे बढ्‌यो ही नहीं। जणा हाथ आगिने बढ़ानेके लिये मैं कही, जणा हाथ आगे बढ्‌यो। किन्तु भगवान्‌को आसन और गेलने होय गयो। फिर मैं कही जणा भगवान्‌को आसन मेरे हाथके समीप आय गयो और मैं चरण-स्पर्श करनो चावे थो कि इतने मांय भगवान् अन्तर्धान हो गया और उस जगह श्रीजयदयालजी दिखणे लाग गया। मैं कही—या के बात हुई ? जणा आप बोल्या: मेरे या फुरणा हुई कि मैं वर्णन करूँ जण मैं बोल्यो मैं करूँ हूँ, पण मनै भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श होना चाहिये। जणा आप बोल्या—पहलो होयो जिसो, ध्यान होनो तो बहुत

सहज है, चरणोंका स्पर्श होना तो अगलेकी मर्जीपर है।

इस कहनेके साथ अकस्मात् अनन्त प्रकाश होय गयो। मने फिर उसी तरह दर्शन होणे लग गया। मैं आनन्दमांय विह्वल होयकर भगवान्के दाहिने चरणने पकड़ लियो और चरणमें बलात्कारसे जा पड्यो और भगवान् मेरे मस्तकपर हाथ राख दियो। जणां पीछेसे लोगां कही—तूं तो श्री-जयदयालजीके चरण पर पड्यो थो। बाकी मेरी दृष्टिमें बीं जगां भगवान् नारायणके सिवा और कोई भी नहीं थो। श्रीजयदयालजी भी नहीं था। केवल श्रीनारायणदेव ही था। इस स्थिति मांय मैं बहुत देर ताईं पड्यो रह्यो और भगवान् मेरे मस्तकपर हाथ राखे हुए हँसते रहे। कुछ समयके बाद मनै या दिखी, कोई विलक्षण पुरुष भगवान्की शोडषोपचार-से पूजा कर रहा छे। मैं पूजाने देखकर बहुत प्रसन्न होयो। कुछ समयके बाद मैं देखूँ हूँ तो बहुत-सा ऋषि पधारे हैं। ऋषियोंमें भगवान् नारद, व्यास, सनत्कुमार, हनुमान इत्यादि था। वह आवता ही आप-आपको नाम बताकर मेरी ही तरह भगवान्के चरणां मोय पड़ने लाग गया ओर मनै भगवान्के चरणां मांय पड्यो हुयो देखकर बहुत राजी होया। इसके बाद विलक्षण पुरुषके द्वारा पूजा करनेके समय जो प्रसाद लगायो थो, वह प्रसाद सबने बाँटनेके लिये एक ऋषिबालकने आज्ञा देयी और वह भगवान्की आज्ञा पाकर सबने प्रसाद बाँट दियो। जणा भगवान् कह्यो—इसनै भी देवो जणा, मने भी उठकर प्रसाद दियो और मैं बड़े आनन्दके साथ उस प्रसादने खायो। इतनो विलक्षण स्वादको अनुभव जीवन मांय कदे भी होयो नहीं। इसके थोड़ी देर बाद

श्रीभगवान् अन्तर्धान होतां हीं मेरे चित्त मांय व्याकुलता सी होयकर आँख खुलते ही मैं कही—भगवान् तो चल्या गया। जणां श्रीजयदयालजी कही—आपणे भी चालो। मैं देख्यो मेरो सिर भी श्रीज्वालाप्रसादजीकी गोदी मांय थो। वे लोग मने उठायो, बाकी मेरे अन्दर आनन्दकी इतनी बाढ़ थी कि मेरो बाह्य ज्ञान फिर जातो रह्यो। मने प्रत्यक्ष दिखे कि भगवान् मेरे साथ चल रह्या है। मैं बड़े आनन्द सेती चालतो रह्यो। मने लायकर भवन मांय बिठाय दियो। उठे भी मनै उसी श्रीभगवान्का दर्शन होता रह्या। पीछे मने श्रीजयदयालजीके पास ले गया, उठे फिर श्रीभगवान्का दर्शन हुआ तथा मैं दण्डवत करी, जणा पीछे मनै बाहरी चेतो होय गयो।

दूसरी घटना

मिति आश्विन कृष्णा नवमी सं० १९८४ वि०, सोमवार, स्थान—जसीडीह, महेन्द्र सरकारकी कोठीके पूर्व दक्षिण भागमें—

(मारवाड़ी,) आरोग्य भवनके पुस्तकालयमें दिनके दो बजे लोग एकत्रित हुए। श्रीजयदयालजीने हरदत्तरायजी गोयन्दकाके कहनेपर हनुमानप्रसाद पोद्दारसे कहा कि हरदत्त कहता है, इसलिये उस दिनकी तरह आँख खोले हुए प्रत्यक्ष भगवान्के दर्शन हों, इस बातके लिये चेष्टा करनी चाहिये। उसके बाद थोड़ी देर तो हनुमान चुप रहा। पीछे श्रीजयदयालजीने कहा—कुछ स्तुतिके श्लोक और 'अजोऽपि' इत्यादि श्लोक बोलकर आरम्भ करना चाहिये। इसके बाद स्वयं ही 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' उच्चारण करके चुप हो गये।

इसके कुछ मिनट बाद हनुमानने 'शान्ताकारम्' बोलकर 'अजोऽपि', 'यदा-यदा', 'परित्राणाय'—यह तीन श्लोक बोलकर उपस्थित लोगोंसे एक साथ मिलकर एक ध्वनिसे भगवान्‌के आह्वानके लिये व्याकुल होकर मनसे प्रार्थना करनेके लिये कहा और यह भी कहा कि किसीको किसी प्रकारका शब्द नहीं करना चाहिये। यदि कोई शब्द हो तो उसकी तरफ ध्यान नहीं देना चाहिये। यहाँतक मनको भगवान् मांय लगाना चाहिये कि यदि वज्रपात होय तो भी उसकी तरफ ध्यान न जाय। उसके बाद वह भगवान्‌से प्रार्थना करने लगा।

उसने कहा—हे प्रभो! हे दीनानाथ!! मेरे तो कोई प्रेम नहीं, मेरा तो कोई बल नहीं, मेरी तो कोई योग्यता नहीं, कोई शक्ति नहीं, जिसके प्रेम और बलके वशीभूत होकर उस दिन आप साक्षात् प्रकट हुए थे, उसीके प्रेम और बलसे आज भी हमलोगोंमें आविर्भूत होनेकी दया करिये। हे नाथ! मैं तो कोई प्रार्थनाकी भी योग्यता नहीं रखता। उसीकी प्रेरणासे आपसे प्रार्थना की जा रही है। प्रार्थना करनेमें हनुमान बीच-बीचमें रुक रहा था। कुछ समयतक चुप रहनेके बाद उसने कहा—हे प्रभो! आज आप प्रकट क्यों नहीं होते? आज क्या बात है? थोड़ी देरके बाद हनुमानने श्रीजयदयालजीसे कहा—आज चेष्टा करनेपर भी कोई फल नहीं होता। साधारण आँख खोले हुए ध्यान करा करूँ, जिको भी नहीं होवे, आज क्या बात है? आप अब मुझको फिर एक बार आज्ञा करें, जिससे मुझको वैसा दर्शन होने सके। इसके बाद हनुमान बोल्यो—अब थोड़ो

ध्यान होनें लाग्गयो। ईसपर आपने कहा---मेरे यह फुरना हो रही है कि इसके लिये पहाड़ी ठीक है। यह जगह राजसी है, वह जगह सात्त्विकी है और वह प्राकृत है। इसपर हनुमानने कहा---अच्छा, वहाँ चलना चाहिये। सब लोग तैयार ही गया। आप भी उठ खड़ा हुआ। आगे-आगे चालने लाग गया। पहाड़ीके रास्ते मांय एक स्थानने देखकर या बात कही---यो स्थान भी चोखो है, परन्तु आज तो उसी जगह चलनो चाहिये। आखिर सब लोग पहाड़ीके उस स्थानपर पहुँच गया कि जिस स्थानपर पहले भगवान्का दर्शन हुआ था। उठे पहुँचनेपर आप हनुमानने कही--हाथ-पग धोय लिया कि नहीं? हनुमान बोल्यो---हाथ-पग धो लिया। मोहन-लालजी जल लेय गया था। वह हाथ-पग धोयाया था। आप हनुमान पहली जिस जगह बैठा था, उस जगह बैठ गया। पहले शुक्रवारने बैठा था, जिकी जगह, जिसी माफक और सब लोग भी बैठ गया। बैठनेके बाद हनुमान 'त्वमेव माता', 'यदा-यदा हि', 'परित्राणाय' यह श्लोक बोलता-बोलता बीच मांय अटक्यो। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद बोल्यो---देखो, सब भाई सावधान हुय जाओ। मनने एकाग्र करके भगवान्का दर्शन करना चाये, आँख खोल्यां जिसको मन दूसरी तरफ जावे, जिकेनें आँख मींच लेनी चाये। इसपर आप बोल्या---दो ही बात ठीक है या तो आँख मींच लेई जावे, या नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि राखी जावे।

हनुमान बोल्यो--जिस तरह ही भगवान्को ध्यान करनो चाये, पूर्वकालमें मैं हनुमान गोयन्दकैनै ध्यानकी बात वर्णन

कर्या करतो थो। हनुमान भी ध्यान लगानेकी चेष्टा कर्या करतो थो। उस माफक ही भगवान्के स्वरूपकी भावना सबने करनी चाये। उसके बाद थोड़ी देर चुप रहनेके बाद हनुमान बोल्यो कि उस दिनके माफक श्रीभगवान् उस स्थानमें प्रकट हुय गया है। आज आनन्दकी अधिक विलक्षणता है। वही कमलको विशाल आसन है। कमलको रंग नीचेसे सफेद, बीचमें लालिमा, ऊपर नीलिमा। इसपर उसी प्रकारसे भगवान् दाहिने चरणारविन्दने नीचेकी तरफ करकर विराजमान है। मेरी वृत्तियाँ रुकी जावे है। जितनो भगवान्के रूपको वर्णन करने सक्यो, उतनो करूँ हूँ। आपलोगांने उसी माफक भगवान्के रूपको ध्यान करनो चाये। इसके बाद हनुमान फिर बोल्यो—भगवान्के चरण-कमलके नखकी ज्योतिमें कितनो प्रकाश होय रह्यो छे। उन गहनोंको मैं नाम नहीं जानू हूँ। इसके बाद हनुमानको बोलनो रुक गयो। इसके बाद श्रीजयदयालजी बोल्या—तँ बोलनो बन्द क्यों कर दियो? भगवान्के स्वरूपको स्पष्ट वर्णन कर। दो दफे श्रीजयदयालजी केयो, बाकी हनुमान बोल्यो नहीं। थोड़ी देरकै बाद हनुमान बेहोश होकर गिर पड्यो। रामजीदासजी बाजोरिया (भागलपुर) की गोदीमें हनुमानका सिर पड़ गयो। रामजीदासजीने श्रीजयदयालजी कह्यो—इनै बैठो करो। उन्होंने चेष्टा को और बोल्या कि मेरो उठानेकी सामर्थ्य नहीं है। आप बोल्या—हनुमान, सावधान हुय कर ध्यान कर। कुछ देर बाद रामजीदासजी ही स्वयं बैठ्यो कर दियो।

और हनुमान पड्यो थो, जणा श्रीजयदयालजी कीर्तन

शुरू कर्‌यो ।

"श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासुदेव ।"

जब रामजीदासजी भी सहारेसे हनुमानने बैठ्यो कर्‌यो, जद श्रीजयदयालजी बोल्या--तूं बोले क्यों नहीं है ? जणा हनुमान वा बात कही--मैं बोलनेकी चेष्टा करी, पर मेरेसे बोल्यो गयो नहीं । जणे आप बोल्या कि तूं स्वरूपको वर्णन करे बिना दूसरांको के फायदो होवे । इतना मनुष्य सङ्ग क्यों लायो थो । नहीं बोलनो हो तो अकेलो क्यों नहीं आयो ? इतना कहनेके साथ हनुमान बोलने लाग गयो और बोल्यो--मैं पहले बहुत चेष्टा करी थी, मेरेसे बोल्यो नहीं गयो ।

इसके बाद हनुमान भगवान्‌के स्वरूपको वर्णन करने लाग गयो । और स्वरूपके वर्णन करनेके बाद श्रीजयदयाल-जी बोल्या--के तूं पड्यो रयो जणे के व्यवस्था हुई । जणा हनुमान बोल्यो--मैं के बताऊं ? आपने किसो बेरो कोनी ? आप किसा सुने कोनी था ? अब सुनो अब के कह रह्या छै । इतनी कहकर फिर बेहोश हो गयो । फिर आप कीर्तन शुरू कर्‌यो--

"जै रघुनन्दन जै सियाराम,
जानकीबल्लभ सीताराम ।"

फिर थोड़ी देरके बाद आँख खोलनेके बाद हनुमान बोल्यो मैरी इतनी सुनायी नहीं होने सके छे । आपके कहनेसे सबने दर्शन होने सकै छे । जणा आप कही--म्हें क्यों कैंवां ?

आप जैसो उचित समझो, वैसो ही करो । जणा हनुमान बोल्यो——दर्शनकी सबको इच्छा नहीं है । जणा श्रीजयदयालजी बोल्या——जिन-जिनकी इच्छा होवै, उन-उनको होना चाहिये । जणे हनुमान बोल्यो——थे कैवो जिस-जिसने दर्शन होने सके छे । जणा आप बोल्या——आगलो पूछे तो मैं नाम बताणे सकूँ छूँ । जणा हनुमान बोल्यो——थे केवौ जैया करणतै आगलो राजी है । जणा आप बोल्या——चोड़े आयकर क्यों नहीं कहे ? सागला जणा सुने । यदि चोड़े आकर प्रकट नहीं होवे तो जैसी आगे आकाशबाणी होती थी, उसी माफिक कहनेसे सागलांने सुन सके छे । जणा हनुमान बोल्यो——या कानून नहीं है; आपनै किसी मालुम नहीं है ? इसके बाद फिर हनुमानकी आँखें मिच गयी और बेहोश होय गयो । और थोड़ी देरके बाद, हनुमान फिर आँखें खोलकर बोल्यो कि थे केवो तो दर्शन होने सके छे । जणा श्रीजयदयालजी बोल्या——मैं क्यों केवूँ ? फिर आँखें मिच गयी । फिर थोड़ी देरके बाद आँखें खुलनेसे हनुमान बोल्या——कि भगवान् कवै है कि तूँ कवे तो तेरी खातरीसे दर्शन होने सके छे । जणा आप बोल्या—तने तो दर्शन होय रह्या छे । जणा हनुमान बोल्यो—मेरी बात नहीं । आपके कहनेसे सबनें दर्शन होने सके छे । इसपर आप बोल्या—अगलेनै गरज होवे तो दर्शन दो । म्हानै तो गरज नहीं है । म्हें तो खुशामदिया नहीं आगलेने गरज होवे तो दर्शन दो नहीं तो आगलेकी मरजी । म्हें तो आगलेकी राजी मैं राजी हों । फिर आँखें मिच गयी । फिर आँखें खुलनेके बाद हनुमान बोल्यो श्रीभगवान्ने गरज है, जणा

ही तो आपकी बात माने है। जणे आप बोल्या, म्हें तो म्हारो काम खोटी करकर आया छां। इसपर भी खुशामद चावै तो अगलेके नामको कीर्तन कर रह्या छां और खड़ा हुयकर नाचने सकां छां। इसके बाद हनुमान बोल्यो—आप खाली कह देवो। इसपर आप बोल्या—म्हें तो यूं कवां नहीं। इसके बाद बहुत गम्भीरताके साथ सबने या बात कही—आंके कहे मुजब चालनेसे दर्शन होने सके छे। इसके थोड़ी देर बाद फिर हनुमानप्रसाद जोरसे बोल्यो—सुनो, भगवान्‌के कह रह्या छे—

१. एकी आज्ञा पालनसे ही मेरी आज्ञा पालन है।

२. एकी प्रसन्नतासे ही मेरी प्रसन्नता है।

३. एकी इच्छामें ही, मेरी इच्छा है।

४. एके रूपमें ही मेरो रूप है।

इसके बाद हनुमानप्रसाद पोद्दार बोल्यो—भगवान् अन्तर्धान होय गया।

भाईजी अश्विन कृष्ण ९ सं० १९८४ को ही गोरखपुर रवाना होने वाले थे। पर उस दिन प्रत्यक्ष दर्शनोंकी जो विलक्षण घटना हुई, उसीमें रात्रि हो गयी। अतः दूसरे दिन श्रीसेठजी एवं भाईजी अन्य प्रेमीजनोंके साथ बनारस रवाना हुए। रास्तेमें भाईजीने श्रीसेठजीसे प्रश्न किया—"इसबार जसीडीहमें सबके सामने इस प्रकारका अपूर्व प्रभाव दिखाया गया, जो कार्य एकान्तमें होता है, वह इतने लोगोंके समक्ष क्यों हुआ? इसका क्या हेतु है?" श्रीसेठजी बोले—"इससे जगत्‌को लाभ ही होगा। यह काम समझकर ही हुआ है। परन्तु ऐसी घटना जीवन कालमें प्रकाशमें न आवे तो

अच्छा है।"

भाईजी बोले—"इससे मेरे प्रश्नका पूरा उत्तर नहीं हुआ। मैं तो पूछता हूँ कि इतना प्रत्यक्ष प्रभाव सब लोगोंके सामने होनेमें क्या हेतु है ?"

श्रीसेठजी बोले—"जिसके द्वारा भगवद्भक्तिके प्रचार-की अधिक सम्भावना होती है, उसीको भगवान् इस प्रकार दर्शन देते हैं। दर्शन तो औरोंको भी देते हैं, परन्तु यों सबके सामने नहीं देते।"

यह बात आगे चलकर प्रत्यक्ष हो गयी कि जैसा भक्ति-का प्रचार भाईजीके द्वारा हुआ, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जसीडीहमें भगवान्के दर्शनोंकी बात उपस्थित लोगोंने अपने स्वजनों, मित्रोंको लिखी, जिससे यह बात अनेक स्थानोंमें शीघ्र ही फैल गयी। लोगोंके पत्र श्रीसेठजी एवं भाईजीके पास आने लगे।

गोरखपुरमें पुनः भगवान्के साक्षात् दर्शनोंकी चार विलक्षण घटनायें

गोरखपुरमें कान्ती बाबूके बगीचेमें, जहाँ भाईजी उस समय निवास करते थे, नित्यप्रति सत्सङ्ग प्रारम्भ हो गया। प्रेमीजनोंने भाईजीसे जसीडीहकी घटना जाननेके लिये प्रश्न किये, जिसका उत्तर कैसे दिया, उसको आप उन्हींके ही शब्दोंमें सुनिये। भाईजीने गोरखपुरसे श्रीगोयन्दकाजीको जसीडीह पत्र दिया—

श्रीहरिः

गोरखपुर, आश्विन शुक्ल १ सं० १९८४

परम पूज्यवर, हृदयसे प्रणाम।

जसीडीहकी अभूतपूर्व घटनाके सम्बन्धमें हम लोगोंके

पहुँचनेसे पहले ही कलकत्तेसे समाचार आ गये थे। यहाँके लोगोंने उक्त घटना जाननेके लिये बड़ी उत्सुकता दिखलायी। कल प्रातःकाल तो विशेष कुछ-न-कुछ कहकर केवल साधन पर जोर दिया गया। रातको संकोच रहनेपर भी विवश होकर कितनी बातें कहनी ही पड़ीं। कलकत्तेमें बड़ा आन्दोलन हो गया दीखता है। सुननेमें आया है कि वहाँ श्री-हीरालालजीने भवनमें व्याख्यान देते हुए इस बातको कह दिया है।

भगवान् जैसा कुछ करना, करवाना चाहते हैं, वही सर्वथा न्यायसङ्गत है।

यहाँ लोगोंने कहा कि हमें भी दर्शन होने चाहिये। इसपर उनसे कहा गया कि जिनके बल और प्रतापसे दर्शन हुए हैं, उनसे ही आप लोग भी दर्शनके लिये प्रार्थना कर सकते हैं।

शेषमें उनसे कहा गया कि आप लोग जसीडीहकी आज्ञानुसार साधन करनेके लिये तैयार हों तो वहाँ लिखकर साधनका क्रम पूछा जा सकता है, परन्तु आप लोगोंको कड़े-से-कड़े साधनके लिये तैयार रहना चाहिये। जो साधन वे बता दें, वही करना पड़ेगा। ऐसी धारणा कर लेनी चाहिये। इस बातको लोगोंने प्रायः स्वीकार किया। स्त्रियोंकी ओरसे भी कहा गया कि हम भी तैयार हैं। हमारी बात पीछे न रह जाय। इसीके अनुसार "उन सबकी ओरसे" यह पत्र आपकी सेवामें लिखा जाता है। अब आपके जचै जैसी बात लिखनी चाहिये, जिससे उन सबको बहुत शीघ्र परमात्माके

दर्शन हो, ऐसा तीव्र साधन बतलाना चाहिये। अनुगत
हनुमान

जसीडीहकी घटना एक साधारण घटना नहीं थी, जो किसी एक, दो या चार स्थानोंतक ही सीमित रह सकती। उस समय तो मानो प्रेममय मन्दाकिनीका ऐसा प्रवाह चारों तरफ फैला कि कलकत्ते, दिल्ली, बम्बई, बीकानेर, रतनगढ़, भिवानी, भागलपुर, तिनसुकिया आदि स्थानोंसे लोग श्री-गोयन्दकाजी एवं भाईजीके पास आने लगे।

भाईजीने अपनी स्थिति परिवर्तन होनेका संवाद सबसे पहले रतनगढ़, बीकानेर अपनी मातुश्रीको दिया और उसमें लिखा कि मेरी आध्यात्मिक स्थितिमें परिवर्तन हो गया है। अतः आप लोगोंको मेरे समीप रहनेसे अधिक लाभ हो सकता है। इधर वे भी इनके पास रहना ही चाहते थे। तब भाईजीने श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको बीकानेर आश्विन शुक्ल ५/८४ को तार दिया कि रतनगढ़से पूजनीया माताजी आदिको साथ लेकर गोरखपुर आओ। बस वे तो ऐसा इशारा पानेकी प्रतिक्षा ही कर रहे थे, क्योंकि उनको जबसे इस घटनाका संवाद अपने प्रिय मित्र श्रीबद्रीदासजी आचार्य, विशारद, मैनेजर 'कल्याणसे' मिला था, तभीसे वे मिलनेके लिये लालायित थे। माताजी आदि उनके साथ गोरखपुर आनेके लिये रवाना हो गयीं।

इधर भाईजीको पुनः श्रीविष्णु भगवान्के दर्शन गोरख-पुरमें हुए। उस घटनाको उन्होंने अपनी डायरीमें पीछे नोट-कर लिया। उसी डायरीकी नकल नीचे दी जा रही है—

पहली घटना

सं० १९८४ वि० आश्विन शुक्ल ६, रविवार ता०२-१०-१९२७ ई०

स्थान—कान्ति बाबूका बगीचा (गोरखपुर शहरके बाहर) दक्षिण तरफके कमरेके पासवाला बीचका बड़ा कमरा ।

समय—प्रातःकाल करीब साढ़े सात बजे सत्सङ्गके समय कई लोग थे, उनमेंसे कुछके नाम ये हैं ।

उपस्थिति—श्रीचेतरामजी, बद्रीप्रसादजी, रामेश्वरजी, घनश्यामदासजी, शङ्करलालजी ।

ध्यानकी बात हो रही थी, ध्यान भी हो रहा था । अकस्मात् परम प्रकाश हो गया, भगवान् श्रीविष्णु प्रकट हुए । आकाशमें खड़े हुए थे । करीब ५-६ मिनटों तक दर्शन होते रहे । मुझसे कुछ भी बोला न गया । उनके मुखारविन्द और नेत्रोंसे कृपा झलक रही थी । जैसे पिता अपने पुत्रको और मित्र अपने मित्रको स्नेह और प्रेमकी दृष्टिसे देखता है, ऐसा भाव प्रत्यक्ष प्रतीत होता था । यह भी अनुभव हो रहा था कि भगवान् कुछ कहना चाहते हैं और फिर भी उनकी या मेरी जब कभी इच्छा हो पधारकर दर्शन देनेके लिये प्रस्तुत हैं । कुछ समय बाद अकस्मात् अन्तर्धान हो गये । दिनभर उपरामता रही ।

भाईजीने अपनेको गोरखपुरमें श्रीविष्णु भगवान्के दर्शन हुए थे, उसका श्रीगोयन्दकाजीको पत्रमें संकेत किया—

"यहाँ प्रतिदिन प्रातःकाल ध्यानकी बातें होती हैं । कल प्रातःकाल ध्यानके समय छः-सात मिनिट आँखें खुले

हुए जसीडोहकी तरहसे ही श्रीभगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन होते रहे। कोई बुलाने या दर्शन करनेकी भावना भी जागृत नहीं हुई थी, परन्तु बड़ा ही विलक्षण आनन्द रहा। बुलानेकी इच्छा तो नहीं होती, परन्तु अब ऐसा विश्वास होता है कि गुरुचरण कृपासे जब इच्छा हो तभी भगवान्के दर्शन और उनसे वार्तालाप हो सकते हैं। कल दिनमें एक बार आपके चरणोंमें आनेकी फुरणा हुई थी, कारण कुछ पता नहीं। मुझे कभी कोई स्वप्न भी नहीं आते। सालभरमें शायद एक-दो स्वप्न आते हों, परन्तु परसों रातको स्वप्नमें आपके दर्शन हुए। मानो मैं तथा बहुतसे अन्य लोग आपके साथ कहींपर गये हुए हैं। पूरी बातें स्मरण नहीं हैं।

इन पत्रोंका उत्तर श्रीगोयन्दकाजीने जसीडोहसे भाईजीको दिया। जिसके कुछ अंशकी नकल उन्हींकी भाषामें नीचे दी जाती है—

श्रीरामजी

"भाई हनुमानप्रसाद सेती जैदेवका फेरूँ प्रेमसहित राम-राम बंचना.........श्रीजसीडीहकी भाँति ५ या ७ मिनट तक श्रीगोरखपुर मांय श्रीभगववान्के प्रत्यक्ष दर्शन हुए, या भौत आनन्दकी बात है, फिर भी चावै जणे होनेकी उम्मीद लिखी, सो भगवान्की दया है।

भाईजीकी डायरीसे—

दूसरी घटना

सं० १९८४ वि० मिति आश्विन शुक्ल १२ शनिवार, ता० ८-१०-१९२७ ई०

स्थान—कान्तोबाबूका बागीचा, दरवाजेके सामनेवाली

दक्षिणाभिमुखी कोठरी, जिसमें आफिस था।

"दिनके करीब १२ बजे उपरामताने जोर पकड़ा। मैं बाहर बैठा हुआ था। घरमें चूना पोतनेवाले मजदूरोंका काम देखनेकी चेष्टा कर रहा था कि अचानक किसीके द्वारा खिंचा-सा जाकर कोठरीके अन्दर चला गया और अन्दरसे किवाड़ बन्द कर लिया। उत्तरकी खिड़कीके पास कुर्सी पर बैठ गया और मनकी भावनाके अनुसार किसीके बैठनेके लिये सामने एक कुर्सी और रख ली। अकस्मात् प्रकाश हो गया। महान् शान्ति-सी प्रतीत होने लगी। मेरी उस समयकी अवस्थाका मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ। तत्काल ही भगवान्का आविर्भाव हो गया। मेरे सामनेकी कुर्सीपर एक बार उनका चरण स्पर्श हुआ। फिर आकाशमें ही उनकी स्थिति रही। मैं मंत्रमुग्ध-सा हो रहा था। मेरे आनन्दका पार नहीं था। प्रभु मेरे सामने स्थित हुए करुणा और प्रेमके साथ महान् आनन्दकी वर्षा कर रहे थे। मैं कुछ बोल नहीं सका, न स्तुति कर सका, चरणस्पर्श मैंने उसी समय कर लिये। मन-ही-मन भगवान्की इस अयाचित कृपाको देखकर परम आह्लादित हो रहा था। बहुत देरतक यह स्थिति रही। फिर भगवान् बोले मानो आनन्दका समुद्र उमड़ा। तेरी कुछ इच्छा बाकी है? बड़ी हिम्मतसे एक-दो वाक्य मेरे मुँहसे निकले—कुछ नहीं, केवल आप.........।

इस समय भगवान्की मधुर मुस्कान कुछ अनोखी ही थी। भगवान्ने हँसकर मानो मेरा समर्थन किया। फिर धीरे-धीरे बीच-बीचमें रुककर इतनी बातें कही—

१. दर्शनोंकी बातें गुप्त रखनेमें ही लाभ है।

२. धर्मके नामपर परस्पर लड़नेवाले मेरा प्रभाव नहीं जानते।

३. पूरी गोरक्षामें अभी विलम्ब है।

४. मेरे अवतारका समय अभी बहुर दूर है।

५. जगत्का कुछ भला करना हो तो भेद छोड़कर नामका प्रचार कर, लोगोंसे कह दे कि इस कालमें नामसे ही सब कुछ हो जायगा। मेरे अवतारमें भी नाम ही हेतु होगा।

६. जो लोग नामका सहारा लेकर पापको आश्रय देते हैं, उनको सावधानकर कि उनकी शुद्धि यमराज भी नहीं कर सकता।

७. पापोंका नाश तथा भोगोंकी प्राप्तिके लिये नामका प्रयोग करना मूर्खता है। पापका नाश तो फलभोग और प्रायश्चित्तसे भी हो जाता है। क्षणिक भोगों की तो परवाह नहीं करनी चाहिये। भोगोंके आने-जानेमें तो हानि ही क्या है ?

८. नाम तो प्रियसे भी प्रियतम वस्तु है। इसका प्रयोग तो इसीके लिये करना चाहिये।

९. दम्भ बहुत बढ़ गया है। दम्भ मेरी प्राप्तिमें सबसे बड़ा बाधक है। दम्भियोंसे सावधान रह और उनको भी सावधान कर दे कि उनकी बुरी गति होगी। काम क्रोधसे भी दम्भ बुरा है।

१०. किसीको भी मेरे दर्शनोंका पक्का आश्वासन मत दे।

११. जसीडीहके सिवा इन बातोंका मेरे नामसे प्रचार न कर।

१२. अब इस तरह नहीं आऊँगा। तेरे बिना बुलाये दो बार आ गया। मुझे ये बातें कहनी थीं। इसलिये जब चाहे स्मरण कर बुला सकता है, परन्तु भूल मत करना।

इसके बाद भगवान् चुप हो गये। मैं बड़े हर्षके साथ उनकी ओर ताकता रहा उस समय जगत्में उनके सिवा मानो मुझे और कुछ नहीं भासता था। किसीकी स्फुरणा तक भी नहीं थी। अकस्मात् श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये। मेरी स्थिर दृष्टि विचलित हो गयी। मैं देखता हूँ कि पूर्व ओरकी खिड़कीसे श्रीरामेश्वरजी ताकके देख रहे हैं। मैंने सामनेकी कुर्सी अलग हटाकर किवाड़ खोल दिये। उस समय घड़ीमें करीब सवा दो बजे थे। इसके बाद करीब चालीस घंटेतक उपरामता बनी रही।

कार्तिक कृष्ण ७ सं० १९८४ को भाईजी पुनः जसीडीह श्रीसेठजीसे वार्तालाप करने गये। गोरखपुर आनेके बाद दूसरे ही दिन पुनः श्रीभगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन भाईजीको हुए। उस घटनाका भाईजीने श्रीगोयन्दकाजीको पत्र देकर वर्णन किया, उस पत्रकी नकल यहाँ दी जाती है—

तीसरी घटना श्रीहरिः

गोरखपुर, कार्तिक १४/१९८४ ई०

श्रीपूज्यचरणः, हृदयसे प्रणाम।

गत शुक्रवार (कार्तिक कृष्ण ११/८४) को मैं यहाँ पहुँच गया था। आपकी आज्ञानुसार प्रश्नोंका उत्तर जाननेकी भावना मनमें थी। कार्तिक कृष्ण १२/८४, शुक्रवारको प्रातःकाल करीब साढ़े पाँच बजे स्नान, सन्ध्याके उपरान्त मैं एकान्तमें बैठा था। बैठे-बैठे ही नींद या बेहोशी-

सी हो गयी। उसमें श्रीभगवान् दीख पड़ें। उन्होंने मानो इस भावके शब्द कहे—

(१) जिन सात विषयोंके प्रचारकी बात तुम लोगोंने तय की है, उनका प्रचार जितने अधिक देशों और अधिक लोगोंमें हो, वैसी चेष्टा करो। लोगोंको समझा दो कि इसके माननेसे ही कल्याण हो सकता है।

(२) धर्मग्रन्थोंमें दूसरा धर्म माननेवालोंके लिये किसी धर्मग्रन्थका नाम न लेकर गीतोक्त भक्तियुक्त निष्काम कर्मका भाव माननेके लिये कहो।

(३) एक बार जिसने मेरा नाम ले लिया, उसका भला होनेमें कोई शङ्का नहीं करनी चाहिये।

(४) मेरी प्रेरणाके अनुसार कितना प्रचार हुआ है और हो रहा है, उसका पता पीछे लगेगा।

(५) मेरे मिलनेकी इन बातोंको प्रकाश करनेसे हानि है। इतनी बातें सुननेके बाद मुझे चेत हो गया। ऊपर जो बातें लिखी हैं, शब्द तो कुछ दूसरे भी थे, पर भाव वही है।

इसके पश्चात् रविवारको प्रातःकाल श्रीरामनरसिंहजी और श्रीघनश्यामदासजी आ गये। इन लोगोंसे मेरे आनेके बाद जसीडीहमें जो बातें हुईं, उनकी चर्चा हुई। रविवार था, अतः दिनमें शहरमें जाना हुआ और वहाँ पर उन्हीं सात बातोंको उपस्थित स्त्री-पुरुषोंको समझाकर कुछ कहा गया। वहींपर श्रीरामनरसिंहजीने भी थोड़े शब्दोंमें बहुत भावकी बातें कही शहरमें ही प्रायः शाम हो गयी।

चौथी घटना

आज सोमवार, प्रातःकाल करीब साढ़े छः बजे ध्यानके

लिये (बीचवाले बड़े कमरेमें) बैठे थे। आपकी आज्ञानुसार एक बार भगवान्का स्मरण करनेका विचार एकान्तमें था, परन्तु न मालूम क्यों पहलेसे ही ऐसी प्रेरणा होने लगी थी—इसी समय स्मरण किया जाय। तदनुसार प्रश्नोंका उत्तर जानने और आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये श्रीभगवान्का स्मरण और आह्वान (गीता ४—७, ८) किया गया। थोड़ी ही देरमें भगवान् वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। लोगोंको ध्यानमें आज विशेष शान्ति मिली। श्रीहरिकृष्णदासजी और चेतरामजीके अच्छा ध्यान हुआ। श्रीदुजारीजी, जो ध्यानके लिये आपसे उस दिन प्रार्थना करते थे, आज ध्यानमें उनको बड़ा आनन्द रहा। उन्होंने कहा कि मुझे आज ऐसा ध्यान होनेकी आशा नहीं थी।

श्रीघनश्यामदासजीको आँख खोले हुए और मूँदे हुए प्रकाश अत्यधिक मालूम हुआ। उनकी आँखें डबडबा आयीं और उन्हें रोमाञ्च भी हुआ श्रीरामनरसिंहजीको जसीडीहकी भाँति ही आँख मूँदे और खुले हुए उनसे कहा गया कि प्रत्यक्षकेसे भावको छोड़कर प्रत्यक्ष मानो और चरणस्पर्श करनेकी चेष्टा करो। परन्तु उन्होंने कहा—मुझे तो मनकी दृढ़ कल्पना ही मालूम होती है। आँखें अधिक देर खुली नहीं रहती, आपसे आप मुँद जाती हैं, पीछे उनसे बात करने पर मालूम हुआ कि उस समय उनके समझनेमें कुछ भुल रह गयी थी। लोगोंके उठ जानेके बाद श्रीरामनरसिंहजी और श्रीदुजारीजी बहुत देर तक ध्यानमें बैठे रहे।

भगवान्से जिन चार बातोंके पूछनेकी मनमें भावना हुई थी, वे इस प्रकार है—

(१) आपका स्वरूप ही श्रीजयदयालजीका स्वरूप है, इसमें क्या भाव है ?

(२) बीस वर्ष पूर्व प्रेरणा करनेपर भी सन्तोषजनक कार्य क्यों नहीं हुआ ?

(३) नामका प्रचार किस तरह किया जाय ? क्या सन्यास लेनेसे अधिक प्रचार हो सकता है ?

(४) किस नामका प्रचार किया जाय ?

इन प्रश्नोंका उत्तर निम्नलिखित मिला—

(१) इस सम्बन्धमें जयदयालजीसे ही पूछो, वही बता सकता है।

(२) कल कहा ही था—कार्यका पता पीछे लगेगा। डाले हुए बीजोंका विस्तार फल लगनेपर मालूम होगा। असन्तोष मत करो, कार्य करो।

(३) कलके कहे अनुसार जितना अधिक लोगोंमें प्रचार कर सको, उतना करो। स्थान-स्थानपर कीर्तन होना बहुत अच्छा है। सन्यासकी अभी आवश्यकता नहीं, आगे चलकर विशेष लाभ हो सकता है।

(४) कोई खास नाम नहीं है, मेरे भावसे कोई-सा भी नाम मनुष्य ले सकता है।

इसके बाद घनश्यामदासजीके सम्बन्धमें तो मेरे मनमें कोई भावना नहीं हुई। रामनरसिंहजीके सम्वन्धमें भी मेरे मनमें कोई प्रार्थना करनेकी भावना तो नहीं हुई। केवल आपके प्रेरणानुसार साधारण भावना मनमें हुई, जिसका उत्तर तुरन्त यह मिला कि इसके दृढ़ निश्चय होनेसे हो सकता है।

इसके बाद इतना और कहा कि कलके संकेतसे प्रश्नका उत्तर दे दिया गया था। आज फिर स्मरण किया, इसलिये आना हुआ। परन्तु मुझे बुलानेके भावसे ऐसे स्मरण नहीं करना चाहिये। यह नीचा भाव है। उस दिनका संकेत तूं समझा नहीं। उचित समझनेपर हम स्वयं आ सकते हैं। इन सब बातोंका प्रकाश करनेमें हानि है। इतना कहते ही भगवान् अन्तर्धान हो गये। कोई आध घंटेतक दर्शन होते रहे। यही आजकी घटना है।

पहले प्रश्नकी प्रेरणा और उसका उत्तर दोनों ही अद्भुत है। इस सम्बन्धमें मेरे विश्वासके अनुसार जो बात मेरी समझमें आयी, उसका खुलासा कभी रूबरू मिलनेपर हो सकता है। इस समय आपसे कुछ पूछनेका मेरा आग्रह नहीं है। एक बार तो इस घटनाको लेकर स्वयं आपकी सेवामें उपस्थित होनेका विचार हुआ था, परन्तु पीछेसे यही ठीक समझा कि रजिस्ट्री चिट्ठीके द्वारा ही यह विषय लिख-कर भेज दिया जाय। भगवान्की प्रेरणा और आपकी इच्छाके अनुसार इस विषयको आप जितना गुप्त रखना या प्रकाशित करना ठीक समझें, वैसा कर सकते हैं। मेरी समझसे तो अभी इसका प्रकाश न होना ही भगवान्की प्रेरणा है।

सात बातोंके सम्बन्धमें मेरे ऐसी स्फुरणा हुई कि इनके सम्बन्धमें तीन-चार पृष्ठका एक लेख लिखा जाय, जिनमें इन सात बातोंका खुलासा हो और उस लेखका बंगला, मराठी, गुरुमुखी, गुजराती, तामिल, उर्दू और अंग्रेजी आदि भाषाओंमें अनुवाद करवाके लाखोंकी संख्यामें ट्रेक्ट (पैंमफ्लेट) छपाये जायँ और वे बहुत कम मूल्य या बिना मूल्य भारतके

प्रायः सभी प्रान्तोंमें और इङ्गलैंड, अमेरिका आदि देशोंमे भी प्रचारित किया जाय।

भारतके और विलायतके प्रायः बहुत-सी भाषाओंके पत्रोंमें भी प्रकाशित करवानेकी चेष्टा की जाय तो बहुत लोगोंके पास इस सन्देशके पहुँचनेमें सुगमता हो सकती है।

सम्भवतः इस काममें आरम्भमें दो हजार रुपये अन्दाजा खर्च हो सकते हैं, जो मेरी समझमें खर्च करने उचित है। इस सम्बन्धमें आपकी जो आज्ञा हो सो लिखनो चाहिये। आपकी आज्ञानुसार कार्य आरम्भ करनेका विचार है और कोई बात इस सम्बन्धमें जचे सो लिखनी चाहिये।

स्वास्थ्यके सम्बन्धमें और यहाँ आनेके सम्बन्धमें जैसा जचै सो लिखना चाहिये।

अनुगत

हनुमान,

इसके बाद भाईजीने भगवद्दर्शनोंकी घटनायें नोट करनी बन्द कर दी। गिनतीकी घटनायें हो तो नोट भी की जाय, जब जीवनकी यह स्वाभाविक बात हो गयी तो कहाँ तक नोट की जाय।

श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीके आने पर भाईजी उन्हें एकान्त कोठरीमें ले गये एवं जसीडीह की घटना बड़े प्रेम भरे शब्दोंमें सुनायी। वे मन्त्र मुग्ध की तरह सुनते रहे एवं मनमें सोचने लगे कि इस कृपाका कोई मूल्य तो हो ही नहीं सकता, अब तो अपनेको इनके श्रीचरणों पर न्यौछावर कर देना और अपने जीवनका उद्देश्य इनके जीवनकी घटनाओं-को नोट करते रहना। इसे इन्होंने जीवनके अन्त तक

निभाया। भाईजी की इच्छा न होते हुए भी इनकी अत्यधिक आग्रह पूर्ण प्रार्थना करते रहने पर कभी-कभी कुछ बता देते थे।

भाईजीकी उन दिनोंकी मस्तीका क्या कहा जाय? बार-बार भगवान्‌के दर्शन, स्पर्श, वार्तालापका सुदुर्लभ सौभाग्य मिल रहा था। उन दिनों उनके समीप रहने वालों-को दिव्यताका अनुभव होता था। इन्हीं दिनों भाईजीको भगवान्‌ने यह प्रेरणाकी कि अपना बाहरी जीवन बिलकुल साधारण रखो, जिससे कोई पहचान न सके। इसे भाईजीने जीवनके अन्त तक निभाया, जिससे इनके निकट रहने वाले भी पहचान नहीं सके।

धर्म-पत्नीको भी भगवान्‌के दर्शन

भाईजीकी धर्मपत्नी देवी रामदेई जब रतनगढ़से गोरखपुर पहुँची तो उन्होंने भी भाईजीको भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शनोंकी सारी बातें सुनी। वे सोचती भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंके बाद तो वह व्यक्ति संसारको भूल जाता है, उसे भगवान्‌के अलावा किसीसे कुछ मतलब नहीं रहता, अतः अब मेरे जीवनका क्या होगा। कभी-कभी उन्हें सूना-पना-सा लगता और आँखोंमें आँसू आ जाते। एक दिन उन्हें रोते देखकर भाईजीने पूछा—"तुम रोती क्यों हो? क्या बात हुई?" उत्तर दिया—"रोऊँ नहीं तो क्या हँसूँ? आपको भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हो गये, पर मेरा संसार तो समाप्त हो गया।" भाईजीने मुसकराते हुए कहा—"अरी, मैं तो तेरे लिये वही हूँ, जैसा पहले था।" इतना कहकर भाईजीने उनके सिरपर अपना हाथ रख दिया। उसी समय

एक विलक्षण चमत्कार हुआ कि उन्हें भी चतुर्भुज भगवान् विष्णुके दर्शन होने लगे । इतना ही नहीं लगातार कई महीनेतक यह क्रम चालू रहा कि चलते-फिरते, घरका काम करते उन्हें उसी रूपके दर्शन होते रहते । बादमें बन्द हो गये ।

इसी तरह एक बार वे भाईजीके साथ काशी गयी थी । स्नानादिके बाद भाईजी तो 'कल्याण' के प्रूफ देखने लग गये । उन्होंने भाईजीसे कहा कि बाबा विश्वनाथ और मैया अन्नपूर्णाके दर्शन करा दीजिये । भाईजीने उत्तर दिया कि मुझे अभी जरूरी प्रूफ देखने हैं, अतः मैं तो कहीं नहीं जाऊँगा । कई बार कहनेपर भी जब भाईजीने स्वीकार नहीं किया तो वे उदास होकर कमरेमें चली गयी । मनमें कहने लगी कि यहाँ आकर भी दर्शन नहीं कर सकी । इतनेमें बाबा विश्वनाथ और मैया अन्नपूर्णा उनके सामने साक्षात् प्रकट हो गये और बोले तुम उदास क्यों हो रही हो । तुम हमारे दर्शन तो करना चाहती थी, अब कर लो । इस तरह दर्शन देकर थोड़ी देर बाद अन्तर्धान हो गये ।

सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका श्रीघनश्याम-दासजी बिड़लाको पत्र

जसीडीहमें साक्षात् दर्शनों वाली बातको लेकर स्थान-स्थान पर समाजमें चर्चा थी । लोग अपने-अपने भावानुसार आलोचना करते । भारतवर्षके प्रमुख उद्योगपति श्रीघनश्याम दासजी बिड़ला भाईजीके बचपनसे मित्र थे । उन्होंने यह घटना सुनी तो सेठजीको पत्र लिखा कि ऐसी दिव्य बातोंका इस तरह प्रचार नहीं होना चाहिये । वे ऐसी बातें गुप्त

रखना अच्छा समझते थे। श्रीसेठजीने उन्हें जो उत्तर दिया वह नीचे दिया जा रहा है—

श्रीहरिः

प्रिय श्रीमान् घनश्यामदासजी बिड़ला,

सप्रेम राम-राम। भाई हनुमानप्रसादके भगवत्दर्शन विषयक समाचार ज्ञात हुए। उसको साकार चतुर्भुज श्रीविष्णु भगवान्‌के स्वरूपका दर्शन हुआ है। यह बात विश्वास करने योग्य ही है क्योंकि मुझे भाई हनुमानप्रसाद झूठ बोलनेवाला ज्ञात नहीं होता। आपने भाई हनुमानप्रसादकी स्थितिके विषयमें लिखा सो सबकी स्थिति सब समय समान नहीं रहती, और न किसी-की स्थितिका दूसरेको अच्छी तरह ज्ञान ही हो सकता है। इस विषयमें आपका मानना न मानना आपके विश्वासपर निर्भर है। आपने लिखा कि "ऐसी बातोंके कहने तथा फैलानेमें प्रोत्साहन देना मुझे तो अयोग्य मालूम देता है।" सो ठीक है, पर इसमें भाई हनुमानप्रसादका दोष नहीं है। मैंने ही उसकी इच्छा न रहनेपर भी सब बातें पूछी थीं और लोगोंमें प्रकटकी थीं। अतः वास्तवमें मेरी भूल हुई।

गीताप्रेस, गोरखपुर — विनीत

पौष शुक्ल। १९८४ — जयदेव गोयन्दका

श्रीभगवन्नाम-प्रचार

भगवान्‌के आदेशानुसार भाईजी श्रीभगवन्नाम-प्रचारमें पूर्ण मनोयोगसे लग गये। निवास-स्थानपर नित्यप्रति संकीर्तन होने लगा। नित्य तो संकीर्तन रात्रिमें ११-१२ बजे

तक समाप्त होता पर दीपावली कार्तिक कृष्ण ३० सं० १९८४ को रात्रिके पौने दो बज़ेतक भाईजी मस्तोंसे संकीर्तन कराते रहे। अंतमें बोले—"भगवान्‌के नामका कीर्तन करानेसे अनन्त लाभ होता है। कीर्तनकी ध्वनि जहाँ तक जाती है, वहाँ तकके सभी जीव-जन्तु पवित्र हो जाते हैं। वास्तवमें कीर्तनकी महिमा अनिर्वचनीय है।"

कई बार भाईजी खड़े होकर प्रेमनृत्यके साथ कीर्तन कराते। मार्गशीर्ष कृष्ण १० सं० १९८४ को श्रीसेठजीकी अनुमतिसे भाईजी अन्य १५ प्रेमीजनोंके साथ कलकत्ता होते हुए आसाममें भगवन्नाम-प्रचारके लिये रवाना हुए। हवड़ा स्टेशनपर सैकड़ों प्रेमीजन भाईजीके दर्शनोंके लिये लालायित हो रहे थे। स्टेशनसे ही उमङ्ग पूर्वक कीर्तन करते हुए पैदल ही भाईजीके साथ सब लोग जुलूसकी तरह बाँसतल्ला गलीमें श्रीगोविन्दभवन पहुँचे। गोविन्दभवन ठसाठस भरा हुआ था, वहाँ भाईजीका चित्ताकर्षक भाषण हुआ। भाषणके बाद कई प्रेमीजनोंने भाईजीसे भगवान्‌का दर्शन करानेकी प्रार्थना की। बहुत आग्रह करनेपर भाईजीने जोशीले शब्दोंमें कहा कि जो सच्चे हृदयसे भगवान्‌के दर्शन करना चाहता हो वह खड़ा हो जाय। यह अमोघ वाक्य न जाने किस भगवत्प्रेरणासे निकला। उस समय सब लोग बैठे थे, केवल श्रीडूँगरमलजी लोहिया खड़े थे। वे भी तुरन्त बैठ गये। कोई भी खड़ा नहीं हुआ। इसी प्रकार कई स्थलोंपर इस तरहकी घटनायें भाईजीके जीवनमें हुई।

विस्तारभयसे इस यात्राका विशद वर्णन तो यहाँ संभव नहीं है। पर भाईजीने कलकत्ता, नलबाड़ी, गोहाटी, शिलंग,

तिनसुकिया, डिबरूगढ़, नौगाँव, भागलपुर आदि स्थानोंकी यात्रा बहुत ही उमङ्गसे सम्पन्न की और उनके भगवन्नामके प्रचारको देखकर लोगोंको ४०० वर्ष पूर्व श्रीचैतन्यके भगवन्नाम-प्रचारकी पुनरावृत्ति प्रतीत होने लगी। गीता-जयन्ती वाले दिन कलकत्तामें विशाल जुलूस निकला। कलकत्तेकी सड़कोंपर नृत्य करते हुए कीर्तन करनेका भाईजी-का यह पहला और अन्तिम अवसर था। कलकत्तेमें भाईजीकी भेंट 'स्वतन्त्र' के सम्पादक पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी और 'भारतमित्र' के सम्पादक श्रीलक्ष्मणनारायण गर्देसे हुई। यात्रामें 'कल्याण' सम्पादनका कार्य भी चालू रहा। यात्रामें साथ चलने वालोंके लिये नियम बनाये गये थे, जिनका पालन सभी उत्साहसे करते थे।

गोरखपुर लौटनेके लगभग १५ दिनों बाद ही भगवन्नाम-प्रचारकी दूसरी यात्राका श्रीगणेश करते हुए पौष शुक्ल ८ सं० १९८४ को बम्बईके लिये प्रस्थान किया। वहाँ भाईजी नेमाणीजीकी वाड़ीमें ठहरे और 'सत्सङ्ग-भवन' में सत्सङ्गका आयोजन हुआ। बम्बईके प्रेमी इनकी प्रतिक्षा बड़े चावसे कर रहे थे। घर-घर घूमकर भी जपके लिये प्रार्थना की। दादी सेठ अग्यारी लनमें ४०० माला 'हरे राम' मन्त्रकी नित्य जपनेका वचन मिला। अपने स्नेही श्रीयादवजी महाराज एवं रामानुज पीठाचार्य श्रीअनन्ताचार्य-जीसे भी भाईजी मिले। सम्पादकीय विभाग साथ होनेसे 'कल्याण' के काममें कोई व्यवधान नहीं पड़ा।

बम्बईसे माघ कृष्ण २ सं० १९८४ को भाईजी अहमदाबाद पहुँचे। वहाँ भाईजी श्रीजमनालालजी बजाजकी

पत्नी, काका कालेलकर, महादेवभाई देसाई एवं मीरा बहिन (अमेरिकन महिला मिस स्लेड) से मिले। शामको गाँधीजीकी प्रार्थना सभामें साबरमती आश्रममें सम्मिलित हुए और वहीं गाँधीजीसे एकान्तमें रात्रि ९ बजेतक वार्तालाप किया। भगवन्नाम-प्रचारमें साथ रहनेवालोंके नियम सुनकर गाँधीजी बहुत प्रसन्न हुए और इस प्रचार-कार्यकी बहुत प्रसंशा की। भाईजीने 'कल्याण'के लिये लेख लिखनेकी प्रार्थना गाँधीजीसे की, जिसे उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। अहमदाबादसे भाईजी बोराबड़ (जोधपुर) गये। वहाँ चैतन्य-सम्प्रदायके महंत मुकुन्ददासजीने हार्दिक स्वागत किया और इसी गाँवसे होलीके जप-यज्ञमें ३।। करोड़ 'हरे राम' के मन्त्र जपकी संख्या लिखवायी। वहाँसे एक दिन मूँडवा होते हुए माघ कृष्ण ६ सं० १९८४ को प्रातः बीकानेर पहुँचे। स्टेशनपर भाईजीका भव्य स्वागत हुआ। दूसरे दिन नगर-संकीर्तनका आयोजन हुआ। चार दिनोंके प्रवासकालमें शहरमें भगवन्नामकी धूम मच गयी। इसी यात्रामें पं० चिम्मनलालजी गोस्वामी भाईजीसे पहली बार मिले और आकर्षित भी हुए।

बीकानेरसे भाईजी रतनगढ़, सरदारशहर, छापर, साँडवा, बीदासर, सुजानगढ़, लोसल, मौलासर, डीडवाना, चुरू, भिवानी, रोहतकमें भगवन्नाम-प्रचारकी धूम आदि मचाते हुए दिल्ली पहुँचे। वहाँसे खुर्जा गये, जहाँ श्रीहरिबाबजी बहुत दूर पैदल चलकर स्टेशनपर मिलने आये। वहाँसे फ़िरोजाबाद, कानपुर, लखनऊ आदि स्थानोंमें भगवन्नामकी मंदाकिनी बहाते हुए फाल्गुन कृष्ण १ सं० १९८४ को

गोरखपुर लौट आये।

इसी बीच एक दिन भाईजीने एकांतमें दुजारीजीको बताया कि कार्तिक शुक्ल ७/सं० १९८४ को श्रीसेठजीके प्रश्न करनेके बाद दो दिन तक बड़ी विलक्षण स्थिति रही फिर मार्गशीर्ष कृष्ण १ को मैदानमें कीर्तनके समय और भी विचित्र स्थिति हो गयी। उसके दो दिन बाद प्रातःकाल जब सबके सामने मानसिक पूजा करा रहा था, तब मैं अपनेको सम्भाल नहीं सका। जो बातें गुप्त रखनेकी है, वे बतायी नहीं जा सकती।

कीर्तनका प्रभाव

जहाँ भाव होता है, वहाँ तो संत द्वारा कीर्तनका प्रभाव तत्काल होता है, पर जहाँ भाव नहीं भी होता वहाँ भी उसका प्रभाव देखनेमें आता है। ऐसी ही एक घटना जब भाईजी चैतन्य महाप्रभुकी तरह नाम-प्रचारके लिये स्थान-स्थानपर घूमे थे उस समयकी है।

श्रीरवीन्द्रजी (सम्पादक 'पुरोधा' एवं 'अग्निशिखा' पाण्डिचेरी) बचपनमें आर्य समाजी थे। उन दिनों वे कीर्तनको एक मात्र तमाशा मानते थे। एक बार उन्होंने सुना कि श्रीभाईजी अपनी टोलीके साथ कीर्तन करते हैं। लड़कपनवश श्रीरवींद्रजीकी इच्छा भी भाईजीको कीर्तन करते हुए देखनेकी हुई। वे तो एकमात्र तमासा देखनेकी इच्छासे ही उनकी टोलीको देखने गये थे। परन्तु कीर्तन सुनकर एवं भाईजीकी भाव-मुद्रा देखकर उनके शरीरमें रोमाञ्च हो उठा। उस कीर्तनका एवं भाईजीकी भाव-मुद्राका ऐसा विलक्षण प्रभाव उनके मानस पटलपर पड़ा कि वे

स्वयं एक जगह लिखते हैं, "आज पैंतिस-चालिस वर्ष बाद भी भाईजीकी मुद्राको भुलाया नहीं जा सकता। कीर्तन क्या था, अमृत वर्षा थी।"

मित्रता निभानेका एक और अनुपम उदाहरण

श्रीहरिराम शर्माकी एक घटना आप पहले पढ़ चुके हैं। ये रतनगढ़ निवासी थे और बम्बईमें भाईजीके मित्र बन गये थे। भाईजीने इनके प्रति अनेकों बार ऐसे-ऐसे उपकार किये थे, इस प्रकारके सङ्कटोंसे निवारण किया था कि जिसका बदला वे प्राण-न्यौछावर करके भी नहीं चुका सकते थे। भाईजीकी कृपा पूर्ण उदारता ही उनकी अजीविका-का एक बड़ा अवलम्बन था। परन्तु सङ्गके असरकी बलिहारी है। रतनगढ़ जाकर वे कुसङ्गमें पड़ गये। फाल्गुन सं० १९८५ में मरणासन्न बिमार हो गये और लोगोंके बहकावेमें आकर कई व्यक्तियोंके सामने भाईजीसे दो हजार रुपये हिसाबमें लेने बाकी बताये और भाईजीको पत्र भी लिखा। इसके बाद उनकी मृत्यु हो गयी। भाईजी सबके सामने सत्य कहते तो सब भाईजीका विश्वास करते थे, अतः हरिराम पर कलङ्कका टीका लग जाता। भाईजी नहीं चाहते थे कि उनके मित्रको कोई झूठा समझे। रुपयोंकी छूट उस समय भाईजीके पास थी नहीं, अतः अपनी रतन-गढ़की पैतृक सम्पत्ति बेचकर दो हजार रुपये उसके घरवालों-को देनेका तय किया। यह बात भाईजीके परम मित्र श्री-रामकृष्णजी डालमियाको मालूम हुई। उन्होंने तुरन्त पत्र लिखा कि हरिरामको झूठे हिसाबके रुपये देना एक प्रकारका अन्याय है और आपको अपनी सम्पत्ति कदापि

नहीं बेचनी चाहिये। यह तो आपकी उदारताका सर्वथा दुरुपयोग है। पर भाईजीने बड़ा नम्र उत्तर दिया कि भैया आज हरिराम संसारमें नहीं है, मैंने उसे अपना मित्र माना था। अब मैं सत्य कह दूँगा तो सब लोग उसपर कलङ्क लगायेंगे कि जिसने आजीवन हरीरामका पालन किया उसीके साथ हरीरामने मरते समय असत्य आरोप लगाया। यदि मैं एक ब्राह्मणकी तुच्छ सेवा कर दूँगा तो मेरी क्या हानि होगी। लोग मेरी बदनामी ही तो करेंगे सो वह तो मेरी प्रिय वस्तु है। मित्रके कलङ्कको अपनेपर लेनेमें मुझे सुख मिलेगा। मैंने तो ये रुपये देनेका निश्चय कर लिया है।

इस तरह रुपये देनेका उदाहरण शायद खोजनेपर भी न मिले।

साधन-समितिकी स्थापना

उन दिनों भाईजी प्रतिदिन प्रातःकाल सत्सङ्ग कराया करते थे। वैसाख शुक्ल ४ सं० १९८४ को भाईजीने ७-८ प्रेमीजनोंके सामने कहा कि साधकोंको साधन करनेके लिये कुछ नियम बनाकर उनका पालन करना अत्यावश्यक है। बिना साधनके शान्ति नहीं मिलती। अतः आपलोग तैयार हों तो एक साधन-समिति बनाकर उसके सदस्योंके लिये कुछ नियम बनाये जायँ। नियमोंका पालन आदरपूर्वक कड़ाईके साथ किया जाय। जिससे मानव-जीवनके लक्ष्यकी प्राप्ति शीघ्र हो। सब लोग सहर्ष राजी हो गये। परामर्शके बाद १५ नियम और १२ उपनियम बनाये गये। सब यहाँ लिखनेसे विस्तार हो जायगा पर नियम कठोर थे।

सब लोगोंमें उत्साह होनेसे पालन करनेमें कठिनायोंका अनुभव नहीं होता था। भाईजी स्वयं भी पालन करते और लगभग २० सदस्य थे। वे भी पालन करते। एक दिन बहुतसे सदस्य आधा मिनट कमेटीमें देरीसे पहुँचे उसके प्रायश्चितके लिये सबने एक दिनका उपवास किया। नियमों-को उत्साहसे पालन करनेके फलस्वरूप श्रीशुकदेवजी एवं श्रीगङ्गा बाबूको कुछ महीनों पश्चात् विलक्षण अनुभव हुए। ये दोनों ही नियमोंका पालन करने सबसे आगे थे।

पुत्रीका जन्म

बम्बईमें सं० १९७७ के श्रावणमासमें श्रीमती रामदेईको प्रथम पुत्रकी प्राप्ति हुई थी पर लगभग १८-१९ मासके पश्चातही वह भगवान्के धाममें पहुँच गया। भगवान्को भाईजी-को अभी गृहस्थाश्रममें रख कर ही अपना कार्य कराना था। अतः मार्गशीर्ष कृष्ण ६ सं० १९८६ को प्रातः ब्राह्ममूहुर्तमें कन्याका जन्म हुआ, जिसका नाम सावित्री रखा गया। भाईजी जिस स्थितिमें थे, उनकी सन्तानमें विशेषता होना स्वाभाविक ही था।

प्रयाग कुम्भके गीता-ज्ञान-यज्ञमें

कुंभके समय तीर्थराज प्रयागमें लाखों लोग दूर-दूरसे एकत्रित होते हैं। भगवन्नाम-प्रचारका बहुत सुन्दर अवसर देखकर वहाँ 'गीत-ज्ञान-यज्ञ' का आयोजन श्रीसेठजीके परामर्श-से किया गया। वे स्वयं भी पधारे एवं भाईजी भी पौष शुक्ल १३ सं० १९८६ को वहाँ पहुँचे। इसका शुभारम्भ श्रीमदनमोहन मालवीयके करकमलों द्वारा हुआ। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पं० विष्णुदिगम्बरजीभी पधारे थे, इनके द्वारा रात्रिके

समय सुमधुर कीर्तन होता। प्रातःकाल श्रीमद्भागवतकी कथा काशीके विद्वान् श्रीमदनमोहनजी शास्त्री करते एवं दिनमें श्रीसेठजीका भाषण होता। भाईजीके भी ओजस्वी प्रवचन होते ही रहते थे। गीता प्रदर्शनीका भी आयोजन किया गया था। पं० जवाहरलाल नेहरूकी माता श्रीमती स्वरूपरानी नियमित रूपसे सम्मिलित होती थी। एक महीनेतक यह आयोजन सफलतापूर्वक चलता रहा।

हिंदी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन गोरखपुरमें

फाल्गुन शुक्ल १ सं० १९८६ से अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन गोरखपुरमें प्रारम्भ हुआ। भाईजीके मित्र एवं प्रेमी विद्वान् उनके साथ ही टूटे-फूटे खपड़ैलके मकानमें गोरखनाथ मन्दिरके पास ठहरे। इनमें मुख्य थे—श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीनरोत्तमजी एवं ठाकुर शिवमूर्तिसिंह आदि। भाईजीने उनकी सेवाका भार श्रीरामजीदास बाजोरियाको दिया, जिन्होंने अपनी सेवा, आतिथ्य सत्कारसे सबको आप्यायित कर दिया। श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी तो इनकी सेवासे इतने उल्लासित हुए कि बादमें उन्होंने भाईजीको लिखा कि यदि कोई सेवाका कालेज खुले तो उसका प्रिंसिपल श्रीरामजीदास बाजोरियाको नियुक्त किया जाय।

उपराम वृत्तिकी प्रबलता

बम्बई छोड़कर भाईजी गोरखपुर आये थे इस आशापर कि कुछ महीने 'कल्याण'की व्यवस्था ठीक करके फिर गङ्गातटपर एकान्त सेवन करना है। पर भगवान्को जगत्के सामने एक नया आदर्श रखना था कि सेवा कार्योंमें पूर्ण

व्यस्त रहते हुए भी पूर्णरूपेण लीलामें कैसे अवस्थित रहा जा सकता है। 'कल्याण' और गीताप्रेसका कार्य दिन दूना-रात चौगुना बढ़ रहा था और इसके साथ ही बढ़ रही थी भाईजीकी व्यस्तता भी। चारों ओरकी परिस्थितियोंके दबावके कारण भाईजीको एक मिनटके लिये भी अवकाश नहीं था। सब होते हुए भी भाईजीकी आन्तरिक एकान्त सेवनकी इच्छा ज्यों-कि-त्यों बनी हुई थी। 'भक्ताङ्क' विशेषाङ्कका कार्य पूरा करके गङ्गातटपर जानेका भाईजीने मनमें विचार कर लिया और श्रीसेठजीसे अनुमति लेने बाँकुड़ा गये। उनको अपने मनकी सारी स्थिति समझाकर 'कल्याण' एवं गीताप्रेसका कार्य किसी दूसरेको सँभालनेकी आग्रहपूर्वक अनुमति माँगी, परन्तु श्रीसेठजीने बहुत प्रेमपूर्वक समझा दिया कि यह कार्य भगवान्का अपना कार्य है, इससे जगत्को बड़ा लाभ होगा। अभीतक तुम्हारे जैसा दूसरा व्यक्ति तैयार नहीं हुआ है, अतः अभी तुम्हें इससे उपराम नहीं होना चाहिये। भाईजीने अपनी इच्छाको दबाकर उनकी बातका आदर किया। पर यह उत्कंठा तो तीव्र होती गयी, अतः श्रीसेठजीको पुनः पत्र लिखा जिसका उत्तर श्रीसेठजीने पौष शुक्ल ४ सं० १९८६ को बाँकुड़ासे लिखा.................."तुमने लिखा—मेरे द्वारा अधिक दिन काम होना कठिन-सा है सो भगवान्की इच्छा और उनकी आज्ञा होनेसे कुछ भी कठिन नहीं है। तुमने लिखा कई दिनसे मन उपराम रहता है सो ठीक है।" 'कल्याण' या 'रामायणांक' बंद करनेसे क्या लाभ है ?............तुम्हारे जानेके विषयमें मैं क्या लिखूं ? मुझे तो 'प्रेस' और 'कल्याण'-

से संसारमें बहुत लाभ दीख रहा है। मेरी बुद्धिके अनुसार तो तुम्हें गोरखपुरमें ही एकान्तमें रहकर काम देखना चाहिए ।............यदि मेरा और तुम्हारा प्रयाग जाना हो जाय तो वहाँ पर एकान्तमें सब बातें की जा सकती हैं।

प्रयागमें जब दोनों मिले तो सारी व्यवस्था ठीक करके माघ कृष्ण ३० सं० १९८६ को जब श्रीसेठजी बाँकुड़ा जानेवाले थे तो भाईजीने एकान्तमें बातें करके अपनी हार्दिक लालसा उनके सामने रखी। श्रीसेठजीने बहुत प्रेमसे कहा कि मेरे तो गोरखपुरके महान् कार्यको छोड़कर कहीं जानेकी बिलकुल नहीं जँचती है, तुम्हारा इतना आग्रह है तो तुम्हारी प्रबल इच्छाको रोकना उचित न समझ कर कुछ दिनोंके लिए तुम्हें छुट्टी दी जा सकती है। पर 'रामयणांक'के सम्पादनकी जिम्मेदारी तुम्हारी है, तुम चाहे जहाँ रहकर कर सकते हो।

भाईजी और श्रीसेठजीका ऐसा प्रेमका सम्बन्ध था कि न जाने यह कितनों जन्मोंसे चला आ रहा था। इसका पूरा ज्ञान तो उसीको हो सकता है, जिसे सारे पूर्व जन्मोंका पता हो। क्योंकि भाईजीने ऐसे रहस्योंको खोला नहीं, परन्तु एक विश्वस्त सूत्रसे इतना पता लगा कि पहलेके एक जन्ममें श्रीसेठजी पिता थे और भाईजी उनके पुत्र। भाईजी उनकी बातका पूरा आदर करते थे और एकान्त सेवनकी बात टल जाती।

श्रीसेठजीको इन्होंने फिर पत्र लिखा कि मेरा शीघ्र ही चित्रकूट जानेका मन हैं श्रीसेठजीका फाल्गुन कृष्ण १ सं० १९८६ का लिखा पत्र मिला जिसमें लिखा था —

"फाल्गुन शुक्लमें तुम्हारा चित्रकूट जानेका मन लिखा तथा मेरेसे सलाह पूछी सो 'प्रेस'का काम देखनेके लिये तुमको गोरखपुर रखनेका विचार नहीं है। प्रयागमें अपने एकान्तमें पूरी बातें नहीं हो सकीं।............विशेष हर्ज न हो तो होली बाद (चित्रकूट) जा सकते हो। फाल्गुन सुदीमें ऋषिकेश जाते समय तुमसे पुनः इस सम्बन्धमें निश्चय करने का विचार है।"

इसी तरह भाईजी आग्रह करते रहे और श्रीसेठजी उसे स्थगित करते गये। इस तरहका पत्राचार और मिलने पर आग्रह वर्षों तक चलता ही रहा। अत्यधिक आग्रह होने पर कुछ दिन एकान्त सेवन के लिए कहीं चले जाते पर भगवान्को इनके माध्यमसे जो लीला करानी थी, उसके लिए फिर प्रपंचमें इन्हें ले आते।

व्रज-भ्रमण

'श्रीकृष्णांक'की तैयारी करनेके उद्देश्यसे भाईजी अपने परिवार एवं बारह परिकरोंके साथ चैत्र शुक्ल ६ सं० १९८८ को व्रजयात्राके लिये रवाना होकर अलीगढ़में संकीर्तनमें सम्मिलित होते हुए वृन्दाबन पहुँचे। वहाँ तीन दिन निवास करके प्रधान-प्रधान मन्दिरोंके दर्शन किये और फोटो लेनेकी व्यवस्था की। प्रमुख संतोंके दर्शन, वार्तालाप किया। फिर मथुरा आये एवं 'श्रीकृष्णाङ्क' के लिये सामग्री संग्रह करनेकी व्यवस्था की। इसके साथ ही श्रीनन्दगाँव, बरसाना, राधाकुण्ड, कुसुम-सरोवर, गोवर्द्धन आदि सभी प्रमुख स्थलों-का भ्रमण किया।

लौटते समय काजिमाबादमें 'गीता-ज्ञान-यज्ञ'में सम्मिलित

हुए और श्रीहरिबाबा, श्रीभोलेबाबा, श्रीअच्युत मुनिजी आदि संतोंसे मिले। सत्सङ्गमें भाईजीने नाम-महिमाके सम्बन्धमें विशेष प्रवचन दिया एवं अपने अनुभव भी बताये।

वैशाख शुक्ल ५/८८ को भाईजी ऋषिकेश पहुँचे और ३-४ दिन वहाँ सत्सङ्गकी मंदाकिनीमें बाढ़ आ गयी। वहाँसे श्रीउड़िया बाबासे मिलने काजिमाबाद पहुँचे। इस तरह भ्रमण करते हुए ज्येष्ठ ५/८८ को गोरखपुर पहुँचकर 'श्रीकृष्णाङ्क'के सम्पादनमें व्यस्त हो गये।

स्वामी विशुद्धानन्दजीसे भेंट

स्वामी विशुद्धानन्दजीकी उन दिनों बड़ी प्रसिद्धि थी। वे उन दिनों बनारसमें रहते थे। भाईजी भी उनसे मिलनेके लिये चैत्र कृष्ण १ सं० १९८८ को काशी गये। वे चमत्कार दिखानेके बहुत लिये प्रसिद्ध थे। सत्सङ्गके बाद भाईजीका परिचय हुआ। उन्होंने भाईजीसे कहा कुछ कहिये। भाईजीने अन्य कोई चमत्कार दिखानेके लिये न कहकर भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य अङ्ग सुगन्धकी अनुभूति और उनके दर्शन करानेके लिये कहा। यह सुनकर 'गंधी बाबा' (वे इसी नामसे प्रसिद्ध थे) हँसे। थोड़ी देरमें कमरा दिव्य-सुगन्धसे भर गया। उपस्थित श्रद्धालुओंने ऐसी दिव्य-सुगन्धका अनुभव कभी नहीं किया था। फिर भाईजीको बोले—मेरे नेत्रोंकी ओर देखो। भाईजीको उनके नेत्रोंमें श्रीकृष्णके दर्शन होने लगे। थोड़ी देर बाद वे बोले 'अब इस खेलको बन्द कर दूँ।' भाईजीने हाथ जोड़े और कहा जैसे आप ठीक समझें। कुछ ही देरमें नेत्रोंमें श्रीकृष्णके दर्शन भी बन्द हो गये एवं कमरेको दिव्य सुगन्ध भी समाप्त

हो गयी ।

श्रीदेवदास गाँधीकी देख-भाल

सं० १६८८ में महात्मा गाँधीके पुत्र श्रीदेवदास गोरखपुर जेलमें बन्दी थे। जेलमें उन्हें टायफायड़ बुखार हो गया। गाँधीजी उस समय यरवदा जेलमें बन्द थे। उनको समाचार मिला। वे जानते थे कि जेलमें बीमारकी देखभाल कैसे होती है। अतः उन्होंने भाईजीको लिखा कि देवदास गोरखपुर जेलमें बीमार है, उसकी देखभालका आप ध्यान रखें। भाईजीको भी वे अपने पुत्रकी तरह मानते थे। भाईजीने उस अवसरपर पूरी सँभाल की। यद्यपि उस समय ऐसा करनेमें अंग्रेजी सरकारके कुपित होनेकी पूरी सम्भावना थी और कई स्वजनोंने भाईजीको सचेत भी किया पर भाईजी बिना किसी भयके प्रतिदिन जेल जाते और देवदाससे मिलकर उनकी सुविधाका पूरा ध्यान रखते। उनके पथ्यकी, चिकित्साकी तथा अन्य आवश्यकताओंकी पूरी व्यवस्था करते। यद्यपि प्रतिदिन मिलना जेलके नियमोंके अन्तर्गत सम्भव नहीं था, पर जेल सुपरिंटेंडेंटका श्रीभाईजीके प्रति बड़ा सद्भाव था, अतः रोकते नहीं थे। गाँधीजीको भी भाईजी बराबर समाचार देते रहते थे। गाँधीजोने भी उत्तरमें लिखा कि तुम वहाँ हो, तब मैं निश्चित हूँ। जबतक श्रीदेवदास गोरखपुर जेलमें रहे भाईजी सँभालते रहे। जब रिहायीका आदेश मिल गया तो उन्हें साथ लेकर भाईजी काशी पहुँचाने गये।

श्रीहरिबाबाके बाँधके उत्सवमें

फाल्गुन कृष्ण ७ सं० १६६० को प्रातःकाल सन्त श्रीहरिबाबा अचानक भाईजीके निवास-स्थानपर बिना पूर्व

सूचनाके पधारे। उन्होंने आनेका हेतु बताया कि बाँधपर कई वर्षोंसे होलीपर वृहत्संकीर्तन उत्सव हुआ करता था। परन्तु जैसा लाभ होना चाहिये, वैसा दृष्टिमें न आनेसे तीन-चार वर्षोंसे वह उत्सव बन्द कर दिया गया था। जबसे संकीर्तन बन्द हुआ, तभीसे आस-पासके गाँवोंमें नाना प्रकारके उपद्रव होने लगे। बहुतसे लोग व्याकुल होकर आये और संकीर्तनका पहले जैसा उत्सव प्रति वर्ष आयोजन करनेकी प्रार्थना करने लगे। फिर श्रीउड़िया बाबासे इस विषयमें आज्ञा माँगी तो उन्होंने कहा कीर्तन-उत्सव अवश्य होना चाहिये। उसी दिन बाँध पर जाकर मैंने दिनमें १२ घण्टेका अखण्ड संकीर्तन प्रारम्भ करा दिया एवं अब फाल्गुन शुक्ल १ से १५ तक २४ घण्टे अखण्ड संकीर्तन करनेका निश्चय हुआ है। अधिक-से-अधिक संत महात्माओंको इस उत्सवमें पधारनेकी प्रार्थना करनेके लिये मैं प्रयाग होता हुआ यहाँ आपसे और श्रीसेठजी-से प्रार्थना करने आया हूँ। आप अत्यधिक व्यस्त रहते हैं, अतः पत्रसे प्रार्थना न करके आपकी निश्चित स्वीकृति लेनेके लिये स्वयं आया हूँ। भाईजीने अत्यन्त प्रेमसे उनका आदर सत्कार किया फिर दिनमें उनके साथ श्रीसेठजीके पास जाकर सारी बातें कही। श्रीसेठजीने कहा अस्वस्थताके कारण मेरा आना तो संदेहास्पद है पर भाईजी विचार रख लेंगे।

फाल्गुनके शुक्ल १२ सं० १९९० को भाईजी अपने प्रेमीजनों सहित बाँध उत्सवमें सम्मिलित होने गये। अगले दिन ब्राह्ममुहूर्तमें साढ़े चार बजे भाईजी संकीर्तनमें सम्मिलित हुए। हरीबाबा उन्मत्त अवस्थामें खड़े होकर नृत्य करते हुए संकीर्तन करते थे, जिससे सभीको अद्भुत

आनन्द मिलता था। वहाँ भाईजी श्रीउड़िया बाबा, श्रीनागा बाबा, श्रीशिवानन्दजी, श्रीकृष्णानन्दजी, श्रीभोलेबाबा, श्री-प्रभुदत्तजो ब्रह्मचारी आदि संतोंसे मिले। तीन चार दिन भाईजी उस उत्सवमें सम्मिलित रहे एवं नाम-जप, कीर्तनकी महिमा पर बड़े प्रभावोत्पादक प्रवचन हुए। चैत्र कृष्णा ३/६० को प्रातः गोरखपुर लौट आये।

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीका जन्म आसाढ़ कृष्ण ६ सं० १६५७ को हुआ था। इनका परिवार धार्मिक संस्कार सम्पन्न था एवं इन्हें बल्लभ सम्प्रदायके संस्कार जन्मसे ही प्राप्त हुए। अपने शिक्षाकालमें ये महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराजके शिष्य थे। क्वींस कालेजसे संस्कृत विषयमें एम० ए० करके ये कुछ समय महामना मालवीयजीके सचिव रहे। बादमें बीकानेर राज्यके कई उच्च पदोंपर कार्य किया। संस्कृतके साथ ही ये हिन्दी एवं अंग्रेजीके भी उद्भट विद्वान् थे।

भगवान्के आदेशसे भाईजी भगवन्नामका प्रचार करते हुए सं० १६८४ में बीकानेर गये, उसी समय गोस्वामीजीने भाईजीके दर्शन किये और पहली भेंटमें ही उनकी ओर अत्यन्त आकर्षित हो गये। इस प्रथम समागमका उनके मनपर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि स्वाभाविक ही उनके निकट सम्पर्कमें कुछ अधिक रहनेकी प्रबल भावना जागृत हुई। यह लालसा क्रमसः बढ़ती गयी एवं श्रीगंभीरचन्दजी दुजारी इन्हें बराबर भाईजीके पास रहनेकी प्रेरणा देते रहे। उनकी चेष्टासे ये छुट्टी लेकर बैसाख शु० ७ सं० १६८६

(सन् १९२९) को गोरखपुर पधारे। लगभग डेढ़ महीने भाईजीके पास रहनेका दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ। उस समय गोरखपुरमें साधन-समितिका गठन होकर नियमोंका बड़े उत्साहसे पालन हो रहा था। ये भी उसमें सम्मिलित होकर दृढ़तासे नियमोंका पालन करने लगे। इस छोटी-सी अवधिमें भाईजीके भगवत्सम्बन्धी प्रौढ़ विचारों एवं अनुभवोंको जानने तथा उनके भगवन्मय जीवनको अत्यन्त निकटसे देखनेका अवसर इन्हें प्राप्त हुआ। उनके लोकोत्तर व्यक्तित्व-का मनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि १०-१५ दिनके बाद ही इन्होंने यह निर्णय ले लिया कि सब कुछ छोड़कर भाईजीके चरणोंमें ही रहा जाय और शेष जीवन इन्हींकी छत्रछायामें बिताया जाय। इन्होंने अपनी अभिलाषा आग्रहपूर्वक भाईजी-के समक्ष रखी। भाईजीने इन्हें कहा कि अपना मन दृढ़ हो एवं पिताजी आज्ञा दें तो आप 'कल्याण'के सम्पादन विभाग-में आ सकते हैं।

यद्यपि ऐसे निर्णयको क्रियान्वित करना कठिन होता है पर दृढ़ रहनेसे भगवत्कृपा सहायता करती ही है। वही हुआ और पौष सं० १९८९ (जनवरी सन् १९३३) में ये बीकानेर राज्यका उच्च पद छोड़कर सपत्नीक भाईजीके पास स्थायी रूपसे रहनेके लिये आ गये। 'कल्याण'के सम्पादनमें पूर्ण सहयोग, हिन्दीके लेखों और ग्रन्थोंका अंग्रेजी-में अनुवाद करनेके साथ-साथ उत्साहपूर्वक साधनमें लगे रहना, भाईजीकी दैनिक सत्सङ्गमें नियमित सम्मिलित होना ही इनकी दिनचर्या थी। सम्पादन कार्यमें इनका अनवरत सहयोग भाईजीको प्राप्त हुआ। कार्यका गुरुत्तर भार इनके

अपने साधन-भजनमें कभी व्यवधान नहीं डाल सका। आगे चलकर 'कल्याण-कल्पतरु' निकालनेका निर्णय हुआ तो उसके सम्पादनकी जिम्मेवारी इन्हींको दी गयी। 'कल्याण' या 'कल्याण-कल्पतरु' के साथ-ही-साथ अन्य ग्रन्थोंके सम्पादनमें भी भाईजी इनसे सहयोग लेते थे। परिश्रमसे कभी भी ये घबराते नहीं थे और भाईजीकी तरह कभी-कभी इनको भी रात्रिमें देरतक काममें लगे रहना पड़ता था। प्रकाण्ड पण्डित होनेके साथ ही ये शास्त्रीय संगीतके भी मर्मज्ञ थे और अपने सुमधुर कंठसे भाईजीके दैनिक सत्सङ्गके पश्चात् वहुत बार उसी भावका पद गाकर श्रोताओंको रस-प्रदान करते। आगे चलकर श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके समय बधाईके पद भी अत्यन्त मधुरतासे गाते हुए रसका प्रवाह बहा देते। श्रीराधाजीके जन्म और उत्सवके समापनके समय होनेवाली आरती सुननेके लिये तो भावुक-प्रेमी इनकी प्रतिक्षा करते रहते थे। महोत्सवके ये अभिन्न अङ्ग बन गये थे।

गोस्वामीजीके व्यवहार एवं धोती-कुर्तेकी साधारण पोशाकको देखकर कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि ये संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजीके इतने प्रकाण्ड पंडित हैं। सबके साथ सरल एवं निष्कपट व्यवहार था। ऐसा लगता था कि भाईजीके सुमधुर व्यवहारकी छाया इनपर पड़ी हुई है। आवश्यकतासे अधिक नहीं बोलते थे पर सभीको सुख-दुःखकी बात मिलनेपर अवश्य पूछते थे। स्वयंकी प्रसंशा इनके मुहसे कभी नहीं सुनी गयी बल्कि इनके सामने कोई उनकी प्रसंशा करता तो मानो संकोचमें गड़ जाते एवं बड़ी सरलतासे उसका विरोध कर देते। इनके निकट

सम्पर्कमें आनेवाले इनके व्यवहारसे प्रभावित हो जाते थे ।

आगे चलकर भाईजीने अपने साथ इनका नाम भी 'कल्याण'के सम्पादकमें सम्मिलित कर लिया । इन्होंने श्रीसेठजीकी 'गीता-तत्त्व-विवेचनी टीका,' श्रीमद्भागवत, रामचरितमानस एवं वाल्मीकि-रामायण (लङ्का काण्डतक) आदि ग्रन्थोंका प्रमाणिक एवं परिमार्जित प्रौढ़ अंग्रेजी भाषामें अनुवाद किया, जिससे अंग्रेजी भाषी जनताको ग्रन्थ उपलब्ध हो गये ।

गोस्वामीजी भाईजीकी रुचिका इतना आदर करते थे कि भाईजीको इन्हें कभी आज्ञा नहीं देनी पड़ती थी, किञ्चित् संकेत ही पर्याप्त था । इन्होंने भाईजीकी रुचिसे भिन्न अपनी कोई रुचि रखी ही नहीं थी । भाईजीके सत्सङ्गके प्रवचन सुननेकी इनकी उत्कट अभिलाषा रहती पर गोरखपुरसे बाहर स्वर्गाश्रम आदि स्थानोंमें भाईजी जब भी जाते थे कभी जानेका नाम भी नहीं लेते । गोरखपुरमें रहकर भाई-जीके सम्पादन कार्यको ही अपना सर्वस्व मानते थे । इनको भाईजीके सर्वथा अनुगत कहा जा सकता है ।

गोवर्धन पीठाधीश्वर शङ्कराचार्यजी स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थजी गोस्वामीजीकी विद्वता एवं आध्यात्मिक स्थितिसे प्रभावित होकर इन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे, किन्तु 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु' के सम्पादकत्वको छोड़कर उस वैभवपूर्ण उच्च पदको इन्होंने नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया ।

भाईजीके नित्यलीलालीन होनेके बाद इनके सम्पादक-त्व कालमें 'कल्याण'के तीन विशेषाङ्क' प्रकाशित हुए—

श्रीरामाङ्क, श्रीविष्णु-अङ्क एवं श्रीगणेश-अङ्क जिसमें इन्होंने पूर्णरूपसे भाईजीकी प्रतिष्ठापित परम्पराको निभाया।

लगभग ७० वर्षकी आयुतक ये पूर्ण परिश्रमके साथ सम्पादन कार्यमें लगे रहे। कुछ मास ये व्याधि-जनित पीड़ासे शय्यापर रहे पर उस समय भी मिलनेवालोंसे मुसकानके साथ मिलते थे और उनके सुख-दुःखकी बात पूछते थे। जबतक शरीरने साथ दिया इन्होंने अपनी आचार परम्परा भी निभानेकी भरसक चेष्टा रखी। अन्तमें ५ मई सन् १९७४ को ये अपने अराध्यकी लीलामें लीन हो गये। इनके कोई सन्तान नहीं थी। कुछ समय बाद इनकी धर्म-पत्नीका बीकानेरमें देहान्त हो गया।

'कल्याण-कल्पतरु'का प्रवर्तन

बहुत दिनोंसे इस आवश्यकताका अनुभव भाईजी कर रहे थे कि 'कल्याण'की तरह वैसा ही एक मासिक-पत्र अंग्रेजी भाषामें भी निकाला जाय, जिससे अंग्रेजी-भाषा-भाषी जनता एवं विदेशोंमें रहनेवाले लोगोंको 'कल्याण'का संदेश सुगमतासे प्राप्त हो सके। इस गुरुत्तर कार्यको सँभालनेके लिये भाववाले विद्वान् व्यक्तिकी आवश्यकता थी। श्री-चिम्मनलालजी गोस्वामीके आनेसे वह कमी पूर्ति हो गयी और अंग्रेजीमें 'कल्याण-कल्पतरु' निकालनेका निर्णय ले लिया गया। इसका प्रकाशन सं० १९९१ (जनवरी सन् १९३३) से शुभारम्भ हुआ। भाईजी घसके कंट्रोलिंग एडीटर रहे और सम्पादक श्रीगोस्वामीजी। कुछ समयतक संयुक्त सम्पादक श्रीकृष्णदास बङ्गाली रहे जो श्रीसतीशचन्द्र बनर्जीके शिष्य थे। विदेशोंमें इस पत्रकी अच्छी माँग रही

और लोग इससे बहुत लाभान्वित हुए। इसके माध्यमसे श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, वाल्मीकि-रामायण, रामचरितमानस आदि ग्रन्थोंका प्रामाणिक अनुवाद अंग्रेजी भाषामें प्रस्तुत किया गया। अनेक कठिनाइयोंके कारण 'कल्याण-कल्पतरु'के प्रकाशनको कुछ मासके लिये स्थगित करनेके अवसर दो-तीन बार आये, किन्तु भगवान्की कृपासे कठिनाइयाँ दूर हो गयीं एवं प्रकाशन चलता रहा। परन्तु श्रीगोस्वामीजीके बाद यह बन्द हो गया।

श्रीशान्तनु बिहारीजी द्विवेदी (वर्तमानमें स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज) का गोरखपुरमें आगमन

'कल्याण'में प्रकाशित लेखोंसे प्रभावित होकर श्रीशान्तनु बिहारी द्विवेदी ज्येष्ठ सं० १९९१ में पहली बार गोरखपुर आये। 'कल्याण'के तीसरे वर्षके विशेषाङ्क 'भक्ताङ्क' को पढ़कर इनकी भाईजीसे मिलनेकी इच्छा हुई। मिलनेकी उत्कंठा इतनी तीव्र हुई कि रुपये-पैसेका ख्याल न करके खाली हाथ जैसे थे, वैसे ही चल पड़े। दोहरीघाट स्टेशन तक रेलसे आये और वहाँसे गोरखपुर करीब २० मील पैदल चलकर। भाईजीसे मिलनेपर इन्होंने पहला प्रश्न किया—भगवान्में प्रेम कैसे हो ? उत्तरमें श्रीभाईजीके नेत्रोंसे अश्रु टपकने लगे एवं उन्हें गले लगाकर बोले—'उमा राम सुभाउ जेंहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥' भाईजीके स्नेहने इन्हें आकर्षित कर लिया। एक बार तो तीन-चार दिन रहकर चले गये। दूसरी बार संकीर्तनके समय आसाढ़ शुक्ल ११ सं० १९९३ को गोरखपुर आये। भाईजीके निकट रहनेकी प्रबल इच्छा होनेसे ये

गोरखपुरमें सम्पादकीय विभागमें कार्य करने लगे, साथ ही साधन-भजनमें विशेष रुचि लेने लगे। सम्पादन कार्य और श्रीभागवतके हिन्दी अनुवादके कार्यमें इनका अच्छा सहयोग रहा। भाईजीमें विशेष श्रद्धा रखते थे। कालान्तरमें इन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया एवं स्वामी अखण्डानन्दजीके नामसे विख्यात हुए।

पं० जवाहरलाल नेहरूका गोरखपुरमें आगमन

सं० १९९३ में गोरखपुर एवं उसके आस-पासके क्षेत्रमें भयङ्कर बाढ़ आयी। भाईजीने बाढ़-पीड़ितोंकी सहायतामें तन-मन-धन लगाकर जनताकी सेवा की। उस समय गाँवों-की दशा देखने पं० जवाहरलाल नेहरू भी गोरखपुर पधारे। उस समय कलक्टर अंग्रेज थे एवं यह आसङ्का थी कि जो नेहरूजीको कार देगा उसकी कार जब्तकर ली जायेगी। ऐसी स्थितिमें कौन अपनी कार देनेका साहस करता। बाबा राघवदासजी भाईजीके समक्ष उपस्थित होकर बोले—भाईजी, कार नहीं मिल रही है और इज्जत जा रही है। भाईजीके पास उस समय कार थी, बोले—कार ले जाइये। नेहरूजी उसी कारमें आस-पासके क्षेत्रोंमें गये और घूम-फिरकर भाषण देकर गोरखपुर लौट आये उसी रात रामप्रसादजी सी० आई० डी० इन्सपेक्टर भाईजीके पास आये और विनोदमें कहने लगे—"आज आपने पण्डित जीको अपनी कार दे दी।" भाईजीने उत्तर दिया—"हमने चोरीसे नहीं दी।" उस समय बहुतसे नेता भाईजीके पास ही ठहरते थे, यह बात सभीको मालूम थी। कलक्टरने कहा—"हम जानते हैं कि भाईजीने कार दी है पर हम उनपर

कोई कार्यवाही नहीं करेंगे। उनका विश्वास था कि भाईजी राजनीतिक आदमी नहीं हैं, प्रेमसे सबको ठहराते हैं।

भगवन्नाम-प्रचारकी द्वितीय योजना

कलियुगमें भगवन्नाम ही सर्वोपरि साधन है और भगवान्ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर इसीके प्रचारका आदेश भाईजीको दिया था। भाईजी इसे आजके युगमें सर्वसुलभ एवं सर्वोत्कृष्ट साधन मानते थे। अपने एक प्रेमीको विदा होते समय भवन्नाम-महिमाके सम्बन्धमें भाईजीने कहा था कि मेरी तो First, last and latest Discovery (प्रथम, अन्तिम और हालका आविष्कार) यही है कि अपना कल्याण चाहनेवाला व्यक्ति नामका आश्रय पकड़ लें। और साधन हो सके तो अवश्य करें, किसीका विरोध नहीं है, परंतु और कुछ भी न हो सके तो केवल जीभसे निरन्तर नाम-जप करता रहे।

पहली योजनामें भाईजी अपने परिकरोंके साथ स्थान-स्थानपर स्वयं गये और नामकी महिमा सुनाकर लोगोंको नाम-जपमें लगाया। इतनेसे भाईजीको संतोष नहीं हुआ तब योजना बनायी कि जैसे चैतन्य महाप्रभुके भक्त-गण ग्राम-ग्राममें जाकर नाम-प्रचार करते थे, वैसे ही कुछ सच्चे साधक तैयार किये जायँ जो स्थान-स्थानपर जाकर संकीर्तन-के आयोजन करके लोगोंको नाम-जप-कीर्तनमें लगाये। इसी निमित्तसे सर्वप्रथम श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीसे पत्र-व्यवहार करके उन्हें समझाकर सं० १९९१ के अन्तमें झूसीमें ६ महीनेका अनुष्ठान ऐसे ही साधकोंके लिये कुछ नियम बनाकर अखण्ड-हरिनाम-संकीर्तनका आयोजन कराया।

लगभग ३५-४० साधक उसमें सम्मिलित हुए किन्तु पूरा तत्परतासे साधन करनेवाले न मिलनेसे ब्रह्मचारीजीका उत्साह कुछ कम हो गया। उन्हें नवीन उत्साह दिलानेके लिये भाईजी अपने प्रेमी-परिकरोंके साथ भाद्र कृष्ण १४ सं० १९९२ को संकीर्तन आयोजनमें सम्मिलित होने झूसी गये। भाईजीके जानेसे उस संकीर्तनमें प्राण आ गये एवं पुनः नवीन उत्साहसे ब्रह्मचारीजीने अखण्ड-संकीर्तनका आयोजन ६ महीनोंके लिये और बढ़ा दिया। ब्रह्मचारीजीके उत्साह बढ़ानेके लिये भाईजीने पाँच चुने हुए साधक गोरखपुरसे भेजनेका वचन दिया। भाद्र शुक्ल ४/९२ को गोरखपुर पहुँचकर भाईजीने पाँच साधकोंको झूसी भेजा। ऐसे साधकोंके सम्मिलित होनेसे और साधकोंमें भी उत्साहकी लहर आ गयी। साधकोंके लिये प्रमुख नियम थे ६ महीनेतक पूर्ण मौन रहना, प्रतिदिन एक लाख नाम-जप करना, चार घंटे अखण्ड-संकीर्तनमें समय देना, हल्का फलाहार करना। इससे साधकोंके जीवनमें ठोस आध्यात्मिक प्रगति हुई। इसके सफलतापूर्वक सम्पन्न होनेसे भाईजीको बड़ी प्रसन्नता हुई।

झूसीमें पुनः अखण्ड-संकीर्तनका अनुष्ठान प्रारम्भ करा देनेके बाद भाईजी चुपचाप नहीं बैठे। बरहज़के परमहंस आश्रमके बाबा राघवदासजीके शिष्य ब्रह्मचारी सत्यव्रतजीको प्रेरणा देकर झूसीकी भाँति बरहजमें भी अखण्ड-संकीर्तनका आयोजन सङ्गठित करानेके लये भाईजी स्वयं कार्तिक शुक्ल ५/९२ को बरहज गये। ६ महीनेके लिये अनुष्ठान प्रारम्भ करनेका निर्णय भाईजीके जानेसे लिया गया। अखण्ड-संकीर्तन

अनुष्ठानको प्रारम्भ करानेके लिये भाईजी अपने परिकरों सहित कार्तिक शुक्ल ११।९२ को पुनः बरहज गये एवं अपने ओजस्वी प्रवचनसे साधकोंका उत्साहवर्धन करते हुए अनुष्ठान-का श्रीगणेश कराया ।

बरहजसे लौटनेके बाद भाईजीके मनमें सङ्कल्प हुआ कि सबको उत्साह दिलानेके लिये एवं साधकोंको ठोस लाभ प्रदान करनेके लिये गोरखपुरमें अपने निवास-स्थानवाली वाटिकामें भी एक वर्षके अखण्ड-संकीर्तनका विस्तृत आयोजन किया जाय। सर्वप्रथन श्रीसेठजीसे परामर्श करके निर्णय लिया गया फिर श्रीमुनीलालजी (स्वामी सनातनदेवजी) को अयोध्या भेजकर श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीको इस आयो-जनका मुख्य सञ्चालकका भार वहन करनेकी स्वीकृति ली गयी। तत्पश्चात् वाटिकामें बड़े पंडाल एवं साधकों अतिथि-योंके निवासके लिये कुटियायोंका प्रबन्ध किया गया। बैसाख कृष्ण पक्ष सं० १९८३में भाईजी कानपुर जाकर संत एकरसानन्दजीसे उनके प्रधान शिष्य स्वामी नारदा-नन्दजी, स्वामी शुकदेवानन्दजी एवं स्वामी भजनानन्दजी सहित गोरखपुरके अखण्ड-संकीर्तन यज्ञमें सम्मिलित होनेकी स्वीकृति लेकर लौटे ।

संकीर्तन महायज्ञ आसाढ़ शुक्ल ११ सं० १९९३ को प्रारम्भ हुआ । प्रातःकाल श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी अपनी मण्डली सहित गोरखपुर पहुँचे । स्टेशनपर स्वागतके लिये भाईजी अपने परिकरों सहित उपस्थित थे । बाहरसे और कीर्तन मण्डलियाँ आयीं थी । वहींसे सब लोगोंने उत्साह-पूर्वक उद्दाम संकीर्तन करते हुए जुलूस बनाकर वाटिकाकी

ओर प्रस्थान किया। श्रीब्रह्मचारीजी कई वर्षोंसे मौन रहते थे। आसाढ़ शुक्ल १३/९३ को मध्याह्नमें गीताप्रेससे इस महायज्ञका सज-धजके साथ नगर-संकीर्तनका आयोजन किया गया, जिसमें अपार जनसमूह सम्मिलित हुए। भाईजी अपने परिकरों सहित मधुर नृत्य करते हुए संकीर्तनके समय अनेक बार बाह्य-ज्ञान शून्य हो गये। जिन भाग्यवान् लोगोंने उस समय भाईजीको संकीर्तनकी मस्तीमें नृत्य करते देखा वे उस मुद्राको भूल नहीं सकते। वह अपार जनसमूह संकीर्तनमें झूमता हुआ रात्रिके ९ बजे भाईजीके निवास स्थानपर पहुँचा। वाटिकामें प्रसाद-वितरणके पश्चात् उस दिनका आयोजन सम्पन्न हुआ।

विस्तारभयसे इस एक वर्षके अखण्ड-संकीर्तन यज्ञका पूरा विवरण यहाँ देना सम्भव नहीं है। भावुक जन अनुमान ही लगा सकते हैं। बहुतसे संत समय-समयपर बाहरसे पधार-कर इस यज्ञमें सम्मिलित होते रहे। स्वामी एकरसानन्दजी, स्वामी नारदानन्दजी, स्वामी शुकदेवानन्दजी, स्वामी भजनानन्दजी, नागा बाबा, स्वामी अखण्डानन्दजी, श्रीजयरामदास 'दीन' रामायणी आदि महात्माओंके पधारनेसे एवं भाईजी, श्रीसेठजी और श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीकी उपस्थितिसे यह यज्ञ बहुत ही सफल रहा। पं० जवाहरलाल नेहरू भी संकीर्तनके दर्शन करने वाटिकामें पधारे थे। देवर्षि नारद एवं महर्षि अङ्गिराने भी इसी बीच भाईजीको प्रत्यक्ष दर्शन देकर वार्तालाप किया। अनेकों संत-महात्मा बिना परिचयके आकर सम्मिलित होकर चले जाते। ऐसे ही एक मौनी महात्मा ज्येष्ठ शुक्ल २/९४ को पधारे और वाटिकाके कथा-

भवनमें विराज गये। किसीने कुछ दे दिया तो प्रसाद पा लिया अन्यथा संकेत आदि भी नहीं करते थे। ऐसा भी हुआ कि साधक आये तो अखण्ड-कीर्तनमें सम्मिलित होनेके लिये पर फिर आजीवन वहीं रह गये। श्रीदौलतरामजी तांबी जो उज्जैनके रहनेवाले थे, अखण्ड-कीर्तनमें ४ महीने साधक रूपसे सम्मिलित होने आये थे, पर सात्त्विक वातावरण-से प्रभावित होकर आजीवन रह गये।

आषाढ़ कृष्ण १/६४ को इस अखण्ड-संकीर्तन-यज्ञका समापन हुआ। उस दिन नाम-महिमापर बड़ा विलक्षण प्रवचन करते हुए भाईजीने कहा—"नामने ही इस यज्ञको एक वर्ष तक चलाया। उनकी कृपासे सारे विघ्न टल गये। आग लगी पर किसीको आँच नहीं आयी, प्लेग फैला पर किसीके टीका न लगानेपर भी कुछ नहीं हुआ। आप नाम-जपका नियम लें, यदि यह नियम चलता रहा तो शब्द याद रखिये—"भगवान् मिल जायेंगे।" नामसे मेरेको जो लाभ हुआ है, वह मैं कह नहीं सकता। नाम असम्भवको सम्भव कर सकता ही नहीं, करता है। आप नाम-जपकी प्रतिज्ञा कीजिये—निभायेंगे भगवान्...............।"

इस संकीर्तन-यज्ञके सम्बन्धमें श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने अपने संस्मरणमें लिखा—

"इसके लिये सारी व्यवस्था भाईजीने की। किन्तु अपना नाम कहीं भी नहीं दिया। सब मेरे ही नामसे करते रहे हमारे साथ १०-१२ साधक थे। सबके ठहरने, खाने-पीने और सवारीका कैसा प्रबन्ध किया, वे सब बातें जब याद आती हैं तो हृदयमें हूक-सी उठती है। उन दिनों कैसा सुन्दर

सत्सङ्ग होता था। न जाने कितने अच्छे-से-अच्छे विद्वान् बैठकर भगवत्-चर्चा किया करते थे। "ते ही नो दिवसा गताः"—हाय! वे हमारे दिन चले गये और ऐसे गये कि फिर लौटकर नहीं आनेके।"

स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराज

जिन दिनों गीतावाटिका, गोरखपुरमें एक वर्षका अखण्ड-संकीर्तन चल रहा था, उसी समय स्वामी श्रीचक्रधर-जी महाराज गीता वाटिका पधारे। कालान्तरमें इनका भाईजीके साथ अत्यन्त प्रगाढ़ सम्बन्ध हो गया। इनका परिचय अति संक्षेपमें नीचे दिया जा रहा है—

बाबाका शरीर ग्राम फखरपुर (गया-बिहार) का है। बैदुष्यसम्पन्न 'मिश्र' ब्राह्मण कुलमें इनका जन्म पौष कृष्ण ९ सं० १९६९ को हुआ था। भाईजी की भाँति इनका भी आरम्भिक जीवनमें उग्र राजनीतिसे सम्बन्ध रहा है। उसमें इन्हें उन्नतिशील अध्ययन-व्यवस्थाका परित्याग कर सं० १९८७-८८में बंदी जीवनकी असह्य यातनाएँ सहनी पड़ीं। कारागारसे मुक्त होनेके पश्चात् ये सन्यासी हो गये एवं अत्यन्त विरक्त भावसे रहने लगे। कुछ समय कलकत्तामें रहने-के पश्चात् ये श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ बाँकुड़ामें रहे। श्रीसेठजीने कुछ वर्ष इन्हें बड़े स्नेहसे अपने पास रखा। उन दिनोंमें ये निर्गुण-निर्विशेष ब्रह्मके उपासक थे। श्रीसेठजी तत्त्वके ज्ञाता होते हुए भी सगुण-साकार रूपका विवेचन भी किया करते थे। इन्हें वह रुचिकर नहीं लगता था, अतः उनसे ये शास्त्रार्थ करने लग जाते। श्री सेठजीने इन्हें शास्त्र-प्रमाणोंसे बहुत समझाया, पर ये उनके तर्कोंको

स्वीकार नहीं कर पाये। तब श्रीसेठजीने इन्हें एक बार भाईजी-से मिलनेके लिए कहा पर इन्होंने रुचि नहीं दिखायी। परन्तु जगन्नियन्ताका विधान और ही था। श्रीसेठजी गोरखपुर आने वाले थे सो इनको भी अमुक तिथि तक गोरखपुर पहुँचनेको कहा। ये गोरखपुर आ गये पर कारण विशेषसे श्रीसेठजी नहीं पहुँच पाये। आश्विन पूर्णिमा सं० १९९३ को गीताप्रेस जानेपर इन्हें पता चला कि श्रीसेठजी आये नहीं है। इन्होंने भाईजीका निवास स्थान पूछा और गीतावाटिका चले आये।

स्वामीजीको देखकर भाईजीने आसनसे उठकर चरण-स्पर्श करके प्रणाम किया। भाईजीके चरण-स्पर्श करते ही स्वामीजीको ऐसी विलक्षण अनुभूति हुई, जैसे "विश्वका सम्पूर्ण व्रज-रस उनके मानसमें उडेल दिया हो ?" उस दिन रास-पूर्णिमाका महापर्व था। अपने पूर्व जीवनमें कट्टर वेदान्ती होते हुए भी स्वामीजी इस परिवर्तनोंको रोक नहीं पाये। इसके बाद स्वामीजीने वाटिकामें ही पीछेकी ओर इमलीके पेड़के नीचे कुछ दिनोंतक वास किया। संकीर्तन-यज्ञकी भीड़से साधनामें बाधा होते देखकर ये वहाँसे हटकर नगरके दूसरे छोरपर हनुमान गढ़ीके पास जाकर रहने लगे। वहाँ चार-पाँच महीने बिताकर श्रीसेठजीके साथ चूरू (राज-स्थान) गये और फिर गीताकी टीकाके कार्यसे उनके सान्नि-ध्यमें कुछ समय बाँकुड़ामें रहे।

सन् १९३९में गोविन्द भवन, कलकत्तामें ये भाईजीसे मिले और वहींसे ११ मई १९३९से बाबाका 'क्षेत्र-सन्यास' लेकर भाईजीके साथ अखण्डरूपसे रहनेका 'महाव्रत' प्रारम्भ

हुआ। इसके पश्चात् बाबा एक दिनके लिये भी भाईजीसे अलग नहीं हुए, सदा साथ रहे। भाईजीके नित्यलीलालीन होनेपर उनकी समाधिके पास क्षेत्र-सन्यास लेकर रहते हैं।

बाबा संस्कृत, हिन्दी, बंगला तथा अंग्रेजीके प्रकाण्ड पण्डित हैं। उनका शास्त्र-ज्ञान अगाध है। संगीत-शास्त्रका भी उनको अच्छा अभ्यास है। उनकी वाणीमें अद्‌भुत प्रवाह एवं आकर्षण है। भाईजीकी रुचिका अनुसरण करते हुए उन्होंने वर्षोंतक वाणीका पूर्ण संयम रखा।

रतनगढ़में निवास

'कल्याण'का सम्पादन एवं सेवा-कार्योंका संचालन करते हुए भी भाईजीका मन बीच-बीचमें सर्वथा एकान्त सेवनके लिये व्यग्र हो जाता। जब भी किसी निमित्तसे ऐसा शुभ अवसर मिलता भाईजी एकान्तमें चले जाते। ऐसा ही एक अवसर मिलने पर ये अपने मित्र लच्छीरामजी चूड़ीवालाके आग्रह पर आश्विन कृ० ३ सं० १९८९ को लक्ष्मणगढ़ गये। वहाँ ऋषिकुलके संचालनकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें परामर्श करके वहाँसे रतनगढ़ चले गये। वहाँ रहनेकी इच्छा थी अतः 'कल्याण' के सम्पादकीय विभागको भी वहाँ बुला लिया। एकान्तकी दृष्टिसे रहनेके लिए मोती-राम भरतियाकी ढाणीको चुना जो शहरसे लगभग डेढ़ मील दूर थी। वहाँ एकान्त-साधना अधिक चलने लगी, 'कल्याण'-के सम्पादन कार्यको देखते हुए ही। उस समय गीताप्रेसके कर्मचारियोंने हड़ताल कर दी और 'कल्याण'का सारा कार्य बन्द हो गया तो उसका समाधान करनेके लिये भाईजीको गोरखपुर बुलानेका आग्रह होने लगा, किन्तु भाईजी कुछ दिन

एकान्त साधनामें बिताना चाहते थे, अतः वहींसे पत्र द्वारा निर्देश देते हुए सात बातें लिखकर भेजी, जिनके आधार पर एक बार समझौता हो गया फिर चिकित्साके लिये कलकत्ता जाकर गोहाटी होते हुए चैत्र कृ० १३ सं० १९८९को गोरखपुर लौट आये ।

पुनः एक वर्षका अखण्ड-संकीर्तन यज्ञ पूर्ण होने पर 'कल्याण' का विशेषांक 'सन्तांक' तैयार करके भाईजी श्री-सेठजीसे अनुमति लेकर रतनगढ़ रहनेके लिये श्रावण शुक्ल ६/१९९४ को गोरखपुरसे रवाना हो गये । वहाँ अधिक दिन रहनेका मन था, अतः 'कल्याण' के पूरे सम्पादकीय विभाग-को भी साथ ले लिया । उस समयकी अपनी मनकी स्थिति-का सांकेतिक चित्र एक पत्रमें लिखा, जिसका कुछ अंश निम्नलिखित है—

गोरखपुर

प्रिय भाई............ श्रावण शुक्ल ३,१९९४

सप्रेम हरिस्मरण । अभी तो रतनगढ़ जानेकी ही बात है । यद्यपि रतनगढ़ जानेमें गोरखपुरसे जानेका मेरा उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा । मैं तो बिलकुल एकान्तमें चार-छः महीना सर्वथा अकेला रहना चाहता था, परन्तु पूज्य माँजी वगैरह भी मुझको अकेला नहीं छोड़ना चाहती और मेरे कामकाज-के साथी लोगोंको भी रखना आवश्यक-सा हो गया है ।

जबतक जो काम करता हूँ, लगनसे जिम्मेदार आदमी-की तरह ही करता हूँ और लीलामयका संकेत समझकर ऐसा करनेमें प्रसन्नता होती है । इतना होने पर भी जो काम-से भागनेका मन करता है, इसमें प्रधान कारण 'निवृत्ति

परक प्रकृति' ही मालूम पड़ती है। यह बात नयी नहीं हैं। जबसे होश सँभाला, तबसे नाना प्रकारके व्यवहारिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्रोंमें रहते हुए भी इस 'निवृत्तिपरक प्रकृति' की धारा निरन्तर समान रूपसे चित्तमें बहती देखी गयी है। किन्तु आश्चर्य यह है कि शिमलापालके पौने दो वर्षको छोड़कर शेष सारा जीवन रहा है प्रवृत्तमय ही। उस पौने दो सालमें भी प्रवृत्तिका अभाव नहीं रहा है, तथापि चित्त तो निवृत्तिकी ओर ही ताकता रहा। संभव है, पूर्वजन्ममें कोई त्यागी सन्यासी रहा होऊँ। मैं बहुत दिनोंसे लक्ष्य करता हूँ गेरुआ वस्त्र, कमण्डलु, कौपीन आदि अपने कपड़े और पात्रसे लगते हैं। नदी, तीर्थ और सन्यासियोंकी कुटियाएँ घर-सा मालूम होती है। संग्रहकी अपेक्षा त्यागमें सुख मिलता है, बल्कि संग्रहका तो ध्यान ही नहीं रहता। घरकी चीज कोई ले जाता है या किसीको दे दी जाती है, तो अच्छा लगता है। अकेलेमें बिना किसीसे बोले-चाले पड़े रहनेमें अनुकूलता मालूम होती है। भीड़-भाड़से चित्त भागता है। कोई पास न आये, कोई न मिले किसीसे न बोलना पड़े, कोई नयी बात जाननेमें न आवे, ऐसी-सी इच्छा रहती है।............इस बार इसी भावनासे अलग जानेका मन हुआ था। स्वास्थ्यादिकी बात तो गौण है। परन्तु यह भावना सफल नहीं होती दिखायी देती। अवश्य सन्यास-ग्रहण करनेकी इच्छा बिल्कुल नहीं है, परन्तु सन्यासीकी तरह रहनेका मन जरूर होता है,.........यह चित्तकी स्थिति है।............

तुम्हारा,

हनुमान

सहयोगियोंमेंसे सर्वश्री नन्ददुलारे वाजपेयी, पण्डित चिम्मनलालजी गोस्वामी, शान्तनुबिहारी द्विवेदी (स्वामी अखण्डानन्दजी), भुनेश्वरजी मिश्र 'माधव', कृष्णदासजी बंगाली, पंडित देवधरजी शर्मा, दौलतराम ताम्बी, पंडित गोवर्धनजी शर्मा आदि भाईजीके साथ रतनगढ़ गये।

रतनगढ़ आनेके बाद भाईजी नित्य नियमित रूपसे प्रातःकाल ३-४ घण्टे एकान्तमें बैठते थे, वस्तुतः वे ऐसे एका-न्त सेवनके लिये ही यहाँ आये थे। बादमें उन्होंने एक प्रेमीको संकेत किया कि उस एकान्तमें भगवान् प्रायः स्वयं पधार कर सूत्ररूपसे रहस्यकी बातें समझा देते है।

भाद्र शुक्ल ३/९४ को भाईजी अपने परिकरों सहित श्रीगोस्वामीजी गणेशपुराणकी कथा करते थे, उसके समापन पर बीकानेर गये। वहाँ श्रीलालीमाईजी एवं श्रीस्वयंज्योति-जी महाराजसे मिले। उन्हीं दिनों श्रीचम्पालालजी कोठारी-के दामादका असमाथित देहान्त हो गया था सो उनके घर जाकर ऐसे विलक्षण शब्दोंमें सान्त्वना दी कि उनका पूरा परिवार ही भगवान्में लग गया। उनकी स्वयंकी मृत्यु सं० २०११में कलकत्तामें बड़े विलक्षण ढंगसे भगवान्का दर्शन करते हुए हुई। दूसरे दिन ही पुनः रतनगढ़ लौट आये। रतनगढ़में भाईजीके रहनेसे प्रेमीजनोंमें कीर्तन-सत्संगका उत्साह बढ़ने लगा। बहुत बार २४ घण्टेके अखण्ड कीर्तनके आयोजन हुए, कई बार तीन-तीन दिनोंके अखण्ड कीर्तनके आयोजन होते रहे।

अश्विन शुक्ल पूर्णिमासे फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा तक भाईजीने वहीं रहकर एक विशेष अनुष्ठान करनेका निश्चय

किया। जिस धर्मशालामें 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागके लोग रहते थे, वहाँ नियमसे प्रातः ५ बजे प्रार्थना एवं कीर्तन होता था। भाईजीका सत्संग प्रतिदिन होता था। प्रेमीजन भी भाईजीसे मिलनेके लिए दूर-दूरसे आते ही रहते थे। अनुष्ठानकी समाप्तिके पश्चात् भाईजीकी उपरामता और भी बढ़ गई।

फाल्गुन शुक्ल ८/६४ श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी रतनगढ़ पधारे तब नगर-संकीर्तनका आयोजन किया गया। श्रीसेठजी भी रतनगढ़ पधारे एवं उनके और भाईजीके प्रयत्नसे साम्प्रदायिक दंगा होते-होते बच गया। गीताप्रेसके कर्मचारियोंका उपद्रव शान्त न होनेसे एक बार गोरखपुर गये। भाईजीके पहुँचते ही उनके नेता भाईजीकी बातें मान गये एवं उपद्रव शान्त हो गया। श्रीसेठजीके आग्रहसे कई महीने गोरखपुर रहना पड़ा।

सर्दी-गर्मीका शरीरपर असर नहीं

सं० १९९५में राजस्थानमें भयंकर अकाल पड़ा। भाईजी ऐसे सेवा कार्योंमें सबसे आगे रहते ही थे। उस समय अकाल पीड़ितोंकी सेवाका प्रबन्ध किया। इसी सहायता-कार्यके बारेमें श्रीसेठजीसे परामर्श करने भाईजी बाँकुड़ा गये। वहाँसे राजस्थान लौट रहे थे, पौषका महीना, कड़ाकेकी ठंड पड़ रही थी। बाबा भी भाईजीके साथ थे। भाईजीने देखा बाबाको जाड़ा लग रहा है सो उन्होंने अपनी कम्बल भी बाबाको ओढ़ा दी। बाबाने कहा—आपको ठंड नहीं लगेगी। भाईजी बोले—"आप मुझे क्या समझते हैं? मेरे इसका साधन किया हुआ है। इसी क्षण मैं जाड़ेका द्रष्टा

बन जाऊँ तो मुझे जाड़ेका बिलकुल भान भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार गोरखपुरमें गर्मीके दिनोंमें काम करते हुए मेरे शरीरसे तड़-तड़ पसीना आता रहता है, लेकिन इससे मेरे काममें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती, न पंखेकी जरुरत पड़ती है, न ठण्डी हवाकी।" यह सुनकर बाबा बोले कि जाड़ेका भान न भी हो तो तज्जनित असरके कारण शरीर अस्वस्थ तो हो सकता है। भाईजीने उत्तर दिया—वह भी नहीं हो सकता। इसके बाद तो बाबा क्या कहते। मुसकुराने लगे।"

दादरीमें एकान्त-सेवन

फाल्गुन सं० १९९५ से भाईजीकी एकान्त सेवनकी लालसा पुनः तीव्र हो गई। काम करते थे पर मन नहीं लगता था। इस समय गीताकी तत्व-विवेचनी टीका श्री-सेठजी द्वारा लिखायी जा रही थी जिसे १९९६के 'कल्याण'-के विशेषांकके रूपमें निकालनेका निश्चय किया गया था। इस कार्यसे भाईजीको कुछ समय बाँकुड़ा भी रहना पड़ा। पर मनमें निश्चयकर लिया था कि इसके पश्चात् गोरखपुर-से कहीं एकान्तमें जाना ही है। श्रावण १९९६में गीता-तत्त्वांक छपकर तैयार हुआ। इसी बीच भाद्र कृष्ण ३/९६ को द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो जानेसे श्रीसेठजीने १५-२० दिन जानेसे रोक लिया। उन दिनों भाईजीका किसी काममें मन नहीं लगता था। 'कल्याण'का सम्पादन, लेख लिखना आदि सभी कुछ बन्द था। कार्यालयमें जाकर बैठ जानेपर मन साथ न रहनेसे कोई कार्य नहीं कर पाते। अन्ततोगत्वा भाद्र शुक्ल १२ सं० १९९६ को दादरी (हरियाणा)के लिये प्रस्थान किया। रवाना होनेसे पूर्व भाईजीने सभी प्रेमी-जनों

को बुलाया और बड़े प्रेमसे कहा—"आपका प्रेम है तो मैं चाहे जहाँ रहूँ, आपके पास ही हूँ। प्रेमका बदला तो कुछ हो नहीं सकता। मैं जहाँ भी रहूँगा आपके प्रेमका ऋणी ही रहूँगा। हो सकता है मैं शीघ्र ही वापस आ जाऊँ या भगवान्‌की इच्छासे कुछ अधिक दिन वहाँ रहना हो जाय। ऐसा मेरा निश्चय नहीं है कि कभी वापिस न आऊँ। दूर रहनेपर मेरे एक पत्रका भी बड़ा असर हो सकता है। मैं देवीप्रेरणासे ही जा रहा हूँ।" विदाईके समयका दृश्य बड़ा ही हृदय विदारक था। सैकड़ों लोग स्टेशनपर खड़े करुण भावसे भाईजीकी ओर देख रहे थे।

एकान्त-सेवनके लिये स्थान दादरी चुननेका कारण यह था कि वहाँ डालमिया बन्धुओंकी सीमेंन्ट फैक्ट्री थी और उनका आग्रह था कि यहाँ एकान्तकी सारी व्यवस्था भाईजीके मनोनुकूल कर दी जायगी। डालमिया-बन्धुओंसे भाईजीका बहुत वर्षोंसे मैत्री भाव था अतः उनका आग्रह स्वीकार कर लिया। वहाँ पहुँचनेपर भाईजीको एक पृथक बंगला दे दिया गया एवं जैसा भाईजी एकान्त चाहते थे, वैसी सारी व्यवस्था कर दी।

एक प्रश्न उठता है कि भाईजीको भगवान्‌के साक्षात दर्शन, वार्तालापका सौभाग्य प्राप्त हो गया था। उसके १२ वर्ष बाद भी भाईजीको एकान्तमें साधना करनेकी क्यों आवश्यकता हुई ? इसका वास्तविक उत्तर तो अन्तर्यामी ही जाने, पर एक संकेत मिलता है। एक बार गोरखपुरमें भाईजीके कुछ प्रेमीजन उनसे आग्रह कर रहे थे कि हमको भी भगवान्‌के दर्शन करवाइये। जब आपकी भगवान्‌से

बातें होती हैं तो हमारे बारेमें उनसे कहिये। तब भाईजीने कहा कि मैं जानता हूँ जो वस्तु मुझे प्राप्त है, वह आप लोगोंकोंको प्राप्त नहीं है। किन्तु मैं चाहनेपर भी आपको वह प्राप्त नहीं करा सकता। मेरे प्रेमीजनोंका मेरे सङ्कल्प-मात्रसे कल्याण हो जाय ऐसी मैं चेष्टा करना चाहता हूँ, परन्तु उस स्थितिको प्राप्त करनेका साधन बड़ा कठिन है। उसकी भूमिका मात्रके लिये ६ महीने तो सर्वथा एकान्तमें अज्ञातवास और अजगरवृत्तिसे रहना पड़ता है। पूरे साधनमें कितना समय लगे पता नहीं।

भगवान्की ऐसी ही इच्छा थी—दादरीमें भाईजी लगभग तीन महीने ही रह सके। वहाँ भाईजीने अपनी निम्नाङ्कित दिनचर्या बना रखी थी—

प्रातःकाल ४ बजेसे	५ बजे तक	भगवान्की मधुर लीलाओंका आस्वादन।
५ बजेसे	६ बजे तक	शौच, स्नान संध्या आदि।
६ बजेसे	७॥ बजे तक	आये हुए पत्रोंका हाथसे उत्तर देना।
७॥ बजेसे	१०॥ बजे तक	कमरा बन्द करके एकान्त-साधन।
१०॥ बजेसे	११॥ बजे तक	शौच, स्नान, तर्पण आदि।
११॥ बजेसे	१२॥ बजे तक	मौन रहकर जप करना।
१२॥ बजेसे	१ बजे तक	भोजन।
१ बजेसे	१॥ बजे तक	मौन खोलकर स्वल्प वार्तालाप।
१॥ बजेसे	२॥ बजे तक	लिखकर बातें करना—आवश्यक होनेपर।

२।। बजेसे ५।। बजे तक कमरा बन्द करके एकान्त-साधना ।
५।। बजेसे ६ बजे तक आये हुए पत्र पढ़ना ।
६ बजेसे ७ बजे तक शौच, स्नान, संध्या आदि ।
७ बजेसे ८।। बजे तक बाहर दूबपर बैठकर स्वल्प समाचार पत्र पढ़ना, भोजन, मौन खोलकर आवश्यक वार्तालाप ।
८।। बजेसे १ लाख नाम-जपकरके शयन ।

वहाँसे श्रीगोस्वामीजीको एक पत्रमें भाईजीने लिखा—

डालमिया, दादरी
आश्विन कृ० ६ सं० १६६६

प्रिय श्रीगोस्वामीजी,

सादर सप्रेम हरिस्मरण । आपका पत्र मिला ।......

मैं प्रायः एकान्तमें रहता हूँ, मेरे पास प्रायः कोई आते भी नहीं, परन्तु यहाँका वातावरण मिलका है, और भी कई बातें हैं । अतः यहाँ स्थायी रूपसे रहनेका विचार न पहले था, न अब है । परन्तु यह भी निश्चय नहीं हो पाया कि यहाँसे कहाँ जाना चाहिये । रतनगढ़ मेरे मनके अनुकूल नहीं और दूसरी जगह स्थायी रूपसे रहनेमें पूज्य माँजी तथा सावित्रीकी माँको प्रतिकूलता मालूम होगी । यद्यपि जहाँ मैं रहूँ, वे वहीं रहनेको कहती हैं और रहेंगी भी, परन्तु उन्हें अनुकूल नहीं है, ऐसा मेरा अनुमान है । ऐसी स्थितिमें देखा जाय, कहाँ रहना हो ।...... निस्तब्ध-नीरव-सा जीवन है और अभी यही प्रिय मालूम होता है ।

आपका,
हनुमान

दादरीमें भाईजीके साथ केवल स्वामीजी श्रीचक्रधरजी एवं गम्भीरचन्दजी दुजारी थे। वहाँ भाईजी जो लिखकर बातें करते थे उसका कुछ थोड़ा-सा अंश नीचे दिया जा रहा है—

"आज सबेरे ७॥ बजेसे १० बजेतक बहुत आनन्द रहा। यह सोचा है छः घण्टे लगभग अकेला रहूँ।.......... संख्यासे कम-से-कम १ लाख नाम-जप नित्य हो। इससे अधिककी संख्या नहीं।............शरीर प्रतिक्षण मर रहा है। इसलिये नाम-जप जबतक होश रहे घड़ी भर भी न छोड़ें। यदि ऐसा होगा तो बेहोशीमें भगवान् सम्भालेंगे।......... यदि भगवान् हमारी चिन्ता करें तो यह सिद्ध होता है कि हमारी चिन्ताका कोई कारण तो है।.........जब भगवान् हमारे हैं तो चिन्ताका कारण ही कहाँ ?............भविष्यकी चिन्ता न करके वर्तमानमें जैसी कुछ भगवान्की प्रेरणा मनमें मालूम हो, वैसी चेष्टा करनी चाहिये—बस, चेष्टामात्र। भविष्यमें जो कुछ रचा हुआ है, हो ही जायगा। मेरा कोई लक्ष्य नहीं है, पता नहीं मन कल क्या चाहेगा। भगवान्ने जो रच रखा है वही लक्ष्य है।......शरीरके संयोगको महत्त्व न देकर आत्माके संयोगको महत्त्व देना चाहिये। अतएव यदि भौतिक शरीरसे प्रेमियोंको परस्पर अलग रहना पड़े और आत्माका संयोग सच्चा हो तो अलग होनेपर भी रोज मिलन हो सकता है।...............सबसे उत्तम है कोई भी सङ्कल्प न हो, हो तो यही कि भगवान्का सङ्कल्प पूरा हो। यह न हो सके तो पारमार्थिक शुभ सङ्कल्प हों।............एकान्तमें बैठा रहूँ उस समय बीचमें उठनेसे कई दिनोंका किया हुआ

कार्य कुछ खराब हो जाता है।............कई बार बहुत ही Serious stage में रहता हूँ।......

......चिन्ता तो बस एक भगवच्चिंतनकी ही करनी चाहिये। मन ठीक न हो तो भी कोई बात नहीं। भगवान्‌की कृपासे मनके ठीक हुए बिना भी जो कुछ होना है, हो जायगा। मन ठीक करनेकी जरूरत होगी तो उसे भी कृपा अनायास ही ठीक कर लेगी। आप यह विश्वास कीजिये, हम लोगोंपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है।.........यहाँ तो सर्वथा एकान्त कमरा नहीं है इससे (कोई नये आदमीके आनेका) कम पता लगता है। यदि बिल्कुल एकान्त हो—दूसरा कोई प्रवेश करे ही नहीं तब तो बहुत जल्दी पता लग जाता है। साधनाके लिये उसीकी जरूरत है। नहीं तो स्थान व्याभिचार होनेसे वातावरण साधनके अनुकूल नहीं रहता।.........वस्त्र और आसन शुद्धि भी यहाँ ठीक नहीं है।"

श्रीकृष्णभक्त विदुषी महिला रैहाना तैय्यबजीसे प्रेम-साधनापर गम्भीर पत्रोंका आदान-प्रदान यहींसे हुआ। इन्हीं दिनों राजस्थानमें भयङ्कर अकाल पड़ा। रतनगढ़के आस-पासका सेवा कार्य भाईजीने अपने निर्देश द्वारा यहींसे प्रारम्भ करा दिया। बादमें भाईजीको इस कार्यके उपलक्षमें बीकानेरके महाराज श्रीगङ्गासिंहजी द्वारा 'सिरोपाव' और 'खास रुक्का' (प्रशंसा पत्र) दिया गया। मार्गशीर्ष शुक्ल १०/९६ को भाईजी दादरीसे चलकर रतनगढ़ आये।

रतनगढ़में पुनः एकान्त सेवन

रतनगढ़ आनेके पश्चात् भाईजीकी दिनचर्या कुछ

परिवर्तनके साथ दादरीकी भाँति ही चलती रही। लगभग ५-६ घण्टे एकान्त कमरेमें रहते या शामके समय शहरके बाहर टीबोंमें चले जाते। एक दिन उन्होंने अपने एक प्रेमी-को संकेत भी किया कि गोरखपुरकी अपेक्षा दादरीमें और दादरीकी अपेक्षा भी रतनगढ़में श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंके दर्शन नित्य नये रूपमें अधिक होते हैं। इसी समय एक और विशेष घटना घटी। गोरखपुरमें मार्गशीर्ष शुक्ल ११|९६ को गीताजयन्तीके उत्सवके समय जो जुलूस निकाला उसपर साहबगंजकी मसजिदके पास कुछ मुसलमानोंने उपद्रव किया एवं कई व्यक्तियोंपर कोर्टमें मुकदमा भी कर दिया। भाईजीकी अनुपस्थितिके कारण सभी लोग घबरा गये। भाईजीको बुलानेके लिये अनेक पत्र आग्रहपूर्वक प्रार्थनाके आये पर भाईजी एकान्त छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। भाईजी पत्रोंसे समझाते रहे, एक पत्रमें वे लिखते हैं—

"मेरा यह निवेदन है कि बाहरकी चेष्टा पूरी उत्साह एवं लगनके साथ जरूर होनी चाहिये। रुपयेसे जो काम हो सकता हो उसमें भी त्रुटि नहीं करनी चाहिये। दौड़-धूप पूरी होनी चाहिये। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी होने चाहिये जो गीताके उपदेशोंको और संतोंकी वाणीको कार्यरूपमें (Practically) करनेकी भी नम्र चेष्टा करते रहें।

मान लीजिये गीताप्रेस उजड़ जायगा, गीताप्रेसवालोंकी बात नीची हो जायेगी, झूठ-मूठ ही वे दोषी मान लिये जायेंगे और दण्ड हो जायगा। प्रेसकी जो इज्जत है, उसका लोगोंके सामने जो स्वरूप है वह नष्ट हो जायगा—मैं कभी-कभी

सोचता हूँ ऐसा भी होगा तो क्या बिगड़ जायगा। अहङ्कार-को छोड़ करके कहें तो यह सत्य है गीताप्रेसका यह स्वरूप हमारी किसी (स्कीम) योजना या शक्तिसे बना नहीं और अब हमारी स्कीमोंसे और हमारी ताकतसे यदि हम इसके स्वरूपको बचाना चाहेंगे (और जिस शक्तिसे यह बना है, वह शक्ति बिगाड़ना चाहेगी) तो यह बचेगा नहीं। बस उनकी सर्वथा कल्याणमयी व्यवस्थापर आस्था जमाकर आनन्दसे रहिये। चिन्ता करनी हो तो यह कीजिये कि उनके चिन्तनमें कमी क्यों होती है ? क्या लिखूँ ?

आपसे प्रार्थना है—करबद्ध प्रार्थना है कि मैं कुछ कर रहा हूँ, मुझे करने दिया जाय। आप लोगोंको समझाते रहिये जिसमें मुझको बुलानेमें ज्यादा जोर नहीं दिया जाय।..............."

गोरखपुरके प्रेमीजनोंको विश्वास था कि भाईजी वहींसे शक्ति संचार करके सारा कार्य ठीक कर देंगे और हुआ भी वही। लोगोंके आश्चर्यका उस दिन ठिकाना नहीं रहा जब मुकदमा कोर्टके समक्ष प्रस्तुत हुआ तो बिना किसी गवाही, बहसके हाकिमने मुकदमा खारिज कर दिया।

इसी समयके श्रीगोस्वामीजीको दिये हुए एक पत्रमें भाईजीने लिखा—

............"मुझ भीतरी पागलको दूर पड़ा रहने दें। कहीं पागलपन बाहर आ गया तो सबको हैरान होना पड़ेगा। रोक-रोककर रखता हूँ सबके सामने, अन्दर तो उन्माद बढ़ रहा है।"

अगले वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'साधनाङ्क' निकालने-

का निर्णय हुआ था। इधर भाईजीकी उपरामताके कारण 'साधनाङ्क' तैयार होना कठिन था। अतः फाल्गुन शुक्ल ३/१९९६ को श्रीसेठजी रतनगढ़ पधारे एवं एकान्तमें भाईजीसे बात की और गोरखपुर जाकर 'साधनाङ्क'की तैयारी करनेके लिये कहा। भाईजीने नम्रतापूर्वक कहा कि मेरा गोरखपुर जानेका मन नहीं है और न काम करनेमें मन लगता है। श्रीसेठजी इनकी मनकी स्थितिको समझ गये और कहा कि सम्पादकीय विभागको यहाँ बुला लो और यहींसे तैयार करो। भाईजीने कहा कि उन लोगोंको यहाँ बुलाकर तैयार तो करा सकता हूँ पर बादमें उनके साथ मेरा गोरखपुर जानेका मन नहीं है।

इन्हीं दिनों भारतीय संसदमें 'हिन्दू कोडबिल' विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। भाईजीका विश्वास था कि ऐसा कानून बन जानेसे हिन्दुओंके सामाजिक जीवनमें अनाचारकी वृद्धि होगी जो सम्पूर्ण देशके नैतिक पतनका कारण बनेगी। इसे ध्यानमें रखते हुए भाईजीने इसके विरोधमें एक व्यापक हस्ताक्षर अभियान चलाया। 'कल्याण'में इस आशयके कई लेख प्रकाशित किये। राष्ट्रपतिको, मन्त्रियों एवं राजनीतिक नेताओंको भाईजीने इस सम्बन्धमें तार दिये और लोगोंको भी तार एवं पत्र देनेकी प्रेरणा दी।

श्रीगोविन्दरामजी पोद्दारकी अलौकिक मृत्यु

भाईजीके इस रतनगढ़ प्रवासके समय एक और विलक्षण घटना हुई। श्रीगोविन्दरामजी पोद्दार रतनगढ़के प्रतिष्ठित गल्लेके थोक व्यापारी थे। व्यापारमें बड़े ईमानदार और स्वभावके बड़े सरल थे। व्यापारका अधिकांश कार्य इनका

लड़का और मुनीम देखते थे, ये प्रायः अधिक समय जप करते रहते थे। भाईजीपर इनकी अटूट श्रद्धा थी, पर इसे बहुत कम व्यक्ति जानते थे। भाईजीके सत्संगमें नित्य जाते थे और भाईजीकी रुचिका ये बहुत आदर करते थे। इसका एक उदाहरण ही यहाँ पर्याप्त होगा।

एक बार रतनगढ़के एक करोड़पति सेठके परलोक-गमनपर द्वादशेका ब्राह्मण-भोजन था, जिसमें रतनगढ़के सभी ब्राह्मणोंको निमन्त्रण था। पर कुछ ब्राह्मण आस-पासके गाँवों-से बिना निमन्त्रणके आ गये थे। जिनको वहाँ भोजन नहीं कराया गया और वे निराश भूखे लौटने लगे। यह बात भाईजीके पास पहुँची तो भाईजीसे नहीं रहा गया और चल पड़े कि ब्राह्मणोंको भोजन कराके लौटाना है। जब इस बात-का श्रीगोविन्दरामजीको पता लगा तो उन्होंने उन सभी ब्राह्मणोंको लड्डू, पूरी, साग बनवाकर बड़े ही आदर-प्रेमसे भोजन करवाया और दक्षिणा देकर विदा किया तथा भाई जीको सूचना दे दी कि आपके संकल्पानुसार कार्यकी व्यवस्था हो गयी है। भाईजी यह सुनकर प्रसन्न हो गये।

एक दिन भाईजीके सामने गदगद स्वरमें बोले कि अपनी करनी तो ऐसी नहीं देखता पर आपकी दयालुताकी ओर देखकर एक प्रार्थना करना चाहता हूँ कि अन्तिम समय-में मुझे भगवान्के दर्शन करानेकी कृपा अवश्य ही करें। भाईजीने उत्तर दिया कि आपकी निष्ठा हो तो कौन-सी बड़ी बात है।

मृत्युके कुछ समय पूर्व ये बीमार हो गये। पीठ पर बिषैला फोड़ा हो गया, जिसका बिष शरीरमें फैलने लगा।

डाक्टर निराश हो गये। भाईजी बीच-बीचमें उनसे मिलने जाते तो वे भगवान्के दर्शनोंवाली बात उन्हें याद दिला देते। स्थिति गम्भीर देखकर भाईजीने उनके समीप अखण्ड-संकीर्तन शुरू करा दिया। वे भी भरसक नाम-जपकी चेष्टा करते रहे।

कार्तिक शुक्ल १५ सं० १९९८ के दिन एक व्यक्ति उनके घरसे दौड़ता हुआ भाईजीके पास आया कि उनकी स्थिति बहुत खराब है, आप जल्दी चलिये। भाईजी बाबाको साथ लेकर उनके घर गये। भाईजी समझ गये कि अब ये थोड़ी ही देरके मेहमान हैं। भाईजीने बाबाको कहा—"जबतक मैं न आ जाऊँ, तबतक आप मत जाइयेगा। मैं जल्दी ही आता हूँ।" बाबा बीच-बीचमें उन्हें आश्वासन दे रहे थे। कि नाम मत भूलिये। उन्होंने बड़े करुण स्वरमें कहा— "स्वामीजी, तकलीफ बहुत है, नाम लिया नहीं जाता।"

मृत्युके दो घण्टे पूर्व भाईजी अपनी मस्तानी चालसे चलते हुए आये। ऐसे समयमें भाईजीकी एक विलक्षण मुद्रा हो जाती थी—एक गंभीर प्रसन्नता-पूर्ण मुद्रा मानों किसीको पहुँचाने आये हों। भाईजी उनके पास बैठ गये और बोले—"नाम-जप कीजिये, सामने भगवान्को देखिये।" हठात् तेजीसे नाम-जप करने लगे। भाईजी बोले देखिये कितनी तेजीसे नाम जप हो रहा है। सब लोग देखने लगे—कैसा जादू हो गया। अभी कुछ क्षण पहले पीड़ाके कारण नाम ले नहीं सकते थे, अब जीभ मशीनकी तरह नाम-जप कर रही है। भाईजी खेलकी तरह सब लोगोंको बुला-बुला कर दिखलाने लगे। बोले—देखो कितना सुकृति प्राणी है।

कितनी तेजीसे नाम-जप कर रहे हैं लोग हक्के-बक्केसे देख रहे थे। भाईजीने उनसे पूछा क्यों! भगवान्के दर्शन हो रहे न? उन्होंने गर्दन हिलाकर स्वीकृति दी। भाईजी बच्चेकी तरह उपस्थित लोगोंसे कहने लगे देखो, देखो, ये कहते हैं मुझे भगवान्के दर्शन हो रहें हैं। अब तो लोंगोंके पूछनेका ताँता-सा लग गया। उपस्थित परिवार-वाले, सत्सङ्गी लगभग २०-२५ व्यक्तियोंने उनसे पूछा—क्या भगवान्के दर्शन हो रहे हैं। और उन्होंने प्रत्येक बार गर्दन हिलाकर स्वीकृति दी। आँखे बन्द थी पर पूर्ण चेतना थी। सन्निपातका कोई चिह्न नहीं था। भाईजी बार-बार लोगोंसे कहते—कितनी विलक्षण बात है। विलक्षण ढंगसे मुसकुराते रहे। इसके बाद भाईजीने "स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या" वाली स्तुति की एवं बादमें गीताजीका सातवाँ अध्याय सुनाया—मानो ज्ञान-दान कर रहे हैं। इसके बाद उनके प्राण निकल गये।

पुत्री सावित्रीका विवाह

भाईजीकी इकलौती सन्तान सावित्रीबाईका शुभ विवाह श्रीशिवभगवानजी फोगलाके सुपुत्र श्रीपरमेश्वरप्रसाद-जीके साथ रतनगढ़में बड़ी धूम-धामसे मार्गशीर्ष शुक्ल १० सं० १९९८ को सम्पन्न हुआ। विवाहका मंडप घरमें ही सजाया गया एवं पूर्ण शास्त्रीय विधिसे सारे कार्य सम्पन्न करानेके लिये काशीके सुप्रसिद्ध पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री पधारे थे। भाईजीका परिचय क्षेत्र बहुत विस्तृत होनेसे इस अवसरपर दूर-दूरसे महानुभाव पधारे कई संत-महात्मा भी पधारे। इस समयका एक प्रसङ्ग उल्लेखनीय है—

विवाह की मुख्य जीमनवार (सज्जनगोठ) के समय

भोजन करनेवालोंका ताँता लग गया। भाँति-भाँतिकी मिठाइयाँ, पकवान बने थे। भाईजीके स्वभावको सभी जानते थे, चाहे निमन्त्रण मिला हो या नहीं सभीके लिये द्वार खुला था। अपार जन-समूह भोजन कर रहा था। भण्डारके कोठारीको ऐसा प्रतीत हुआ कि मिठाइयाँ कहीं कम न पड़ जायँ, अभी तो बारातने भोजन किया ही नहीं और भोजन करने वालोंकी संख्याका पता लगाना अत्यन्त कठिन है। भोजनकी सामग्री देखकर वह चिन्तित हो गया। घरके एक दो विशेष व्यक्तिके सामने उसने अपनी चिन्ता व्यक्त की। बात भाईजीके कान तक पहुँची। भाईजी मिठाई-भण्डारमें आये और कहा—दिखाओ तो सही कितनी मिठाई है, सब कहते हैं कि मिठाई कम पड़ गयी। ऐसा कहकर भाईजीने सब मिठाईयोंको अपनी नजरसे देखा और कहा लोग व्यर्थ ही कहते हैं कि मिठाई कम पड़ गयी। मिठाई कहाँ कम है ? कहते-कहते बाहर चले गये और दूसरे कार्योंमें लग गये। कोठारीके आश्चर्यकी सीमा न रही। जब उसने देखा कि सारी बारातके भोजन करनेके बाद भी मिठाइयाँ बच गयी हैं। उसका विश्वास था यह केवल भाईजीके मिठाई देखनेका ही फल था।

कालान्तरमें सावित्रीबाईके चार सन्तान हुईं, दो लड़के-सूर्यकान्त एवं चन्द्रकान्त और दा लड़कियाँ राधा एवं पुष्पा।

श्रीभगवन्नाम-प्रचारकी तृतीय योजना

भगवान्‌के आदेशानुसार भाईजी जहाँ भी अधिक दिन रहते श्रीभगवन्नामके प्रचारके आयोजन प्रारम्भ कर देते। दादरीसे आनेके बाद इस बार रतनगढ़में कुछ अधिक दिन

रहनेका मन था, अतः यहाँ भी अपने प्रिय कार्यमें लग गये। सर्वप्रथम मार्ग शुक्ल १५ सं० १९९६ से सात दिनोंका अखण्ड-संकीर्तन एवं कथाका आयोजन बड़ी उमङ्गसे प्रारम्भ किया। बाहरसे बहुत-से लोग आये, कई संत भी पधारे। दोपहरमें कथाका आयोजन होता एवं रात्रिमें भाईजी सत्सङ्ग कराते थे। इसी तरह अखण्ड-संकीर्तनके आयोजन रतनगढ़में भाद्र कृष्ण १०/१९९७, कार्तिक शुक्ल १०/१९९७ एवं फाल्गुन कृष्ण ५/१९९७ से प्रारम्भ हुए थे। विस्तार भयसे सबका विस्तृत वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। फाल्गुन कृष्ण १४ सं० १९९७ शिवरात्रिके दिनसे भाईजीके निवास-स्थान-पर १७ दिनोंके लिये अखण्ड-संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। चैतन्य जयन्तीतक यह आयोजन चलनेकी बात थी, परंतु भगवान्‌की विशेष कृपासे यह अखण्ड-संकीर्तन दो वर्षसे अधिक समयतक दिन-रात चलता रहा। फिर बैसाख सं० २०००से श्रावण सं० २००१ तक प्रातः ६ बजेसे रात्रि ११ बजे तक १७ घण्टे चलता रहा।

इसी बीच फाल्गुन कृष्ण पक्ष सं० १९९९में श्रीप्रभु-दत्तजी ब्रह्मचारी एवं श्रीहरिबाबा रतनगढ़ पधारे। भाईजी-का उत्साह और बढ़ गया एवं १७ दिनोंका विशाल महा-संकीर्तन एवं सन्त-समारोह आयोजन करनेका निश्चित हुआ उस समय दूसरे महायुद्धके कारण बंगाल एवं आसामसे बहुत मारवाड़ी अपने-अपने घर रतनगढ़ आये हुए थे। ऐसा अवसर भगवन्नाम-प्रचारके लिये विशेष उपयुक्त था। इसका थोड़ा-सा वर्णन श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके शब्दोंमें पढ़ें—

"मैं भाईजीसे मिलने उनके पैतृक स्थान रतनगढ़ गया

था। मुझसे बोले—'कुछ दिन रतनगढ़ रहिये। मैंने कहा—"क्या रहें। तुम्हारे यहाँ इतने सेठ लोग हैं, कोई उत्सव नहीं कराते!' बड़े ही उत्साहके साथ धीरे-गम्भीर भावसे बोले 'जब चाहें, जैसा चाहें, उत्सव कराइये।, मैंने कहा 'इस वर्ष नव-संवत्सर-उत्सव तो हमें मुजफ्फरनगरमें करना है, फिर कभी देखा जायेगा।' वे बोले—'शुभस्य शीघ्रम्।' नव-संवत्सर-उत्सव यहीं कीजिये। या १५ दिन यहाँ, १५ दिन मुजफ्फरनगरमें। तुरन्त निश्चय हुआ और उनके संकल्पसे रतनगढ़का उत्सव इतना भारी सफल हुआ कि मारवाड़के सभी लोग कहते थे कि ऐसा उत्सव 'न भूतो न भविष्यति।' बड़े-बड़े धनिकोंके बच्चे, जिनमें कई करोड़पति भी थे, दर्शकोंके जूते उठानेसे लेकर झाड़ू देना, पंखा झलना आदि छोटी-से-छोटी सेवा करनेको सर्वथा प्रस्तुत रहते थे। धनिक-समाजपर कितना भारी उनका प्रभाव था, यह दृश्य मैंने १५ दिन रतनगढ़ रहकर ही देखा। उन दिनों द्वितीय महायुद्धके कारण अधिकांश मारवाड़ी सेठ कलकत्ता छोड़कर अपने प्रान्तोंमें आ गये थे। वे भाईजीको प्राणोंसे अधिक प्यार करते और भाईजी उन सुकुमार किशोर बच्चोंके कंधों-पर हाथ रखकर जैसे अत्यन्त स्नेहशील पिता अपने प्यारे पुत्रोंसे बात करता है, वैसे उन्हें छोटी-से-छोटी, नीची-से-नीची सेवाके लिये आज्ञा देते और वे करोड़पति-लखपतियोंके सुकु-मार कुमार बड़े उल्लासके साथ उन आज्ञाओंका पालन करते भाईजी जिसे आज्ञा दे दें, वह उसमें अपना बड़ा सौभाग्य समझता।

हँसमुख इतने थे कि बात-बातपर हँसते रहते। मेरी

जिस बातको देखते उसीपर ठहाका मारकर हँस पड़ते। रतनगढ़में शोभ यात्रा निकली। वहाँ मरुभूमि होनेसे ऊँट बहुत है। मैं ऊँटपर उल्टा बैठकर नगर-कीर्तनमें निकला। मेरा मुख ऊँटके पूँछकी ओर था। मार्गभर मुझे देखकर खिलखिलाकर हँसते ही गये।............"

श्रीब्रह्मचारीजी ऊँटपर ऐसे इसलिये बैठे थे कि जिससे वे शोभा-यात्राकी भव्यता और विशालताको देख सकें। उनका ऊँट स्टेशनसे चलकर रेलवे पुलतक आ गया, परन्तु वे जुलूस का दूसरा किनारा नहीं देख सके। जुलूसमें कई कीर्तन-मण्डलियाँ, भगवान रामकी झाँकियाँ, श्रीकृष्णलीलाकी झाँकियाँ, बाजे आदि थे। स्थान-स्थानसे महान् सन्त, भक्त पधारे, भागवत तथा मानसके श्रेष्ठ कथाकार भी पधारे। भाईजीकी हवेलीके पीछेवाले नोहरेमें ही सन्त-सम्मेलनकी व्यवस्थाकी गयी थीं। दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार रहता—

प्रातः ५ बजेसे	६ बजेतक	पूज्य श्रीहरिबाबाका सामूहिक संकीर्तन
६ ,,	९ ,,	श्रीरामचरित मानसका आगे-पीछे बोलकर सामूहिक परायण
९ ,,	११ ,,	वृन्दावनसे आयी हुई रास-मण्डली द्वारा श्रीकृष्णलीला का आयोजन
११ ,,	१२ ,,	पूज्य श्रीहरिबाबाका सामूहिक संकीर्तन
२ ,,	६ ,,	कथा- प्रवचन आदि

सायंकाल ७ बजेसे ८ बजे तक पूज्य श्रीहरिबाबाका सामूहिक संकीर्तन

८से११तक वृन्दावनसे आयी हुई रास-मण्डली द्वारा भी चैतन्यलीलाकाआयोजन

इस सन्त-सम्मेलनके दर्शनके लिए सैकड़ों मील दूरसे लोग आये। बहुतसे लोग पूरे समय तक रहे। श्रीरामनुज-सम्प्रदायके श्रीरघुनाथदासजी जो वृन्दावनके श्रीरंगजीके मन्दिरके प्रधान थे, अपने भावावेशकी स्थितिमें श्रीजयदेव-विरचित श्रीदशावतार-स्तोत्रम्का गायन करते। वे स्वयं तो भाव-सागरमें डूबते ही रहते, भक्तसमुदायको भी डुबा देते।

समारोहकी समाप्तिपर भाईजीने सभी संतो-महात्माओं को भाव-भीनी बिदाई दी। सभी अपने हृदयपर इस आयो-जनकी अमिट छाप लेकर लौटे।

चैत्र शुक्ल ५ सं० २०४० मासमें बृहद् विष्णु-यज्ञ आयोजित हुआ। इसमें भी बाहरसे कई लोग पधारे।

आध्यात्मिक स्थितिके संकेत

किसी भी संतके आध्यात्मिक जीवनके बारेमें कुछ भी लिखना अनधिकार चेष्टा करना है। प्रथम तो आध्यात्मिक स्थिति स्वसंवेद्य होती है, दूसरा कोई उसे जान भी नहीं सकता ये बातें तभी हृदयंगम हो सकती हैं जब भगवान्की कृपा से उस साधनावस्थामें कोई पहुँच सके। फिर भाईजीके बारेमें कुछ शब्दबद्ध करना और भी कठिन है, क्योंकि उनके माध्यमसे भगवान्ने जो लीला प्रस्तुत की वह एक उच्चकोटि-के आचार्य सन्त और व्रजभावके सर्वोच्च सन्तका एक अद्भुत समन्वय था, जो प्रायः देखनेमें नहीं आता। भाईजीने

कभी-कभी कतिपय एकनिष्ठ प्रेमीजनोंके समक्ष कुछ संकेत किये थे, उन्हींको शब्दबद्ध करनेकी यह अनधिकार चेष्टा मात्र है।

भाईजीकी प्रारम्भिक साधना श्रीसेठजीसे अधिक प्रभावित थी। श्रीसेठजी अधिकांश श्रीविष्णुभगवान्के ध्यान या निर्गुण-निराकारके स्वरूपका वर्णन करते थे। उसी अनुसार शिम्लापालमें भाईजीने साधना प्रारम्भ की तो रवि वर्माके चित्रके आधारपर श्रीविष्णुभगवान्का ध्यान करने लगे और लगभग ६ महीनेमें ही चलते-फिरते, उठते-बैठते श्रीविष्णुभगवान्का विग्रह सामने रहने लगा। इसे भाईजी कोई सिद्धि नहीं मानते थे, अभ्यासकी प्रगाढ़ता मानते थे। फिर बम्बईमें जब साधना प्रारम्भ हुई तो निर्गुण-निराकारकी उच्च स्थिति प्राप्त की और बीचमें श्रीरामके दर्शन हुए। फिर सं० १९८४ में 'भगवन्नामाङ्क' निकलनेके एक-दो महीने पहले अपने आप अव्यक्तके स्थानपर श्रीविष्णुभगवान्का ध्यान होने लगा। उन्हें दोनों ध्यानोंमें कोई अन्तर नहीं लगा—उनकी मान्यता थी जो अव्यक्त है, वही व्यक्त है; जो निर्गुण-निराकार है, वही सगुण-साकार है। इसके पश्चात् भगवान्के दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा होनेपर आश्विन सं० १९८४ में जसीडीहमें भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शन बहुत व्यक्तियोंके सामने हुए यह एक आध्यात्मिक जगत्की सुदुर्लभ घटना थी जो किसी भी तरह गुप्त नहीं रखी जा सकती थी। ये दर्शन त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में सर्वोच्च एक देवके दर्शन थे, अवतारी महाविष्णुके नहीं थे। कुछ समय बाद अवतारी महाविष्णुके दर्शन हुए। इसका

रहस्य श्रीकृष्णने बादमें खोला तब पता लगा। सं० १९८८ में 'श्रीकृष्णाङ्क' निकालनेकी तैयारीके समय श्रीकृष्णकी लीलाओंका गम्भीर चिन्तन, अनुशीलन हुआ। गौड़ीय सम्प्रदायके कुछ भक्तिपरक ग्रन्थोंका भी अध्ययन हुआ। फलस्वरूप भगवान्‌की लीला देखनेकी लालसाका प्रादुर्भाव हुआ। संस्कार तो बम्बईमें श्रीमद्भागवतके स्वाध्यायके समयसे ही थे। इन्हें ऐसा भान हुआ कि भगवान् कह रहे हैं--'मेरे विष्णुरूपमें तो दो ही प्रकारकी लीला होती है—अवतार लीला या वैकुण्ठकी नित्य लीला। लीला सर्वोच्च रूपमें और पूर्णरूपमें हुई है—श्रीकृष्ण स्वरूपमें। तुमको श्रीकृष्ण स्वरूपका अनुभव होने लगेगा।' उस रातको भाईजीके मनमें बड़ा आनन्द रहा और स्वप्नमें श्रीकृष्णके दर्शन हुए। पहले गीतावक्ताके दर्शन हुए पीछे वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण-के। उसी समय ऐसा भान हुआ कि वे कह रहे हैं--"जो गीतावक्ता है, वे ही वृन्दावन विहारी हैं। इनकी तुमपर बड़ी कृपा है। इन्होंने तुम्हें अपना लिया है। इनकी लीला अब तुम्हें देखनेको मिलेगी।" दूसरे दिन भगवान् विष्णुके ध्यानके समय अपने आप वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णका ध्यान होने लगा। ध्यान होते-होते वृन्दावनकी लीलाओंके दर्शन भी होने लगे। एक बार भाईजीने बताया था कि "बाहरसे जीवनको साधारण रखनेकी प्रेरणा तो जसीडीहके बादसे ही हो गई थी किन्तु स्पष्ट आदेश तो श्रीकृष्णने ही दिया। इसीलिये आप याद करके देखेंगे तो सं० १९८४से सं० १९-८८के पहले जीवनमें गम्भीरता अधिक थी।" लीलाओंके दर्शन होते-होते लीलामें प्रवेश भी होने लग गया। इस

बन्धमें उन्होंने बताया कि—"लीलामें प्रवेश होता है इसमें मेरी इच्छाकी प्रधानतासे नहीं होता। जब वे चाहते हैं, तब सहसा लीलामें मुझे खींचकर सम्मिलित कर लेते हैं। मेरे चाहनेसे न तो मैं ही जा सकता हूँ, न किसी दूसरेको ले जा सकता हूँ। वहाँ इस शरीरसे नहीं जा सकता। चार-चार, पाँच-पाँच घण्टे वहाँकी लीलाओंको देखनेका सुअवसर मिलता है।" यह बात लगभग सं० १९९४की है। 'कल्याण'के सम्पादन और अन्य सेवा कार्योंमें अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी उस दिव्य लीला-राज्यमें रहते थे। फिर श्रीकृष्णके स्थानपर श्रीराधा-कृष्ण आ गये। अनुमानतः जब भाईजी सं० १९९६में दादरी एकान्त सेवनके लिये गये थे, उस समय वे श्रीराधा-कृष्णकी मधुर लीलाओंमें प्रवृष्ट रहते थे। लगभग सं० १९९७में एक महात्माको मीराबाईके साक्षात् दर्शन हुए। उन्होंने उनसे कई प्रश्न किये और भाईजीकी स्थितिके बारेमें प्रश्न किया तो मीराबाईने उत्तर दिया कि "हनुमानप्रसादका सूक्ष्म शरीर बिलकुल श्रीप्रियाजीका स्वरूप हो गया है।" इस बातपर पूरा विश्वास करना या न करना अपने अपने अन्तःकरणकी स्थिति पर निर्भर है। पर भाईजी इस स्थितिको बहुत वर्षोंतक बाहरके जीवनमें प्रकट नहीं होने दिये। सं० २०१८ के पश्चात् जब भाईजी न चाहने पर भी घण्टों तक बाह्य-चेतना शून्य रहने लगे, जिसे 'भाव-समाधि'की संज्ञा दी गयी है तब किंचित् आभास लोगोंको होने लगा। इस स्थितिका विवेचन शब्दों द्वारा संभव ही नहीं है। नारदजीने प्रेमका स्वरुप बताया है—"अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्", "मूकास्वादनवत्"। इस

स्थितिका संकेत करनेके लिए "भाव समाधि," "भागवती-स्थिति," "महाभावमयी स्थिति," "स्वरूप-स्थिति," "दिव्य प्रेम राज्यमें स्थिति" आदि किसी भी शब्दका व्यवहार किया जा सकता है। भाईजीको यह स्थिति संभवतः सं० १९९८ तक प्राप्त हो गयी थी, पर इसके कुछ बाहरी लक्षण प्रकाश-में सं० २०१८के बाद आने लगे। यह तो भाईजीके अन्त-र्राज्यकी बात थी, बाह्यमें तो भगवान्‌को उनके द्वारा अध्यात्म जगतकी अभूतपूर्व सेवा करानी थी इस लिये सभी प्रधान-प्रधान स्वरूपोंकी श्रीराम, श्रीशिव, शक्ति आदि-की अनुभूति भी करायी। सं० १९९० में रतनगढ़में जब भाईजी 'शिवाङ्क' की तैयारी कर रहे थे, तब भगवान् शंकर दिखायी दिये और देखते-देखते विष्णु हो गये और विष्णुसे फिर शिव हो गये तथा हँसते रहे दोनों ही रूपोंमें। इसी प्रकार जब "शक्ति-अङ्क"की तैयारी कर रहे थे उन दिनों भाईजी को शक्ति तत्वकी कृपा प्राप्त हुई थी। यही बात अन्य स्व-रूपोंके सम्बन्धमें है। इस तरह देह इस लोकमें कालक्षेप करता और वे स्वयं आराध्यके माधुर्य-रसमें लीन रहे।

अजमेरमें उपचार

बैसाख कृष्ण ११ सं० २००० को भाईजी अपने मित्र श्रीजयदयालजी डालमियाके बड़े लड़के विष्णुहरिके विवाह-में सम्मिलित होने दिल्ली गये। वहाँसे स्वर्गाश्रम सत्संगके लिये चले गये। फिर श्रीपरमेश्वरजी फोगलाके अस्वस्थता-के कारण स्वर्गाश्रमसे बम्बई गये। वहां कई बार सत्संग-भवनमें सत्संग कराते थे। रतनगढ़ लौटने पर भाईजी

बीमार हो गये। कई रोगोंके साथ ही बवासीरकी एक नई बीमारी पैदा हो गयी। जन्माष्टमीके अगले दिन उपचारके लिए दिल्ली रवाना हुए पर वहाँ सुधारके स्थानपर मलेरिया बुखार तथा भयंकर सिर-दर्दके कारण स्थिति अधिक बिगड़ गयी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि शरीर भी रहेगा या नहीं। अतः सभी स्वजनोंको तार देकर दिल्ली बुला लिया। दिल्लीमें विशेष लाभ न देखकर आश्विन शुक्ल ११/२०००को अजमेर गये। वहाँसे पुष्कर दर्शनार्थ गये। अजमेरमें डा० अम्बालालकी चिकित्सासे एक बार आराम हो गया। वहाँसे काँकरौली, नाथद्वारा, उदयपुरकी यात्रा करते हुए कार्तिक शुक्ल १२/२००० को रतनगढ़ लौट आये। पुनः कष्ट बढ़ जानेसे मार्गशीर्ष शुक्ल १०/२०००को रतनगढ़से रवाना होकर बीकानेर होते हुए अजमेर गये। वहाँ गुदाके फोड़ेका आपरेशन हुआ। वहाँ श्रीप्यारेलालजी डागा, स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराज, रामसनेहीजी एवं डा० अम्बालालने बहुत प्रेम पूर्वक तत्परतासे सेवा की। बादमें ऐसा भी पता लगा कि यह रोग भाईजीने किसी अन्यका अपने शरीर पर ले लिया था। वहाँसे लिखे एक पत्रमें भाईजीने उस समय का हाल लिखा था—

श्रीहरिः

अजमेर

प्रिय भैया……… मार्गशीर्ष शुक्ल १४/२०००

सप्रेम हरिस्मरण।

शरीरका हाल पूछा सो शरीरका हाल वैसे ही हैं घावकी हालत डाक्टर अच्छी बताते हैं। आपरेशनके बाद

कल कैस्टर आयलसे टट्टी लगायी गयी थी, इससे तकलीफ रही। दर्द कुछ ज्यादा रहा। बेचैनी भी रही। आज कल-से ठीक है। तुम्हारा पत्र पढ़कर गद् गद् होगया। भैया सच है तुम सब मेरे ही हो। मेरे चित्तमें कोई अशान्ति नहीं है। पद-पदपर भगवान्‌की कृपाका अनुभव होता है। यद्यपि इस बारकी बीमारी बहुत ही पीड़ाजनक रही.........परन्तु इसमें भी समय-समयपर भगवान्‌की मंगलमयी कृपा-की झाँकी तो होती ही रही है, यह जगत भगवान्‌का नाट्य मंच है। सभी रसोंके अभिनयकी आवश्यकता है। परन्तु प्रत्येक अभिनयके अन्तरालमें वही है। असलमें तो खेल और खिलाड़ी, दोनों ही उसीके मंगलमय स्वरूप हैं।............

तुम्हारा—
हनुमान

माघ शुक्ल ५ सं० २००० को भाईजी अजमेरसे रतनगढ़ लौटे। कुछ दिन तो बवासीरका कष्ट रहा फिर स्वतः ही ठीक हो गया।

रतनगढ़में भाईजीने एक चक्षुदान-यज्ञका आयोजन किया और भिवानीके प्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सकको बुलाकर एक विशाल कैम्प लगवाया, जिसमें हजारोंकी संख्यामें ग्रामीण जनताने आपरेशनका लाभ उठाया और लोग आँखों-की ज्योति प्राप्त करके लौटें।

चैत्र शुक्ल १ सं० २००१ से भाईजीके निवास स्थानपर १६ ब्राह्मणोंद्वारा श्रीमद्भागवतके १०८ पाठका अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ और उसके पश्चात् सात दिनोंका अखण्ड-संकीर्तन आयोजित हुआ।

आर्थिक व्यवस्था

बहुत लोगोंके मनमें एक जिज्ञासा बनी हुई है कि भाईजीका खर्च कैसे चलता था। व्यापार तो उन्होंने ३५ वर्षोंकी उम्रसे छोड़ दिया था, बड़ी पूँजी उनके पास थी नहीं, फिर खर्चकी क्या व्यवस्था थी। कई लोगोंको तो यह भ्रम था कि भाईजी अपना खर्च 'कल्याण'से चलाते हैं। एक दिन भाईजीके एक परिचित सज्जन आये और बातें करते हुए पूछने लगे कि 'कल्याण'से कितने रुपये बच जाते हैं। भाईजीने उन्हें समझाया कि 'कल्याण'में प्रायः नुकसान ही रहता है या बराबर-सा हो जाता है। उन्होंने कहा कि यह सब तो ठीक है मैं तो घरकी बात पूछ रहा हूँ। उनके यह समझमें नहीं आ रहा था कि बिना मुनाफेके इतना परिश्रम कोई क्यों करेगा? भाईजीने फिर समझाया कि मैं 'कल्याण'से एक भी पैसा नहीं लेता हूँ और 'कल्याण' पैसा कमानेकी दृष्टिसे नहीं निकाला जाता है। उनके यह बात समझमें आयी या नहीं, परन्तु भाईजीका 'कल्याण'से या गीताप्रेससे किञ्चित् भी अर्थोपार्जनका सम्बन्ध नहीं था, यह बात निर्विवाद है। यहाँतक कि जिस वाटिकामें वे गोरखपुरमें रहते थे, वह श्रीसेठजी और उनके एक सम्बन्धीने खरीदी थी, बादमें उसे उन्होंने उस ट्रस्टको दे दिया जो गीताप्रेसका सञ्चालन करता था। ट्रस्टमें देनेके बाद भाईजी अपने रहनेके हिस्सेका किरायातक गीताप्रेसको देने लग गये थे। जब भाईजी बम्बई छोड़कर गोरखपुर आये थे, उस समय एक स्नेही सज्जनने इनकी माता और पत्नीके नामसे बीस हजार रुपये जमा कर दिये थे, उसीके ब्याजसे

परिवारका खर्च चलता था। मितव्ययता भाईजीके जीवनमें बचपनसे ही थी। अपने शरीरपर अन्ततक उन्होंने अनावश्यक खर्च नहीं होने दिया। परिवारके नये सदस्योंपर परिवर्तित समयकी झलक थी। भाईजीने अपने वसीयतनामेमें इस सम्बन्धमें लिखा है—

".........पर भगवान्की कृपासे किसी भी मित्रसे कभी आर्थिक सम्पर्क नहीं आया। आर्थिक सम्पर्क केवल एक उस परिवार और व्यक्तिसे रहा जो अपनेमें तथा मुझमें 'स्व-पर'का भेद सहज ही नहीं मानता। वरन् ऐसी कल्पनासे भी जिसे दुःख होता है।"

स्वामी श्रीशरणानन्दजी रतनगढ़में

श्रावण सं० २००१ में भाईजीके निवास-स्थानपर शिवमहिम्न स्त्रोत्रका अखण्ड-पाठ कई दिनोंतक हुआ। श्रावण शुक्ल २।२००१ को स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज रतनगढ़ पधारे और भाईजीके पास ही कई दिनोंतक रहे। फिर उनके साथ भाईजी बीकानेर गये और वहाँ बीकानेरके महाराजासे रतनगढ़में जनताके लिये पानीके नलका उद्घाटन उनके हाथसे करानेके लिये मिले। भाईजीकी प्रार्थनापर उन्होंने उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया। मार्गशीर्ष कृष्ण ५/२००१ को भाईजी काशीमें श्रीकरपात्रीजीने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया था, उसमें सम्मिलित होने गये। वहाँ 'हिन्दू-कोड-बिल'के विरोधमें भाईजीने प्रभावशाली भाषण दिया। वहाँसे गोरखपुरमें गोविन्द भवन ट्रस्टकी मीटिङ्गमें सम्मिलित होकर रतनगढ़ लौट आये। पौष

शुक्ल २ सं० २००१ से माघ कृष्ण ५ तक रतनगढ़में विश्व-कल्याणके लिये १०८ रामचरितमानसके सामूहिक पारायण एवं १८ दिन भागवतके अखण्ड पाठका अनुष्ठान कराया। पुनः प्रथम चैत्र शुक्ल ६/२००१ से द्वितीय चैत्र शुक्ल १/२००२ तक पूरे पुरुषोत्तम मासमें बड़े उत्साहसे अखण्ड-संकीर्तन एवं भागवतके अखण्ड पाठका आयोजन किया। इन्हीं दिनों भाईजीको बीकानेरकी लेजिस्लेटिव-एसेम्बलीका सदस्य चुना गया जो उस समय एक प्रतिष्ठित पद समझा जाता था किन्तु भाईजीने तत्काल त्याग-पत्र लिखकर भेज दिया।

रतनगढ़में जल-समस्याका हल

भाईजीने रतनगढ़के पानीके वितरणकी समस्याका हल "श्रीशार्दूल-फ्री-सप्लाई वाटर-वर्क्स" का उद्‌घाटन बीकानेर महाराजके हाथसे करवाया, उसकी भी एक पृष्ठभूमि है। रतन-गढ़में पानीके नल न होनेसे वहाँके निवासी कष्टका अनुभव करते थे। श्रीदुर्गादत्तजी थरड़का कुआँ भी था, जमीन भी थी एवं वे अपने व्ययसे पानीकी टंकी बनाकर जल-संकटको दूर भी करना चाहते थे, पर कुएँके पास जो इनकी खाली जमीन थी, जहाँ ये टंकी बनवाना चाहते थे, वह जमीन मुसलमान लोग अपने ताजिये आदि रखने और अन्य कामोंमें लाते थे। उस जमीनमें जल-व्यवस्थाका कार्य होनेसे मुसलमानोंके और अन्य पड़ोसियोंके स्वार्थमें ठेस लगनेसे उनके विरोधके कारण यह योजना सफल नहीं हो रही थी। सरकारी अधिकारियों-से मिलकर भी वे सफल नहीं हो पाये। भाईजीको उन्होंने सारी बातें कही कि एक सार्वजनिक हितका कार्य कुछ स्वार्थी लोगोंके कारण सफल नहीं हो रहा है। भाईजीने इसके बीच-

में पड़ना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि व्यर्थमें दंगा होनेका भय था एवं जब सरकारी अधिकारी भी इसके पक्षमें नहीं थे तो सफलता कठिन थी। इसके पश्चात् दुर्गादत्तजी और भी हताश हो गये। पर जैसे तुलसीदासजीने भगवान् श्रीराम-चन्द्रजीसे प्रार्थना जानकीजीके माध्यमसे कहलायी—"कबहुँक अंब अवसर पाइ" वैसे भाईजीके जीवनमें भी कई बार उनसे किसी बातको स्वीकार करानेके लिये लोग मैया (भाईजीकी धर्मपत्नी) की शरण लेते थे। इसी तरह दुर्गादत्तजीने मौका देखकर मैयासे कहा कि कुआँ अपना, जमीन अपनी, पैसा अपना और सभीको पानीका आराम हो जाय; इसकी व्यवस्था नहीं हो रही है। भाईजीको भी कहा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। आप मौका देखकर भाईजीसे कहें तो शायद काम हो जाय। मैयाने कहा—इसमें तो सारे नगरको पानीका आराम हो जायगा, चलिये अभी उनसे कहती हूँ। दोनों भाईजीके पास आये और मैयाने कहा—"आप इनका यह काम क्यों नहीं करवा देते हैं?" भाईजीने उत्तर दिया—"कोई मेरे घरका काम है क्या? इसमें मुसलमानोंके साथ दङ्गा होनेका डर है।" मैयाने उत्साह दिलाया कि—"आपकी योग्यता और जान-पहचान कब काम आयेगी? सारे नगरको पानीका आराम हो जायगा।" भाईजीने कहा—सोचूंगा। थोड़ा सोचकर दुर्गादत्तजीको कहा कि एक तरीका तो सूझा है, काम तो आपका हो जायगा पर उसमें नाम थरड़ोंका नहीं रहेगा। दुर्गादत्तजीको यह बात स्वीकार थी।

भाईजीको बीकानेरकी तत्कालीन महारानीजी अपना धर्म-भाई मानती थीं एवं श्रद्धा रखती थीं। रक्षा-बन्धनपर

राखी भी भेजती थीं। भाईजी ने उनको पत्र लिखा कि हमारे एक स्वजन रतनगढ़में वाटर-वर्क्स बनवाना चाहते हैं, जिससे सारे नगरको पानीकी सुविधा हो जाय। इस वाटर-वर्क्सका नामकरण श्रीबीकानेर-महाराजके नामपर होगा "श्रीशार्दूल-फ्री-सप्लाई वाटर-वर्क्स।" यहाँके कुछ लोग अड़चन डाल रहे हैं। महाराजाधिराज बीकानेर-नरेश-को प्रार्थना पत्र लिखा जा रहा है। आप व्यक्तिगतरूपसे अनुरोध कर दें कि वे इसके लिये राजाज्ञा प्रदान कर दें।

बीकानेर-महाराजाको प्रार्थना-पत्र लिखा गया। जब श्रावण शुक्ल १०/२००१ को भाईजी स्वामी शरणानन्दजीके साथ बीकानेर गये तो बीकानेर-महाराज एवं महारानीसे मिले और इस विषयमें बातचीत की भाईजीकी सूझ सही निकली। वाटर-वर्क्स निर्माणके लिये राजाज्ञा हो गयी एवं उद्घाटनके लिये महाराजाधिराजने पधारना स्वीकार कर लिया। जब मुसलमानोंको पता लगा तो एक बार तो दौड़-धूपकी पर राजाज्ञाके सामने कुछ वश नहीं चला एवं "श्रीशार्दूल-फ्री-सप्लाई वाटर-वर्क्स" का निर्माण हो गया और साथ ही रतनगढ़को सारी जनताका जल सङ्कट दूर हो गया।

गीताप्रेसमें हड़ताल

भाईजी रतनगढ़से चलकर ज्येष्ठ शुक्ल १ सं२००२ को गोरखपुर आगये। गीताप्रेसके कर्मचारियोंमें पर्याप्त असन्तोष था। श्रावण सं० २००२में भाईजीने ट्रस्टियोंको समझाकर कर्मचारियोंको आर्थिक सुविधायें दिलायीं। एक-

बार तो समस्या टल गई पर नेताओंने कर्मचारियोंको भड़का कर थोड़े समय बाद ही हड़तालका नोटिस दे दिया भाईजी-ने समस्याको सुलझानेका बहुत प्रयत्न किया, कई बार दिन भर प्रेसमें रहे, किन्तु स्थिति सुलझ नहीं सकी। कर्मचारी बातपर अडिग रहे। कोई रास्ता न देखकर प्रबन्धकोंने ६-७-१९४६ (आसाढ़ शुक्ल ८ सं० २००३)को अनिश्चित-कालके लिये प्रेस बन्द करनेका नोटिस द्वारपर लगा दिया। हड़ताल लगभग डेढ़ मासतक चली। भाईजीके जीवनकाल-में प्रेसकी तालाबन्दीका यह सबसे लम्बा अवसर था। अन्तमें भाईजीके कहनेसे बाबा राघवदासजी मध्यस्थताके लिए राजी हो गये और उनके प्रयाससे हड़ताल वापस ले ली गयी।

नोआखाली कांडसे पीड़ित हिन्दुओंकी सहायता

सं० २००३ में भारत-स्वतंत्रता प्राप्तिके समय देशमें एक हृदयविदारक दृश्य उपस्थित होगया। हजारों-हजारों व्यक्ति कालके मुँहमें चले गये, असंख्य लोगोंका घर-बार सभी कुछ चला गया, बहू-बेटियोंपर हृदय-विदारक अत्याचार हुए। उस समयके दृश्यकी आज भी स्मृति आने पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। भाईजी जैसे संवेदनशील व्यक्ति-के लिए निरपराध जनतापर ऐसे अमानुषिक अत्याचार देख कर चुप रहना संभव ही नहीं था। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तानसे भागकर आये हुए लोगोंकी करुण-कथायें सुन कर भाईजीके नेत्रोंसे अश्रु-धारा बहने लगती थी। भाईजी हर संभव प्रयास करनेमें लग गये। नोआखाली इन अत्या-चारोंका एक मुख्य स्थान था। महामना मालवीयजी उन दिनों रोगग्रस्त थे एवं इन अत्याचारोंकी गाथायें सुनकर उनके

हृदयको बड़ा धक्का लगा और उनका देहान्त हो गया। उनकी स्मृतिमें भाईजीने 'कल्याण' का एक श्रद्धाञ्जली अंक निकाला, जिसमें हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिये अनेक योजनायें प्रस्तुत की गयीं। बादमें उस अङ्कको सरकारने जब्त कर लिया। पर भाईजी ऐसे अवसरोंपर हमेशा ही निर्भीक रहे।

भाईजीने गीताप्रेससे सहायताके लिए एक स्वयं-सेवक दल नोआखाली भेजा। जिनमें मुख्य थे—श्रीगिरधारी बाबा, श्रीकृष्णदासजी बंगाली एवं श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल। इसी समय गोरखपुरके एक बंगाली रेलवे कर्मचारीका परिवार नोआखालीमें रहता था। परिवारको विपत्तिग्रस्त समझकर वह दौड़कर भाईजीके पास आया और बिलख पड़ा। भाईजीका हृदय द्रवित हो गया और तत्काल श्रीगिरधारी बाबाको बुलाकर स्थितिसे अवगत कराया। भाईजीके आशीर्वादसे श्रीगिरधारीबाबा उस परिवारको भीषण विपदासे निकालनेमें सफल हुए और परिवारको सुरक्षित रूपसे गोरखपुर भेज दिया। नोआखाली जाते समय श्रीगिरधारी बाबा काशीमें 'हिंन्दू विश्वविद्यालयमें' श्रीमहामना मदनमोहन मालवीयजीसे मिले। वे रोग-शय्यापर पड़े थे। कमरेके बाहर जो सज्जन बैठे थे उन्होंने पूछा—'कहाँसे आये हैं?' श्रीगिरधारीबाबाने कहा—'गोरखपुरसे भाईजी श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दारके पाससे।' वे सज्जन तुरन्त अन्दर गये और मालवीयजीसे कहा— 'एक सज्जन पोद्दारजीके पाससे आये हैं ओर आपके दर्शन करना चाहते हैं।' तुरन्त आज्ञा हुई उन्हें बुला लीजिए।

श्रीगिरधारी बाबाने प्रणाम किया तो महामनाने पूछा—

"भाईजी ठीक हैं न ? कैसे आये हो ? उत्तर दिया--'नोआखाली जा रहा हूँ। भाईजीने लोगोंकी सहायतार्थ वहाँ एक स्थानपर कैम्प खुलवा दिया है।' वे बोले—भाईजी तो हिन्दू-धर्मके प्राण हैं। वे ऐसे पुण्यात्मा हैं, जिससे हमको बहुत बल मिलता है।' गिरधारी बाबाने अनुभव किया कि मालवीयजीके हृदयमें भाईजीके लिये कितना ऊँचा स्थान है। उनसे आशीर्वाद लेकर आगेकी यात्रा-पर चले गये। इस तरहके सहायता कार्य भाईजी जब भी अवसर आता, करते ही रहते थे।

आसाम यात्रामें एक चमत्कार

सं० २००३ कार्तिक कृष्ण पक्षमें भाईजी गोरखपुर-से आसाम यात्रापर गये। वहाँ एक बार गोलाघाटसे तिनसुकिया बस द्वारा जा रहे थे। रात्रिका समय था। एक स्थानपर सँकरे रास्तेसे बस जा रही थी, उसी समय एक नौकर जोरसे चिल्लाया--'पानी-पानी।' जोरसे अचानक चिल्लानेसे ड्राइवरका हाथ काँप गया और स्टियरिङ्ग हिल गया। बस ढालपर थी, बसका पहिया स्लिप कर गया और बस खाईकी ओर गिरने लगी। उस समय ईश्वरके अतिरिक्त और कोई सहायक नहीं था। भाईजीने दोनों हाथ ऊपर उठाकर 'नारायण, नारायण, नारायण, नारायण' का उच्च स्वरसे घोष किया। नारायण नामकी टेर लगाने भरकी देर थी कि बस एक स्थानपर ठहर गयी। पेड़के एक तनेसे टकराकर, उससे अटककर रुक गयी। बस कुछ क्षतिग्रस्त हुई एवं ड्राइवर और कुछ लोगोंको हलकी-सी चोट आयी पर भाईजी और अधिकांश लोग साफ-साफ बच गये।

भाईजी यात्रासे सकुशल गोरखपुर लौट आये ।

हिन्दू महासभाका गोरखपुरमें अधिवेशन

देश-विभाजनके समय हिन्दू जातिपर जो अमानवीय अत्याचार हुए, उस समस्याके समाधानपर विचारार्थ हिन्दू महासभाका एक अधिवेशन पौष शुक्ल १ एवं २ सं० २००३को गोरखपुरमें हुआ । लगभग ६-७ हजार प्रतिनिधियोंने इसमें भाग लिया । सभीके भोजनादिका प्रबन्ध भाईजीके नेतृत्वमें ही हुआ । दो दिन भाईजी इसीमें पूरे व्यस्त रहे एवं दोनों दिन मंचपर भाईजीने बड़े ओजस्वी भाषण दिये । नोआखाली काण्डके लिये हिन्दुओंको संगठित होकर कार्य करनेकी सलाह दी । अधिवेशन पूर्ण सफलताके साथ समाप्त हुआ । माघ कृष्ण ७/२००३को श्रीविष्णुमन्दिरमें हिन्दू राष्ट्र-सेवा संघके संकीर्तनके प्रेम सम्मेलनमें भाईजी गये एवं सबसे हृदय-से-हृदय लगाकर प्रेमसे मिले । प्रेमी मित्रोंने इस दिन अपने मनकी उमंगें पूर्ण की ।

प्रयागकी अर्ध-कुम्भीपर अखण्ड-संकीर्तन

माघ कृष्ण ९ सं० २००४से माघ शुक्ल ९ तक गीता-प्रेसकी ओरसे प्रयागकी अर्ध-कुंभीके अवसरपर अखण्ड-संकीर्तन एवं सत्संग प्रवचनका आयोजन किया गया । भाईजी इसमें सम्मिलित होनेके लिये गोरखपुरसे गये । उस समय प्रयागमें दूर-दूरसे लोग एकत्रित होते हैं । इसी दृष्टिसे भगवन्नाम प्रचारके लिये यह आयोजन किया गया था । संतोंके प्रवचन एवं अखण्ड-संकीर्तनसे बहुत लोगोंने लाभ उठाया ।

श्रीसेठजीका नेत्र-ऑपरेशन

श्रीसेठजीके नेत्रोंका ऑपरेशन करानेकी बात कई दिनों-

से सोची जा रही थी। अन्ततोगत्वा भाईजीके परामर्शसे भिवानी जाकर वहाँके नेत्र-विशेषज्ञसे ऑपरेशन करानेका निश्चय किया गया। भाईजी भी श्रीसेठजीके साथ गोरखपुरसे फाल्गुन शुक्ल ११ सं० २००५ को रवाना होकर गये। रास्तेमें दिल्लीमें श्रीसेठजी एवं भाईजीने 'हिन्दू-कोड-बिल'के विरोधमें प्रवचन दिया। भिवानीमें भाईजीकी उपस्थितिमें श्रीसेठजीके नेत्रोंका ऑपरेशन हुआ।

श्रीराम जन्मभूमि उद्धारके लिये अयोध्यां यात्रा

कहते हैं श्रीरामजन्मभूमि पर जो भव्य-मन्दिर महाराज विक्रमादित्यने बनवाया था, उसे बाबरने ध्वस्त करा दिया। तबसे उस पवित्र स्थानके लिये अनेक हिन्दू-मुस्लिम उपद्रव हुए किन्तु आर्य-जाति किसी-न-किसी तरह अपना अधिकार जमाये ही रही। पौष सं० २००६ में अयोध्यामें श्री-रामजन्मभूमि-मन्दिरमें स्थापित मूर्तिसे एक ऐसी चामत्कारिक किरण छिटकी जिसकी प्रभासे सभी भक्त आनन्द विभोर हो गये। यह शुभ समाचार विद्युत-प्रवाहकी भाँति चारों ओर फैल गया। मामला कोर्टमें गया। श्रीवीरसिंहजी, सिविल जज, फैजाबादने सरकारको आदेशात्मक सूचना दी कि 'जबतक वादका अन्तिम निर्णय न हो जाय, तबतक जहाँपर मूर्ति विराजमान है, वहीं पर वह सुरक्षित रहे और विधिवत् उसकी पूजा-सेवादि होती रहे।'

इस चामत्कारिक घटनाकी सूचना भाईजीको भी प्राप्त हुई। उनसे इस कार्यमें सहायता देनेकी प्रार्थनाकी

गयी। भाईजी इस संवादसे बड़े प्रसन्न हुए। वे पौष शुक्ल सं० २००६ में स्वयं अयोध्या गये और अपने प्रवचनों एवं उपदेशों द्वारा उन्होंने सरकारकी गति-विधियोंसे निराश जनता एवं कार्यकर्ताओंको प्रोत्साहित और आशान्वित किया। उस अवसरपर वहाँ लगभर्ग पंद्रह सौ रुपये मासिक व्ययकी आवश्यकता थी। इस समस्त व्ययका भार भाईजीने सानन्द उठा लिया। इस महान् कार्यके लिये भाईजीने देशके धन-पतियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया, जिससे इस कार्यके लिये अर्थकी व्यवस्था होनेमें बड़ी सुविधा हुई। मासिक व्ययके अतिरिक्त अभियोग-सम्बन्धी व्यय आदिके लिये कभी-कभी विशेष आवश्यकता पड़ जाती थी, उसके लिये गीतावाटिकाका द्वार प्रबन्धकोंके लिये सर्वदा खुला था।

इतना ही नहीं भाईजीने इस वादके सम्बन्धमें ऐसे शिक्षित तथा इस्लाम-धर्मके ज्ञाता मुसलमानोंकी खोज की, जो तर्कतः श्रीरामजन्मभूमिको मुस्लिम पूजा-गृह मानना इस्लाम-धर्मके विरुद्ध सिद्ध करते थे। जन्मभूमिके पक्षमें वातावरण-निर्माणके लिये उन मुस्लिम भाईयोंमेंसे दो-एकको अयोध्या भी भेजा। इसके अतिरिक्त भाईजीने देशके प्रधान राज्याधिकारियों, नेताओं एवं विद्वानोंको बार-बार पत्र लिखकर इस पुनीतकार्यमें सहयोग देनेकी प्रेरणा दी। इस तरह भाईजीने इस कार्यमें अपूर्व सेवाएँ की थीं।

साधन-समितिका पुनर्गठन

अयोध्यासे गोरखपुर लौटकर माघ कृष्ण ३ सं० २००६ को भाईजीने श्रीशुकदेवजी आदि कई साधकोंका विशेष

उत्साह देखकर साधन-समितिका पुनः सङ्गठन किया। पालनके लिये नियम बनाये गये जिसे सदस्योंने उत्साह-पूर्वक पालन करना स्वीकार किया। भाईजीके लिये तो यह प्रिय कार्य था क्योंकि वे अपने निकट रहनेवालोंका जीवन सदा ही साधनमें कटिबद्ध देखना चाहते थे। साधकोंके उत्साह-वर्द्धनके लिये रात्रिमें गीताप्रेस जाकर सत्सङ्ग कराना स्वीकार किया। रास्तेमें आते-जाते समय 'हरे राम' मन्त्रका कीर्तन उच्च-स्वरसे करते रहते। बहुत दिनोंतक यह क्रम उत्साह-पूर्वक चालू रहा। भाईजी साधकोंसे नियमोंके पालनके सम्बन्धमें पूछ-ताछ करते और उनका उत्साह बढ़ाते रहते।

स्वामी अखण्डानन्दजी द्वारा गोरखपुरमें भागवत-सप्ताह

स्वामीजी पूर्वाश्रममें पं० शान्तनु बिहारी द्विवेदीके नामसे भाईजीके निकट 'कल्याण' के सम्पादकीय विभागमें बहुत वर्षोंतक कार्य करते रहे। भाईजीके परिवारके सदस्यकी तरह हो गये थे। स्वामीजीके शब्दोंमें—"मैंने सन्यास अपनी आनुवंशिक घर-गृहस्थीसे नहीं, भाईजीके परिवारसे ही लिया।" स्वामीजी भागवतके प्रकाण्ड पण्डित माने जाते हैं। भाईजीने इनकी भागवतकी सप्ताह-कथाका आयोजन 'श्रीकृष्ण निकेतन' गोरखपुरमें करवाया। आयोजन बहुत विशाल रूपमें हुआ और भाईजीने परिवार एवं प्रेमीजनों सहित कथा-श्रवण की। कथाका आयोजन सं० २००७ फाल्गुन कृष्ण ५ से १३ तक हुआ।

श्रीसेठजीके पौत्रके विवाहमें बाँकुड़ा

चैत्र शुक्ल १३ सं० २००८ को भाईजी वायुयानसे कलकत्ता पहुँचे एवं दिनमें प्रेमीजनोंसे मिलकर रात्रिको रेल-से बाँकुड़ाके लिये प्रस्थान किया। चैत्र शुक्ल १५/२००८ को श्रीसेठजीके छोटे भाई श्रीमोहनलालजी (जिन्हें श्रीसेठजी-ने अपना पुत्र मान लिया था) के लड़के रामअवतारका विवाह था। संतोकी उपस्थिति हर अवसरपर अध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करती ही है। बाँकुड़ामें भाईजीने भगवान्‌की बाललीला पर बड़ा मनमोहक प्रवचन दिया। बारात रवाना होनेपर श्रीडूंगरमलजी लोहिया, श्रीसेठजी एवं भाईजीके आगे आगे नृत्य करते हुए संकीर्तन करा रहे थे। संकीर्तन करते हुए ही बारात विवाह-स्थल पर पहुँची। विवाहका लग्न अर्धरात्रिके बाद था, अतः भाईजी रातभर वहीं रहे। बैसाख कृष्ण ४/२००८को बाँकुड़ासे रवाना होकर आसनसोल, बनारस होते हुए गोरखपुर पहुँचे।

इसी वर्ष मार्गशीर्ष कृष्णपक्षमें गोरखपुरमें भाईजी अत्यधिक रुग्ण हो गये। कई दिनों तक व्याधि जनित कष्ट रहा, किन्तु अनुष्ठान करानेसे स्वास्थ्यमें आशातीत लाभ हुआ।

गोरखपुरमें अकालपीड़ितोंकी सेवा

गोरखपुरमें सं० २००९में भयंकर अकाल पड़ा। भाईजी सदा ही ऐसे अवसरोंपर सहायता कार्यका आयोजन करते थे। इस बार भी श्रीसेठजीके साथ भाईजी स्वयं जीपमें गाँव-गाँवमें भ्रमण करके अकालपीड़ितोंकी अन्न-वस्त्रसे अपने

हाथों सेवाकी। श्रीसेठजी एवं भाईजीके साथ रहनेसे कार्यकर्त्ताओंमें बड़ा उत्साह रहता, इसके बाद ही श्रीसेठजीके पेट-में भयंकर दर्द हो गया एवं शारीरिक स्थिति गम्भीर हो गयी भाईजीने उनके स्वास्थ्य लाभके लिये विश्वासी व्यक्तियोंसे अनुष्ठान करवाया, जिससे श्रीसेठजीके स्वास्थ्यमें शीघ्र लाभ हुआ।

प्रयागके कुम्भमें

वैसे तो भाईजी प्रायः प्रयागमें कुम्भके अवसरपर भगवन्नाम-प्रचारके लिये आयोजन कराते एवं स्वयं भी जाते, किन्तु सं० २०१० में कुम्भके अवसरपर भाईजी पूरे परिवार सहित सवा महीने प्रयागमें रहे। गीताप्रेसकी तरफसे एक बहुत बड़े पण्डालका निर्माण हुआ, जिसमें दो बार १०८, १०८ श्रीमद्भागवतके सप्ताह पारायण एवं श्रीरामचरितमानसके नवाह्न-परायण आयोजित हुए। प्रातः-से रात्रितक सत्सङ्ग-प्रवचन, कथा, संकीर्तन आदि होते रहते। भाईजीके अतिरिक्त स्वामी श्रीशरणानन्दजी, श्री-अखण्डानन्दजी, श्रीपथिकजी, श्रीरामकिंकरजी आदि संत-विद्वानोंके प्रवचन नित्यप्रति होते थे। भाईजीको दूसरे अनेक महात्मा अपने-अपने पण्डालमें सत्सङ्गके लिये ले जाते थे। इस अवसरपर प्रयागके 'भारत' पत्रमें भाईजीका संक्षिप्त जीवन-परिचय प्रकाशित हुआ। भाईजी अनेक महात्मा एव विद्वानोंके प्रतिनिधि मण्डलके साथ भारतके प्रधान मंत्री श्रीजवाहर लाल नेहरूसे मिले एवं गोवध बन्द करानेके लिये आग्रहपूर्वक प्रार्थना की। इस कुम्भके अवसरपर श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डन भी प्रयाग पधारे एवं जैसे ही

उनको भाईजीके वहाँ होनेका समाचार मिला वे अपने परिकरों सहित भाईजीसे मिलनेके लिये आये। जबतक वे रहे प्रायः भाईजीसे मिलने आते और गङ्गाके किनारे बालूपर बैठकर बातचीत करते थे। पौष शुक्ल ७/२०१० से फाल्गुन कृष्ण १/२०१० तक भाईजी प्रयागमें रहकर गोरखपुर सपरिवार लौट आये।

स्वर्गाश्रम (गीताभवन) में सत्सङ्ग

उत्तराखण्ड हमारे देशका शताब्दियोंसे साधना-स्थल रहा है। इसी उत्तराखण्डकी पवित्र भूमि ऋषिकेशमें श्री-सेठजीने एक सत्सङ्ग-सत्र खोल दिया था। यह क्रम सं० १९७८-७९ के लगभग प्रारम्भ होकर अभी तक निर्बाध चल रहा है। प्रतिवर्ष श्रीसेठजी चैत्रसे आसाढ़ तक अधिकांश समय यहीं रहते एवं सत्सङ्गियोंका एक दल बड़ी ही पवित्र श्रद्धाके साथ एकत्रित होकर सुरसरिकी पावन कलकल धारासे गुञ्जित पुलिनपर भगवद्रसका आस्वादन करता। कुछ समय बाद यही आयोजन गङ्गाके दूसरे तटपर जिसे स्वर्गाश्रम कहते हैं आयोजित होने लगा। उस समय वहाँ सघन जङ्गल था, रहनेके लिये मात्र कुछ कुटियाएँ थीं। गङ्गातटपर विशाल वटवृक्षकी छायामें भगवद्रसका प्रवाह बहता रहता।

भाईजी सर्वप्रथम इस आयोजनका लाभ लेनेके लिये बम्बईसे चैत्र शुक्ल पक्ष सं० १९८१ में गये। इससे पूर्व वहाँके सत्सङ्गी श्रीसेठजी द्वारा इनके बारेमें बहुत कुछ साधनाकी बातें जान गये थे। भाईजीने वहाँ श्रीसेठजीके मार्मिक प्रवचनोंका लाभ उठाया ही, साथ ही सत्सङ्गी

भाइयोंके आग्रहसे अपनी साधनामें कैसे उन्नति हुई इसपर भी प्रकाश डाला। यद्यपि भाईजी उस समय केवल तीन दिन ही रह सके, पर इनके अन्तस्तलकी अनुभूत बातें सुनकर सभी प्रभावित हुए। इसके पश्चात् भाईजी हर वर्ष तो 'कल्याण'के कार्यवश नहीं जा पाते थे पर प्रायः जाया करते थे। सं० १९८६ के चैत्र मासमें भाईजी गये थे तब स्वामी शिवानन्दजीसे मिले थे, और उसी वर्ष श्रीनारायण स्वामीसे मिलकर उनके साधनमय जीवनके अनुभवकी बातें लिखी थी। श्रीनारायण स्वामी एक अमीर घरानेमें पैदा हुए एक उच्च शिक्षित पुरुष थे। उस समय निरन्तर मौन रहकर 'नारायण' नामका जप करते थे। अपने पास कुछ भी संग्रह नहीं रखते थे। बादमें उनकी अनुभवकी बातें गीताप्रेससे "एक सन्तका अनुभव" नामक पुस्तक रूपमें प्रकाशित हुई। उस वर्ष भाईजी गङ्गातट-पर रात्रिके समय उन्मत्त अवस्थामें मधुर नृत्य करते हुए विलक्षण ढङ्गसे संकीर्तन कराते थे।

श्रीसेठजीका तो हर वर्ष ही भाईजीको बुलानेका मन रहता था, किन्तु भाईजी जा नहीं पाते थे। आगे चलकर यहीं गङ्गातटपर 'गीताभवन' नामक एक विशाल भवनका निर्माण सत्सङ्गी भाईयोंके निवास हेतु हुआ। एक सत्सङ्ग-हॉलका भी निर्माण हुआ एवं स्नानकी सुविधाके लिये विशाल घाट भी बने। भाईजीके प्रवचन बड़े ही हृदय स्पर्शी हुआ करते थे और अध्यात्म मार्गके पथिक इस सत्सङ्ग-सत्रकी उत्सुकता पूर्वक प्रतिक्षा करते रहते। श्री-सेठजीके देहावसानके पश्चात् इस आयोजनका सम्पूर्ण

दायित्व भाईजीपर ही आ गया। उसके बाद भाईजी हर वर्ष जाते एवं दो-तीन महीने स्वर्गाश्रम ही रहते थे। 'कल्याण' का सम्पादन कार्य भी वहींसे होता था। श्रीसेठजी-के सामने सत्सङ्गका क्रम लगभग १२-१३ घण्टे प्रतिदिन चलता रहता एवं उन दिनों श्रीसेठजीके आग्रहसे भाईजी भी ४-५ घण्टे प्रतिदिन प्रवचन देते थे। श्रीसेठजीके पश्चात् भाईजी प्रायः एक-एक घण्टे दो समय सत्सङ्ग कराते थे। सच्चे साधक जो एक बार इस रसका आस्वादन कर लेते वे प्रायः हर वर्ष ही आनेका प्रयत्न करते। अन्य सन्त-महात्मा-ओंको आमन्त्रित करके उनके प्रवचनोंकी भी व्यवस्थाकी जाती थी। प्रवचनके अतिरिक्त साधक भाईजीसे एकान्तमें भी अपनी-अपनी व्यक्तिगत समस्याओंका हल पूछने हेतु समयकी माँग करते रहते थे। प्रवचनके समय भी सत्सङ्गी भाई अपने-अपने प्रश्न लिखकर भाईजीको दे देते, जिनका भाईजी समयानुसार समाधान करते थे। रात्रिमें भाईजीके निवास-स्थानपर पद गायन एवं संकीर्तनका कार्यक्रम रहता और पूर्णिमा, अमावस्या एवं एकादशीको गीता-भवनमें संकीर्तनका आयोजन होता था। भाईजी सं० २०२६ तक बराबर जाते रहे, केवल एक वर्ष स्वास्थ्य ठीक न रहनेसे नहीं जा सके।

श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराजका गोरखपुर आगमन

श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज एक विख्यात बङ्गाली महात्मा थे। जनतामें उनको सिद्ध-पुरुष मानकर आदर किया जाता था। 'कल्याण' पढ़कर इनका आकर्षण

भाईजीकी ओर हुआ। इसके पश्चात् वे 'कल्याण' के विशेषाङ्कोंका रुचिपूर्वक अध्ययन करने लगे। सन् १९५३के लगभग पहली बार भाईजीके दर्शन किये। इनके लेख भी 'कल्याण' में प्रकाशित होने लगे, फिर ये मौन हो गये और उसी अवधिमें गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंका बङ्गानुवाद किया। इसी समय इनकी इच्छा गीताप्रेसके द्वारपर दण्डवत प्रणाम करनेकी हुई। सन् १९५५ में इन्होंने मौन त्याग दिया और भगवन्नाम-प्रचार करते हुए गोरखपुर पधारे। गीताप्रेसके द्वारपर कीचड़में ही दण्डवत प्रणाम किया और भाईजीने साथ रहकर पूरा प्रेस दिखाया। भाईजीके प्रेम-व्यवहारने चिरकालके लिये इनके हृदयपर अधिकार जमा लिया पुनः मौनकी अवधिमें इन्होंने भाईजीकी भाषा टीकाकी सहायता लेकर श्रीरामचरितमानसका बङ्गलामें अनुवाद किया एवं उस अनुवादको भाईजी एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके नामसे उत्सर्ग किया। उत्सर्ग-पत्रमें उन्होंने लिखा—

"अनन्त करुणा-पारावार पुरुषोत्तम श्रीभगवान् दो अलौकिक यन्त्रोंको लेकर इस दारुण कलियुगमें सर्वत्र जो धर्म-प्रचार, श्रीनाम-प्रचार और शास्त्र-प्रचार कर रहे हैं, इस प्रकारके प्रचारकी बात मैंने किसी इतिहास पुराणमें नहीं देखी, अथवा किसी धर्म-प्रचारकने इस प्रकार विश्व-व्यापी धर्म-प्रचार किया हो—यह नहीं सुना। श्रीभगवान्के सुन्दर उदित दो रमणीय चन्द्र-परमप्रेमभाजन अशेषश्रद्धास्पद 'कल्याण-सम्पादक' श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार महाशय और श्रीयुत् चिम्मनलालजी गोस्वामीके पवित्र नामपर

उनके अति प्रियतम 'श्रीरामचरितमानस' का वङ्गानुवाद उत्सर्ग किया "

सन् १९६४ में ये पुनः गोरखपुर पधारे। उस समय उनके ठहरानेकी व्यवस्था भाईजीने अपने निकट गीता-वाटिकामें ही की। ये भाईजीके प्रेम-व्यवहारसे अत्यन्त प्रभावित हुए। इसके बाद इनका भाईजीके साथ बराबर पत्र-व्यवहार होता रहा। अप्रैल १९६९ में ये भाईजीके निवास-स्थानपर स्वर्गाश्रम पधारे। भाईजीके स्वर्गाश्रम-प्रवासका यह अन्तिम वर्ष था। उस समय भाईजीके पेटमें भीषण शूल था पर उसे भूलकर वे उनके सत्कारमें लग गये। आनन्दपूर्वक बातें की, कीर्तन-सत्सङ्ग हुआ और उन्हें पहुँचानेके लिये गङ्गाजीके घाटपर गये। प्रचुर मात्रामें फल देकर उन्हें विदा किया। वे जैसे ही बोटमें बैठकर रवाना हुए कि पेटका भीषण-शूल पुनः प्रकट हो गया और भाईजी बड़ी क़ठिनाईसे निवास-स्थानतक पहुँच सके।

इन्होंने भाईजीके लिये लिखा है—

"श्रीपोद्दार बाबाके शरीरके आश्रयसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचारकी लीला की है, वह न कभी हुई है और न होगी। ऐसे संतके चरणोंमें मस्तक अपने-आप नत हो जाता है।............श्रीभगवान्के धर्म-प्रचारके अनुपम यन्त्र श्रीपोद्दार बाबा थे—उनके हृदयपर अधिकार करके श्रीभगवान् स्वयं ही कार्य कर रहे थे। उनके भीतर और बाहर श्रीभगवान् ही विद्यमान थे। श्री-पोद्दार बाबा मुक्त थे। इस प्रकारका शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचार

देहाभिमानी द्वारा नहीं हो सकता।............इस सर्वंहारी युगमें सनातन धर्मकी रक्षा तथा विश्वका परम कल्याण करनेके लिये ही श्रीभगवान्‌की इच्छासे श्रीपोद्दार बाबाके शरीरका आश्रय लेकर 'कल्याण' मासिक पत्रका आविर्भाव हुआ है। दुःख-शोक-रोग-ज्वाला-यन्त्रणासे सतत संतप्त पथ-भ्रान्त असंख्य नर-नारी 'कल्याण' की शान्त, स्निग्ध, सुशीतल छायामें विश्राम प्राप्त कर कृतार्थ हुए हैं और हो रहे हैं। आश्चर्यकी बात है कि इस कलि-कलुष-कलुषित, शास्त्र-धर्म विवर्जित समयमें सनातन शास्त्र और धर्मका प्रचार करनेवाले 'कल्याण' की ग्राहक-संख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है।............ जैसे सागरकी उपमा सागर, आकाशकी उपमा आकाश है, उसी प्रकार हमारे श्रीपोद्दार बाबाकी उपमा हमारे पोद्दार बाबा थे।"

राष्ट्रपति द्वारा गीताप्रेसके नये द्वारका उद्‌घाटन

श्रीसेठजी और भाईजी बहुत दिनोंसे यह सोच रहे थे कि गीताप्रेस एवं 'कल्याण' के आदर्श तथा गौरवके अनुरूप ही उसके मुख्य द्वारका निर्माण हो। सं० २०१२ में वे इस योजनाको सफल कर सके। गीताद्वारके निर्माणमें देशकी गौरवमयी स्थापत्य कलाके मूल प्रतीक प्राचीन मन्दिरोंसे प्रेरणा ली गयी। प्रवेशद्वारमें सात प्रकारके प्रतीकोंका समावेश किया गया।

(१) उपनिषदों तथा गीताके वाक्यके रूपमें शब्द-प्रतीक।

(२) वृषभ, सिंह तथा नागके रूपमें जन्तु-प्रतीक।

(३) कमलके रूपमें पुष्प-प्रतीक ।
(४) स्वस्तिकके रूपमें चिन्ह-प्रतीक ।
(५) कलश एवं शंखके रूपमें वस्तु-प्रतीक
(६) शंख, चक्र, गदा, पद्म, त्रिशूल, डमरू, धनुष, बाण आदिके रूपमें आयुध-प्रतीक ।
(७) जपमाला, पुस्तक, दीप, धूपपात्र, आरती आदि के रूपमें उपकरण-प्रतीक यथा स्थान दर्शाये गये हैं ।

प्रवेश-द्वारके निर्माणमें एलोरा, अजन्ता, दक्षिणेश्वरके काली मन्दिर, काशीके विश्वनाथ-मन्दिर, मथुराके द्वारकाधीश-मन्दिर, पुरीके जगन्नाथ-मन्दिर, भुवनेश्वरके लिंगराज-मन्दिर, कोणार्कके सूर्य-मन्दिर, मदुराके मीनाक्षी-मन्दिर, अमृतसरके स्वर्ण-मन्दिर, खुजराहोके महादेव-मन्दिर, साँची-स्तूप, आबूके जैन-मन्दिर, उज्जैनके महाकाल-मन्दिर, केदारनाथके शिव-मन्दिर, बोधगयाके बुद्ध-मन्दिर तथा ब्रह्मदेशके पैगोडा संज्ञक बौद्ध-मन्दिरके निर्माण प्रयुक्त कलाका आश्रय लिया गया है। इसके मुख्य भागके द्वितीय खण्डमें संगमरमरका बना चार घोड़ोंका रथ है जिसपर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिमा अर्जुनको कौरव सेना दिखानेकी मुद्रामें हैं। रथकी लम्बाई ६ फुट १ इञ्च है, वजन लगभग ३६ मन है । मूर्ति जयपुरसे बनवाकर मँगवायी गई है ।

गीताप्रेसके इस भव्य प्रवेश-द्वारका उद्घाटन करनेके लिये भाईजीके विशेष आग्रहसे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी वैसाख शुक्ल ८ सं० २०१२को गोरखपुर पधारे । गीताप्रेसकी ओरसे भाईजीने उनका हार्दिक स्वागत किया ।

राष्ट्रपतिने उद्घाटन-भाषामें अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—

"गीताद्वारके उद्घाटनके अवसरपर आमन्त्रित कर आपने मुझे कृतज्ञ किया है। आपने भारतवर्षके विभिन्न मन्दिरों, स्तूतों एवं देवालयोंके अंशोंको लेकर एक भव्यद्वार का निर्माण किया है।.........हजारों वर्षों और हजारों वर्ग-मीलमें निर्मित स्थापत्यके नमूनोंसे चुन-चुनकर आपने एक द्वार बनाया, जिसका दर्शन करके कोई भी यात्री उन सभी इमारतोंके अंश देख सकता है।

मैं जब कहीं कोई ऐसी संस्था देखता हूँ जो इस प्रकार के विचारोंके प्रचारमें व्यवहारिक रूपमें प्रयत्नशील हो तो स्वभावतः मेरा हृदय भर आता है। इसलिये गीताप्रेसका जो काम आजतक हुआ है और हो रहा है, उसका मैं आदर करता हूँ और चाहता हूँ कि वह दिन-प्रतिदिन अधिक विस्तार पावे।

जीवनकी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकताकी पूर्ति आप कर रहे हैं। जिसने आपको यह प्रेरणा दी, वही आपके प्रयत्नोंको सफल करेगा, यही मेरी आशा और शुभ-कामना है।"

सुदूर तीर्थोंकी यात्रा

गीताप्रेसकी तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेन श्रीसेटजीकी संर-क्षतामें सं० १९९६में गई। उस समय भाईजीको भी साथ चलनेके लिये आग्रह किया गया था, किन्तु उस समय भाईजी-के मनमें एकान्तवासका ज्वार-सा आ रहा था और वे दादरी एकान्तवासके लिये चले गये। उसके पश्चात् प्रेमीजनोंका

भाईजीको तीर्थयात्रामें चलनेका आग्रह चलता ही रहा और भाईजी उसे टालते रहे । बहुतसे लोग श्रीसेठजीसे इसके लिये आग्रहपूर्वक प्रार्थना करते रहे क्योंकि उनका विश्वास था कि श्रीसेठजीकी बातको भाईजी नहीं टालेंगे । बार-बार अनुरोध करने पर भाईजीको विवश होकर स्वीकृति देनी पड़ी किन्तु स्वीकृति देते समय भाईजीने प्रबन्ध विभागसे सर्वथा अलग रहनेका कह दिया । अन्तत्वोगत्वा पौष सं० २०१२में रवाना होनेका कार्यक्रम निश्चित हुआ । यद्यपि इस समाचारका प्रचार नहीं किया गया अन्यथा यह समस्या हो जाती कि किसको 'हाँ' कहा जाय किसको 'ना', किन्तु फिर भी साथजाने वालोंकी संख्या इतनी अधिक हो गयी क सबको साथ जाना संभव नहीं था और उनसे कर-बद्ध क्षमा याचना ही करनी पड़ी । इतने पर भी लगभग ६०० भाई बहिन साथमें हो ही गये । इतने लोगोंका लगभग तीन महीनेका खान-पान एवं अन्य यात्राकी पूर्ण व्यवस्था करना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य था ।

पौष शुक्ल ६ सं० २०१२को भाईजी लगभग १०० व्यक्तियों सहित गोरखपुरसे काशी पहुँचे । काशीसे ही यात्राका शुभारम्भ होना तय हुआ था । प्रारम्भमें यात्रा पहले पुरीकी तरफसे होने वाली थी, किन्तु उस समय उड़ीसामें उपद्रव होनेके कारण वह कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा । कार्यक्रमको बदलनेके लिए लगभग ७ दिन काशीमें ही रहना पड़ा । बहुत-विचारके पश्चात् यह तय हुआ कि यात्रा पहले चित्रकूट, प्रयागकी तरफसे प्रारम्भ करके उत्तरी भारतका भ्रमण पहले कर लिया जाय । उसी अनुसार स्पेशल ट्रेनके

सारे कार्यक्रममें परिवर्तन किया गया। पौष शुक्ल १४ सं० २०१२को श्रीसेठजी लगभग २२५-२५० तीर्थयात्रा करने वालोंके साथ कलकत्तासे काशी पधारे।

साथ जाने वाले सभी यात्रियोंको एकत्रित करके श्री-सेठजी, भाईजी एवं स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजने यात्रामें ध्यान रखनेकी महत्वपूर्ण बातें कही। विधिपूर्वक काशीके मुख्य पंडितों द्वारा श्रीगणपति तथा अन्य देवताओं-का पूजन वेद मन्त्रों द्वारा कराया गया। तत्पश्चात् इञ्जन-की पूजा तथा संचालनका मुहूर्त श्रीसेठजी द्वारा कराया गया। भगवन्नामका जयघोष करके यात्राका प्रस्थान हुआ। दूसरे दिन प्रातः ट्रेन करवी स्टेशनपर पहुँची, वहाँ प्रातःकाल-की प्रार्थना एवं संकीर्तन श्रीगोस्वामीजीके नेतृत्वमें हुये। भाईजीने पालन करनेके आवश्यक नियम यात्रियोंको सुनाये। सम्पूर्ण यात्रामें यह क्रम रहा कि प्रातःकाल जिस स्टेशनपर गाड़ी पहुँचती वहीं प्लेटफार्मपर सब यात्री एकत्रित होकर श्रीगोस्वामीजीके नेतृत्वमें प्रार्थना एवं संकीर्तन करते फिर वहाँ आसपासके दर्शनीय स्थानोंकी जानकारी उन्हें दे दी जाती। करवीसे बस द्वारा चित्रकूट सब लोग पहुँचे एवं वहाँ दो दिन रहे। सम्पूर्ण यात्राका विस्तृत वर्णन तो यहाँ संभव नहीं है अतः कुछ स्थानोंका संक्षिप्त वर्णन ही दिया जा सकेगा। प्रयागमें श्रीपुरुषोत्तमदासजी टंडन एवं श्री-प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके नेतृत्वमें विशाल जन-समूहने भाईजी-का स्वागत किया तथा ब्रह्मचारीजीने भाईजीको मानपत्र दिया। अयोध्यामें स्टेशनपर प्रार्थना, संकीर्तन, प्रवचनके पश्चात् सभी यात्री पैदल ही कीर्तन करते हुए स्टेशनसे

सरयूके नये घाटतक स्नान करने गये । फिर सभी प्रमुख मन्दिरोंके दर्शन करके सायङ्काल श्रीराम जन्म-भूमिमें नगर-निवासियों द्वारा भाईजीके स्वागतार्थ एक बृहत् सभाका आयोजन हुआ जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख सन्त पधारे ।

भाईजी जब इन्दौर पहुँचे तो उन्हें बताया गया कि श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज उस समय ओंकारेश्वर तीर्थके आश्रममें मौन रहकर गम्भीर योग और तपमें निरत हैं तो भाईजी कुछ लोगोंके साथ उनके आश्रममें गये । वे मौनावस्थामें किसीसे मिलते नहीं थे, परन्तु भाईजीके पहुँचते ही वे तत्काल बाहर आये और तुलसीदल और पुष्पमाला देकर वहीं समाधि मग्न हो गये । बम्बईमें भाईजीका बड़ा भव्य स्वागत हुआ, क्योंकि वहाँ बहुत लोग भाईजीके चिरपरिचित थे । तीर्थयात्रा करते हुए भाईजीको अपने बीच देखकर सभीकी प्रसन्नताका पार नहीं था । सत्सङ्गके आयोजनमें भी अपार जन-समूह एकत्रित था ।

भाईजी जब दक्षिण भारत पहुँचे तो 'दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा' के मुखपत्र 'हिन्दी-प्रचार-समाचार' के सह-सम्पादक श्री शा०रा० शारङ्गपाणि उनके साथ दुभाषिया बनकर रहे । दक्षिण भारतके प्रायः सभी प्रमुख तीर्थोंकी यात्रा की । उनमेंसे कुछ नाम हैं—तिरुपति, काल-हस्ती, काञ्चीपुरम्, तिरुवण्णमलै, रमणाश्रम, श्रीरङ्गम्, मदुरै, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी, श्रीविल्लपुत्तूर, तेन्काशी, कुम्भकोनम्, तिरुनेल्वेली, आलवार तिरुनगरी, तिरुवनतपुरम्, गुरुवयूर आदि ।

प्रसङ्गोंको विश्लेपण करनेका भाईजीका अपना अनोखा ढङ्ग होता था । एक उदाहरण लीजिये—तिरुपतिसे भाईजी तिरुमलै जा रहे थे । समयकी दृष्टिसे यात्रा पैदल न करके बस या कारसे की गयी थी । बसोंमें सभी यात्रियोंके पहले आरामसे बैठानेके बाद भाईजी गाड़ीमें बैठे । जहाँसे पहाड़-पर पदयात्रियोंके चढ़नेके लिये सीढ़ियोंका रास्ता निकलता है उस चौकपर पहुँचते ही सब गाड़ियोंको रोक लिया एवं सभी यात्री रुक गये । भक्तिमय भावुकताके साथ भाईजीने यात्रियोंको समझाया—"यहाँकी विशेषता है । यहाँ भगवान्के अर्चावतारके समान ही उनका विभवावतार भी महत्त्वपूर्ण एवं पूज्य माना जाता है । यह 'शेषशैल' जो वास्तवमें सात पहाड़ियोंका एक समूह है, आदिशेषका स्वरूप माना जाता है । यहाँ भगवान्को 'शेषशैल-शिरोमणि' कहते हैं । श्रीरामानुजाचार्य स्वामीने इस पवित्र पर्वतपर पैर रखकर चढ़ना अनुचित समझा और इसीलिये अपने घुटनों और हथेलियोंपर कपड़े लपेटकर उन्हींके बल चढ़कर मन्दिर पहुँचे । लेकिन हाय ! आज हम अशक्त हैं, विवश हैं ।" इतना कहकर थोड़ी देरके लिये भाईजी नेत्र बन्द करके ध्यानस्थ हो गये । फिर उन्होंने शेषाद्रिकी ओर दण्डवत् प्रणाम किया और वहाँकी धूलि मस्तक पर लगायी । तीर्थोंमें भाईजीके जो प्रवचन होते थे वे साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते थे । मदुरैके मीनाक्षी-मन्दिरमें आयोजित स्वागत-सभाका कार्यक्रम भी बहुत रोचक था । स्थानीय भक्त-प्रेमियोंने तमिल, संस्कृत और गुजराती भाषाके भजन सुनाये और भाईजीकी धार्मिक सेवाओंकी प्रशंसा

करते हुए उनको बहुत बड़ी माला पहनायी और सम्मान पत्र पढ़कर समर्पित किया। भाईजीने उत्तरमें गंभीर होकर कहा कि किसी व्यक्तिके नाम-रूपकी पूजा करके माला पहिनाकर गुणगान करना ठीक नहीं है। भाईजीकी असाधारण दैन्यताको देखकर वहाँके लोग चकित रह गये। स्थान-स्थानपर वहाँके वेदपाठी पण्डितों, शास्त्रज्ञोंके सामने सविनय नत-मस्तक होकर प्रणाम करते एवं उनका सस्वर वेदपाठ सुनकर अत्यन्त हर्षित होते। उनको दक्षिणा देकर सम्मान करते। वहाँके लोगोंके अनुसार भाईजीकी इस यात्रासे दक्षिणमें भक्ति-प्रचारको ही नहीं, किन्तु हिन्दी-प्रचारको बहुत बल मिला। कई स्थानोंपर वहाँके भावुक भक्त तीर्थयात्रा-ट्रेनकी भी परिक्रमा करते थे।

पुरी, भुवनेश्वर होते हुए भाईजी जब कलकत्ता पहुँचे तो हबड़ा स्टेशनपर बहुत बड़ी संख्यामें एकत्रित जन-समूहने भाईजीका स्वागत किया एवं वहाँके सत्सङ्गके कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होकर लाभ उठाया।

सभी तीर्थोंका प्रामाणिक विवरण तैयार किया गया जिसे अगले वर्ष 'कल्याण' के विशेषाङ्क "तीर्थाङ्क" के रूपमें निकाला गया।

भाईजीकी हिन्दी-साहित्यको देन

आध्यात्मिक जगत्में तो भाईजीका सर्वोच्च स्थान है ही, हिन्दी-साहित्यको उन्होंने जो सामग्री प्रदान की है वह भी अनुपम है। भाईजीने गीताप्रेसके माध्यमसे जब साहित्य प्रकाशन प्रारम्भ किया उसके पूर्व हिन्दीमें धार्मिक ग्रन्थोंकी

उपलब्धि अल्प मात्रामें थी, यहाँ तक कि गीताका शुद्ध हिन्दी अनुवाद भी कठिनतासे प्राप्त होता था। महाभारत, पुराणोंके प्रामाणिक अनुवाद हिन्दीमें दुर्लभ थे। जिन ग्रन्थोंकी सत्ताका ही लोगोंको पता नहीं था, वे ही ग्रन्थ आज जो लाखों-लाखोंकी संख्यामें हिन्दीमें उपलब्ध हैं इनका श्रेय भाईजीको ही है। केवल अनुवाद ही नहीं 'कल्याण' के माध्यमसे भाईजीने हिन्दी-साहित्यकी जो अभिवृद्धि की है वह अतुलनीय है। उन्होंने लेखकोंको तैयार किया, होनहार लेखकोंको प्रोत्साहन दिया। 'कल्याण' में लेख प्रकाशित होनेसे लेखक अपनेको गौरवशाली अनुभव करते थे। एक-एक विषयपर जो 'कल्याण' के विशेषाङ्क प्रकाशित हुए उनमें इतनी ठोस सामग्रीका समावेश हुआ कि वे अपने विषयके विश्व-कोष बन गये। इनके अतिरिक्त भाईजीकी स्वयंकी लेखनीने अध्यात्म-जगत्के किसी विषयको अछूता ही नहीं छोड़ा वरन् विपुल सामग्री प्रदान की।

जिस प्रकार वेदोंकी गूढ़ भषाकी व्याख्या महर्षि वेदव्यासने पुराणों द्वारा की, उसी प्रकार भाईजीने सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्यके सार भागको वर्तमान देशकी पृष्ठभूमिमें हिन्दीके माध्यमसे पुनर्व्याख्यायित किया। भाईजीके लिखित समस्त ग्रन्थोंकी तो बात ही अलग है, उनके केवल दो विशाल ग्रन्थ 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' तथा 'पद-रत्नाकर' को यदि हिन्दी साहित्यके इतिहासमें प्रस्तुत किये जाँय तो किसी भी महान् साहित्यकारकी तुलनामें उनकी उपादेयता और महिमा अमोघ होगी।

भाईजीकी दृष्टिमें—"सत्साहित्य ही वास्तविक 'साहित्य' पद वाच्य हैं। केवल भाषाको साहित्य नहीं कहा जा सकता। भाषा तो साहित्यका माध्यम मात्र है। जो साहित्य विभिन्न क्षेत्रोंमें समान भावसे सभीको कल्याण-मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देता है, सभीका कल्याण करता है, वही सत्साहित्य मानवको श्रेयकी ओर ले जानेके लिये विभिन्न रूपोंमें आत्म प्रकाश करता है तथा मानवको सदा श्रेयके मार्गपर ही आगे बढ़ाता रहता है।" भाईजीकी समस्त रचनायें चाहे गद्यमें हो या पद्यमें इसी महान् आदर्शसे ओत-प्रोत है। उनका पहला लेख 'मातृभूमिकी पूजा' जनवरी सन् १९११ के 'मर्यादा' मासिक पत्रमें प्रकाशित हुआ था। उससे लेकर अन्ततक उन्होंने जो भी लिखा चाहे विषय कुछ भी रहा हो, मानवको कल्याणके मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देता रहा। आध्यात्मिक साहित्यका सृजन शिमलापालके नजरबन्दीके जीवनसे प्रारम्भ हुआ जब उन्होंने सर्वप्रथम नारद-भक्ति सूत्रोंकी व्याख्या अपनी साधनाकी प्रारम्भिक अवस्थामें २५ वर्षकी उम्रमें लिखी। कालान्तरमें यही व्याख्या कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ 'प्रेम-दर्शन' के नामसे गीताप्रेससे प्रकाशित हुई। लक्ष्य इतना उच्च होनेसे ही भाईजी द्वारा निर्मित साहित्यका क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण हो गया। पद्य, निबन्ध, गद्यकाव्य, संस्मरण, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, टीका, पत्र, प्रवचन आदि वर्गोंमें उनकी लेखनीने हिन्दीमें साहित्य-सृजन किया। उनकी रचनाओंका परिचय भी यहाँ सम्भव नहीं है। यदि उनके सम्पूर्ण साहित्यका विवेचन किया जाय तो एक बहुत विशाल ग्रन्थ बन सकता

है। लगभग बारह हजार पृष्ठोंका उनका साहित्य प्रकाशित हो चुका है। ये सभी ग्रन्थ हिन्दी साहित्यकी अमूल्य निधि हैं। यह हिन्दी साहित्यके लिये और भी गौरवकी बात है कि इनके कई ग्रन्थोंका अनुवाद संस्कृतमें एवं तमिल आदि अन्य भाषाओंमें हुआ है। तमिल अनुवाद 'दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा' के प्रेसमें छपे हैं। दक्षिण भारतमें जहाँ हिन्दीका बहुत कम प्रचार है वहाँ इनके हिन्दी ग्रन्थोंका तमिलमें अनुवाद प्रकाशित होना एक विशेष महत्त्वकी बात है 'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा' का अनुवाद तो संस्कृत, तमिल, तेलगू, मलयालम्, कन्नड़, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, बङ्गला, सिंधी, उड़िया, मराठी, उर्दू तथा रशन (रूसी) भाषाओंमें हुआ। इतना ही नहीं दक्षिण भारतके लोगोंने भाईजीके लिखित ग्रन्थ एवं 'कल्याण' पढ़नेके लिये हिन्दीका अध्ययन किया। हिन्दी प्रचारका इससे अधिक ठोस माध्यम और क्या अपनाया जा सकता है। श्री र० शौरि राजन् लिखते हैं—

"मेरा उनके (भाईजीके) साथ परोक्षतः परिचय सन् १९४९ से है। मैं तत्काल तञ्जौर जिलेके तिरुवैयारुमें स्थित 'महाराजा संस्कृत कालेज' में 'तर्कशिरोमणि' की उच्च कक्षामें पढ़ रहा था। स्वाध्यायसे थोड़ा हिन्दी सीख गया था। हिन्दी सीखनेकी अभिरुचि मुझ-जैसे शत-शत छात्रोंके मनमें जगायी गीताप्रेसकी छोटी-छोटी ज्ञानवर्धक पुस्तिकाओंने। 'हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप', 'उपनिषदोंके चौदह रत्न, 'कल्याण' के वार्षिक विशेषाङ्क आदि उपादेय प्रकाशन हमें नूतन दिशा-दर्शन देते रहे।............मैंने कई विद्वानों

एवं सामान्य व्यक्तियोंके मुँहसे सुना—'ऐसी पुस्तकोंके द्वारा ही हमारी गरिमा पूर्ण हिन्दू-संस्कृतिका युगानुकूल प्रचार-प्रसार हो सकता है। गीताप्रेसवाले बड़ी ही श्लाघ्य सेवा कर रहे हैं। यदि श्रीपोद्दारजी-जैसे एक भी विद्वान् तथा त्यागमूर्ति प्रत्येक भारतीय भाषामें रहते तो भारतका उत्थान सुसाध्य हो जाता।"

यह भाईजीके ही अध्यवसायका परिणाम था कि आजके नास्तिक युगमें बिना किसी विज्ञापनके धार्मिक पत्र 'कल्याण' की ग्राहक संख्या भारतवर्षके सभी मासिक पत्रोंसे बढ़कर डेढ़ लाखके ऊपर पहुँच गयी। हिन्दीके सामान्य विद्वानोंने मुक्त कण्ठसे इसको प्रशंसा की है। यहाँ केवल दो सम्मतियाँ दी जा रही हैं—

काशीके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीबलदेव उपाध्याय एम० ए० पी० एच० डी० लिखते हैं—

'कल्याण' के विशेषाङ्क एक-से-एक बड़े तथा महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु "तीर्थाङ्क" तो भारतीय तीर्थोंका विश्व-कोष ही है। इतनी प्रामाणिक उपादेय सामग्री हिन्दीमें तो क्या, किसीभी भाषाके ग्रन्थमें नहीं हैं। इसे आप अर्थवाद न समझें, यह तथ्यवाद है। ऐसे विशेषाङ्क निकालनेके लिये धार्मिक-जगत् आप लोगोंका चिर-ऋणि रहेगा।"

भारतके सुप्रसिद्ध ज्ञानवृद्ध विद्वान डॉ० श्रीभगवान दासजी, डि० लिट्० लिखते हैं—

"आपके सदुद्योगोंकी जितनी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है। 'तीर्थाङ्क' देखा—भारतके सब तीर्थोंकी पूरी 'डायरेक्ट्री' है

और सैकड़ों अतिसुन्दर चित्र भरे पड़े हैं। आपका समस्त हिन्दीभाषी भारत ऋणी है।"

जब भाईजीका गंभीर ग्रन्थ "श्रीराधा-माधव-चिन्तन" प्रकाशित हुआ तो हिन्दी साहित्यके सभी आदरणीय विद्वानों-ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

डा० आचार्य श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी, डी० लिट्०ने लिखा—

"श्रीराधा-माधव-चिन्तन' पढ़ गया हूँ। भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सभी रचनाओंमें भक्तिकी महिमा प्रकट होती है, पर यह ग्रन्थ तो भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनका अद्भुत समन्वय है। यह भाईजी-जैसे भक्तकी लेखनीसे ही लिखा जा सकता था।"

राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरण गुप्तजीने लिखा—

"श्रीराधा-माधव-चिन्तन' जैसी रचना श्रीहनुमानप्रसाद-जी-जैसे भक्त और चिन्तकसे ही सम्भव है। उन्होंने भक्तजनों-का अमित उपकार किया हैं।"

राष्ट्रपति पुरस्कृत डा० कृष्णदत्तजी भारद्वज एम० ए० पी० एच० डी० ने लिखा—

"........इस सत्साहित्यके सर्जनसे श्रीपोद्दारजीने जहाँ हिन्दीमें सत्साहित्यकी श्रीवृद्धिकी है, वहाँ भावुक भक्तोंकी भावनाको भी एक अभिनव संबल प्रदान किया।"

डा० बलदेवप्रसादजी मिश्र, एम० ए०, एल० एल० बी० डी०लिट् ने लिखा—

"श्रीभाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारकी समर्थ लेखनीसे जो ग्रन्थरत्न निःसृत हैं, उनसे न केवल हिन्दीका साहित्य-

भण्डार समृद्ध हुआ है, किन्तु मधुर रसके उपासकोंको मनोवाञ्छित प्रसाद बड़ी स्पृहणीय मात्रामें मिल गया है।"

आचार्य श्रीगुलाबरायजी एम० ए० डी० लिट्ने लिखा—

'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' के कुछ अंश पढ़े श्रीपोद्दारजीकी साहित्य-सेवापर हम सबको गर्व है। इस पुस्तकका धार्मिक मूल्य तो है ही, साहित्यिक मूल्य भी उल्लेखनीय है।'

शास्त्रार्थमहारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजीने लिखा—

"श्रीराधा-माधव-चिन्तन' आदि साहित्य निश्चित ही किसी व्यक्ति विशेषकी अपनी कृति नहीं हो सकता। मुझे तो ऐसा अनुभव होने लगा मानो भाईजीके माध्यमसे श्रीराधारानीने स्वयं ही अपने कुछ मार्मिक उद्गार भक्तोंको वरदोपहारके रूपमें प्रदान किये हैं।"

इसी प्रकार भाईजी विरचित विशाल काव्य-ग्रन्थ "पद-रत्नाकर" हिन्दी साहित्यकी एक अमूल्य निधि है। भाईजीके गद्य साहित्यसे तो फिर भी साहित्यकार परिचित थे परन्तु भाईजीने इतनी विपुल राशिमें काव्य रचना भी की, इसका ज्ञान साहित्य-जगत्में भी 'पद-रत्नाकर' के प्रकाशनके पूर्व बहुत न्यून मात्रामें था। इसका हिन्दीके सभी विद्वानोंने आदर किया।

व्रज साहित्यके मर्मज्ञ श्रीप्रभुदयालजी मित्तल, डी० लिट्० ने लिखा—

"परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी

जीवन व्यापी शाश्वत साधनाने इस जगत्के जीवोंका कितना कल्याण किया है, यह सर्व विदित है। किन्तु उनकी साधना काव्य-क्षेत्रमें भी इतनी प्रशस्त थी, इसका ज्ञान अधिक व्यक्तियोंको नहीं है। मैंने श्रद्धेय भाईजीकी कुछ काव्य कृतियोंका पहले रसा-स्वादन किया था, किन्तु उन्होंने इतने विपुल परिमाणमें काव्य-रचनाकी थी, इसका परिज्ञान मुझे इस 'पद-रत्नाकर' ग्रन्थसे ही हुआ है।"

डा० वासुदेव कृष्णजी चतुर्वेदी, डी० लिट्०ने लिखा—
"पूज्य भाईजीकी सरस सरस्वतीका प्रसाद न केवल हिन्दी साहित्यकी निधिमें समलंकृत होगा अपितु सङ्गीतके क्षेत्रमें भी इसका स्वत्व होगा।"

डा० रामकुमारजी वर्मा एम० ए० पी० एच० डी०, भू० पू० हिन्दी प्रोफेसर, मास्को (सोवियत संघ) ने लिखा—

"इस अनुपम रसानुभूतिके ग्रन्थको बार-बार पढ़कर संत सूरदासकी काव्य-मन्दाकिनीमें अवगाहनका आनन्द प्राप्त होता है भाईजी कितने बड़े भक्त-कवि थे यह 'पद-रत्नाकर' को पढ़कर आज ही ज्ञात हो सका।"

डा० अवध बिहारी लाल कपूर, एम० ए० डी० फिल० ने लिखा—

"उनके पदोंका ऐसा विशाल संग्रह हो सकता है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। 'कल्याण' के सम्पादन और अनेक पुस्तक-पुस्तिकाओंके लेखनमें निरवधि संलग्न रहते हुए भी वे इतने सारे व्यवहार और परमार्थके आदर्श सूचक, तत्त्व-कथा-पूर्ण और भक्ति-भाव-प्रेरक बहुमूल्य पदोंकी

रचना कर सके इनसे जान पड़ता है उनका जीवन कितना समर्पित, कितना सरस और सङ्गीतमय था।............इन्हें 'तुक बंदिया' न कहकर 'महावाणी' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

डा० रामचरणजी महेन्द्र, एम० ए० पी० एच० डी० ने लिखा—

"एक ही ग्रन्थमें हिन्दू-संस्कृतिके अध्येता विद्वद्वर पोद्दारजीकी कविताओंके इस प्रकाशनकी अत्यन्त आवश्यकता थी। यह ज्ञात न था कि भाईजीने काव्यके क्षेत्रमें इतना मौलिक योगदान दिया है। भारतीय संस्कृतिका काव्यके माध्यमसे इतना विशद विवेचन कदाचित् ही अन्यत्र उपलब्ध हो सके।............भारतके नैतिक उत्थानकी दिशामें अनेकों पुस्तकें लिखी गयी हैं और लिखी जायेंगी, किन्तु 'पद-रत्नाकर' जैसी मौलिक, स्थायी महत्त्वकी काव्यकृति किसी भी देश और कालमें बहुत कम प्रकाशित हुई है। इस पुस्तकके प्रणेता कोई साधारण कवि नहीं, वरन् ऐसा काव्यस्रष्टा और युगद्रष्टा है जिन्होंने अपनी रचनाओंसे भक्ति साहित्यके एक युगका निर्माण किया है।"

बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' को हिन्दीमें प्रकाशित कराना चाहते थे। उन्होंने बड़े परिश्रम एवं व्ययसे इसका हिन्दीमें अनुवाद कराके 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' को प्रकाशित करानेके लिये सौंप दिया। कई प्रकारकी असुविधाओंके कारण वह बहुत दिनोंतक प्रकाशित नहीं हो पाया। एक दिन अचानक टण्डनजीने देखा कि

'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' हिन्दीमें प्रकाशित हो गया है और वह भी अत्यन्त अल्प मूल्यमें। उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने तत्काल भाईजीको बधाईका एक पत्र भेजा जिसमें लिखा—"जो काम हम 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी संस्थाके माध्यमसे करनेमें असमर्थ रहे, वह आपने सहज ही कर दिया। अब हम इस ओरसे निश्चिन्त हैं।"

हिन्दी साहित्यका इतना विशाल कार्य इतने सहज रूपसे हो जानेका कारण यही है कि भाईजीके माध्यमसे दैवी शक्ति कार्य कर रही थी। एक बार हिन्दुस्थान-समाचार-समितिके एक प्रतिनिधिने भाईजीसे इस सम्बन्धमें जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने उत्तर दिया—"'कल्याण' का सम्पादन मैं थोड़े ही करता हूँ। मेरी केवल अङ्गुली चलती है; परन्तु मुझे स्वयं पता नहीं चलता कि वह कौन-सी छिपी शक्ति है, जो मेरी अङ्गुलियोंको कलमपर ढकेल देती है और उसके पश्चात् वह धारा-प्रवाह चलती रहती है। कभी-कभी मैं इस कार्यमें इतना लीन हो जाता हूँ कि मेरे सामने अगर कोई व्यक्ति खड़ा हो जाय तो मुझे उसका ध्यान ही नहीं रहता।"

डा० श्रीजगदीशजी गुप्त लिखते हैं—

"मैंने भारतीय प्रकाशनोंके तुलनात्मक आँकड़ोंको देखा और पाया कि यदि गीताप्रेसके प्रकाशनोंको कम कर दिया जाय तो हिन्दी भाषाका स्थान भारतकी अन्य कई भाषाओंके नीचे आ जायेगा।"

इस तरह अनुमान लगाया जा सकता है कि भाईजीने

चुपचाप हिन्दी साहित्यकी अनुपम सेवा करके उसको कितना समृद्ध बनाया इसका कुछ आकलन तभी हो सकेगा जब हिन्दीके शोधकर्ताओं, प्राध्यापकों एवं साहित्यकारोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट होगा। हिन्दी साहित्यके इतिहासमें भाईजीका नाम सदैव देदीप्यमान रहेगा।

भगवत्प्रेमका खुला वितरण

तीर्थयात्राके बाद भाईजीके बाह्य जीवनमें कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। तीर्थयात्रासे लौटनेके पश्चात् भाईजी अस्वस्थ हो गये। स्वास्थ्य लाभके लिये भाईजी गोरखपुरसे रतनगढ़ चले गये। अब वे 'श्रीराधा-माधवकी मधुर लीलाओंमें अधिक तल्लीन रहनें लगे। अस्वस्थताकी दृष्टिसे कमरेमें अकेले रहनेसे इस (लीला-प्रवेश) में और अधिक सुविधा हो गयी। वे दृश्य, काव्य रूपसे लिपिबद्ध होनें लगे व्रज-भावके अधिकांश पदोंकी रचना इसके बाद ही हुई। भाईजी अपनी काव्य-रचनाकी पृष्ठभूमिमें लिखते हैं--

"मङ्गलमय भगवान् अनन्त कृपा सिन्धु हैं। उन्होंने कृपा करके मङ्गलमय रोग भेजा। महीनों बिछौनेपर पड़े रहना पड़ा।............लोगोंका मिलना-जुलना प्रायः बन्द हो गया। सहज अकेले रहनेका सुअवसर मिला। चिकित्सा-औषध-पथ्यादिके समयको छोड़कर शेष समय अकेला ही बन्द कमरेमें रहता।........इसी बीच मन्द-मन्द मुसकराते हुए विश्व-जन-मन-मोहन अनन्त आनन्दाम्बुधि श्रीश्यामसुन्दर आते—हँसकर सिरपर वरद हस्त रखकर कहते—'मूर्ख, क्यों रो रहा है? क्यों दीन-हीन बनकर

दुःखी हो रहा है ? चल मेरे साथ व्रजमें; देख वहाँ मेरी दिव्य लीला और परमानन्द-सागरमें निमग्न हो जा ।' श्रीश्यामसुन्दर व्रजेन्द्रनन्दन आनन्द-कंदकी मधुरतम वाणी सुनते ही मनका दैन्य भाग जाता । मन मन्त्रमुग्धकी भाँति उसी क्षण चल पड़ता उनके पीछे-पीछे । वे उसे परम रम्य क्षेत्रमें छोड़कर चले जाते और लग जाते अपने लीला विहारमें ।

मन स्वच्छन्द विचरण करता—कभी नन्दबाबाके आँगनमें, कभी यशोदामैयाके प्राङ्गणमें, कभी गोष्ठमें,········· कभी कालिन्दीके कूलपर, कभी रासमण्डलमें, कभी प्रेममयी गोपाङ्गनाओंके समुदायमें, कभी अकेली गोपीके घरमें,··· ·············कभी श्रीमतीके पास, कभी श्यामसुन्दरके पास, कभी निभृत निकुञ्जोंमें··················इस प्रकार प्रतिदिन-दिनरात महीनोंतक यह दैन्य और लीला-दर्शनका प्रवाह चलता रहा । मनने शत-शत विविध विचित्र लीलाएँ एवं श्रीराधाकृष्णकी अनूप रूप-माधुरी देखी, समझी और किसी-किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया ।················वहाँ जो देखा, वह सर्वथा अलौकिक, दिव्य, मन-वाणीसे अतीत था, अत्यन्त विलक्षण था । उसका पूर्ण वर्णन सम्भव नहीं है । उसके लिये शब्द नहीं हैं । परन्तु जितना कुछ शब्दोंमें आ सकता था, उसके बहुत ही थोड़े अंशको तथा दैन्यभावकी स्थितिमें प्रकट मनके बहुत ही थोड़े-से उद्गारोंका इन तुकबंदियोंमें चित्रण करनेका प्रयास किया गया है ।"

समझनेके लिये ऐसा कहा जा सकता है कि इसके

पहले तक भाईजीके बाह्य-जीवनमें आचार्य-कोटिके संतकी प्रधानता रही और इसके पश्चात् व्रज भावके मधुर-रस निमग्न संत की। भाईजीके सत्सङ्गके प्रवचनोंमें भी इसके पश्चात् भगवत्प्रेमके भावोंका अधिक विश्लेषण हुआ। श्रीराधाष्टमी महोत्सवने पहलेकी अपेक्षा अधिक दिव्य और विशाल रूप धारण कर लिया। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो लीला-संवरणके पूर्व भगवत्प्रेमको खुले रूपसे वितरण करनेका अध्याय प्रारम्भ किया गया हो, जिससे जिन साधकोंके मनमें यत्किञ्चित् भी प्रेम-प्राप्तिकी अभिलाषा हो उनमें प्रेमका बीजारोपण हो जाय। भाईजी पत्रोंके माध्यमसे जो साधकोंका पथ-निर्देष करते थे उसमें भी प्रेमके भावोंका अधिक निरूपण होने लगा। इस सभीका प्रभाव भी होने लगा एवं कुछ साधकोंमें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कुछ भगवत्प्रेमका यत्किञ्चित् बीजारोपण हुआ हो। इसका संकेत कुछ साधकोंके पत्रोंसे प्राप्त होता है जिनके कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं--

"..................तुमपर जो श्यामसुन्दरकी प्रेमामृतधारा बहने लगी है, वह अनवरत बहती ही रहेगी। उसमें न विराम हुआ है, न होगा............वह स्वयं ही बहकर, स्वयं ही तुम्हें अपने अन्दर मिला लेने योग्य बना रही है। बना ही लेगी। जब वह एक बार तुम्हारी ओर बह चली है तब तुम्हारा उसमें आत्मसात् हो ही गया।"

"तुम्हारे एक पत्रमें भगवान्‌के प्रति तुम्हारे मनमें उदय होनेवाले मधुरतम भावोंका बड़ा ही मधुर, हृदय स्पर्शी मनकी मधुमयी स्थितिका दिग्दर्शन करानेवाले वर्णनको

पढ़कर बड़ा ही सुख मिला। तुम्हारे इन पवित्र सुधा-रस तरङ्गोंमें मन तरङ्गित होने लगा और फिर उन्हीं तरङ्गोंके समुद्रमें डूब गया। बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। यह भी तुम पर श्रीभगवान्‌की अत्यन्त अनुकम्पा तथा परम प्रीतिका ही निदर्शन है।"

"तुम पर भगवान्‌की सचमुच ही बड़ी कृपा है जो तुम्हें उनकी पवित्रतम, दिव्यतम मधुर लीलाओंके चिन्तन दर्शनका सौभाग्य प्राप्त है। भगवान्‌की इस महान् कृपाके लिये सदा उसके कृतज्ञ रहो और उनके चरणोंमें न्यौछावर करके धन्य हो जाओ।"

"तुमलोग जिस भाव जगत्‌में विचरण कर रहे हो, उसमें तो सुख-ही-सुख, माधुर्य-ही-माधुर्य, हँसी-ही-हँसी, उन्माद-ही-उन्माद है और यदि जीवनका स्वरूप बन जाय तो वह मधुरतम श्यामसुन्दरका लीला धाम ही बन जाता है।"

"...............के विस्मय पूर्ण परिवर्तन सभी भगवत्-कृपाके प्रत्यक्ष चमत्कार हैं। तुम लोगोंका यह भाव प्रवाह नित्य निरन्तर अनन्तकी ओर उत्तरोत्तर अधिक वेगसे प्रवाहित होता रहेगा तो बड़ी ही अनुपम वस्तु प्राप्त होगी। पर यह सब तुम लोग अपनेमें ही रखना। इन भाव सुधामय महामूल्यवान रसमय रत्नोंको कुंजड़ोंके बाजारमें कभी नहीं रखना है। तभी इनका सौन्दर्य परम पवित्रताको बढ़ाता हुआ उत्तरोत्तर निखरता रहेगा।"

"भगवत्प्रेमका स्वरूप है—जगत्‌के विषयोंसे सहज विरक्ति, उनमें सुख-भावनाका नाश। सर्वत्र सर्वदा

भगवत्सुखकी अनुभूति, भगवान्‌का मधुर चिन्तन, भगवान्‌के मानस चक्षुओंसे नित्य दर्शन। दैवी सम्पत्तिका बढ़ना। सो यह तुम लोगोंमें सहज हो रहा है, इससे पता लगता है तुम लोगोंपर भगवान्‌की अत्यन्त कृपा है और उनकी विशुद्ध प्रीति तुम्हारे जीवनमें आ रही है।"

"………की 'केवट-लीला' और……की 'अश्वारोही-लीला'—दोनों ही बड़ी मधुर थी। केवटके कन्धे पर श्री-राधाजीके द्वारा हाथ रखकर प्रियतमकी रूप-माधुरीका नेत्रों द्वारा पान करना तो अत्यन्त मधुर था ही, पर एक ही झटकेसे जकड़कर श्यामसुन्दरका रस-पान करना उससे भी मधुर था। 'यही उस दिनका जलपान हुआ।' ठीक है। वे ऐसे ही जलपानकी तो ताकमें रहा करते हैं। सदा ही प्यास बढ़ती रहती है उनकी—इस रस-पानकी। जय हो—इस दिव्य रस-पानकी। पर उधर रस-दानमें भी यही हाल है। इस रस-पान और रस-दानकी इच्छा कभी न पूरी होती है, न होगी ही।"

"तुम लोगोंके प्रति मेरा मन भी खिंचा जा रहा है। बड़ी मधुर स्मृति होती है। जिसके स्मरणसे भगवान्‌का स्मरण हो, जिसके संगसे भगवान्‌का संग प्राप्त हो, वह निश्चय ही परमादरणीय तथा परमहितैषी है। तुम लोगों-का स्मरण मुझे भगवान्‌की बड़ी प्यारी याद दिलाता है, इससे तुम्हारा स्मरण भी मुझे परम प्रिय लगता है।……… तुम तथा ऐसे ही अन्यान्य प्रेमी व्यक्तियोंको मैं सदा मन ही मन पत्र लिखता, एवं उनसे मिलकर बात-चीत करता रहता हूँ। बातचीतका विषय एक ही होता है। "प्रियतम श्रीमाधव-

की लीला माधुरी ।" पत्र नहीं लिख पाता उसके लिये समय आदिकी सुविधा चाहिये, परन्तु मानसिक तो सब कुछ किसी भी समय हो सकता है और वही होता है । ऋषिकेश तुम लोग आ सके तो बड़ा ही आनन्द होगा, परन्तु वहाँ मैं 'सार्वजनिक' पञ्चायतका बर्तन रहूँगा । तुम लोगोंके साथ कितना कैसे मिल सकूंगा, पता नहीं । परन्तु वैसे तो नित्य मिलता ही रहूँगा—जो असली है ।"

इन कतिपय व्यक्तिगत पत्रोंके उद्गारोंसे अनुमान होता है कि कुछ साधकोंके जीवनमें भाईजीने प्रेमका भावांकुर पैदा किया था या वैसी चेष्टा की थी । प्रेम-वितरणका यह क्रम कई वर्षोंतक चलता रहा । उसके पश्चात् जब भाईजी भाव-समाधिमें अधिक समय रहने लगे एवं वृत्तिने 'इधर' की किसी भी वस्तुको पकड़ना बन्द कर दिया, तब यह क्रम भी बदल गया । इससे पूर्व ऐसे पत्र दादरीमें एकान्त-वासके समय केवल रैहाना तैय्यबजीको लिखे गये थे ।

श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा

तीर्थ-यात्राके बाद भाईजी अस्वस्थ हो गये थे । स्वास्थ्य लाभके लिये मार्गशीर्ष कृष्ण ५ सं० २०१३ को भाईजी गोरखपुरसे रवाना होकर रतनगढ़ गये । वहाँ अधिक समय एकान्तमें कमरा बन्द किये रहते थे । वहींसे माघ शुक्ल १० एवं ११ सं० २०१४ को श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करने गये । साथमें परिवारके सदस्योंके अतिरिक्त प्रेमीजन भी गये । दो दिनमें श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा

सानन्द उत्साह पूर्वक सम्पन्न हुई। वहाँसे बरसाना श्रीराधाजीके दर्शन करने भी सपरिवार गये। बैसाख कृष्ण १० सं० २०१५ को रतनगढ़से गोरखपुर लौट आये।

श्रीघनश्यामदासजी जालानका देहावसान

यद्यपि भाईजी पूर्ण स्वस्थ नहीं हुए थे, परन्तु श्रीघनश्यामदासजी जालानके अधिक रुग्ण हो जानेसे श्रीसेठजीके अत्यधिक आग्रहके कारण ज्येष्ठ शुक्ल २ सं० २०१५ को भाईजी गोरखपुरसे रवाना होकर स्वर्गाश्रम गये। इन्होंने गीताप्रेसके उत्थानके लिये आजीवन अथक परिश्रम किया एवं इसीलिये जीवन पर्यन्त गीताप्रेसके मुद्रक एवं प्रकाशक बने रहे। ज्येष्ठ कृष्ण ६ सं० २०१५ को स्वर्गाश्रममें गीताभवनके गङ्गाघाटपर श्रीसेठजी एवं भाईजीके सन्निध्यमें संकीर्तनके मध्य इन्होंने अपना देह त्याग किया। इनके बाद मुद्रक एवं प्रकाशककी जिम्मेवारी भी भाईजीको सौंपी गयी।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुराके मन्दिरका उद्‌घाटन

श्रीराम-जन्मभूमि अयोध्याकी भाँति मथुरामें श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका गौरव भी लुप्तप्राय हो गया था। वहाँके प्राचीन मन्दिरको मुगल सम्राटोंने ध्वस्त कर दिया था। महामना मालवीयजीकी प्रेरणासे इसके पुनरुद्धार करनेका कार्य श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाने अपने हाथमें लिया था। परन्तु श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके लुप्त गौरवकी पुनर्स्थापनाके लिये मन्दिर और भागवत-भवनके निर्माणकी योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करानेका श्रेय भाईजीको ही है। इसकी

भूमिका बनी थी भाईजीकी तीर्थयात्राके समय। जब भाईजी मथुरा पधारे तो उनके स्वागत-समारोहके समय एक सज्जनने कहा—"मथुरामें प्रतिवर्ष लाखों यात्री आते हैं। ऐसा कौन है जिसका हृदय श्रीकृष्ण-जन्मभूमिकी वर्तमान दुरवस्थाको देखकर शतधा विदीर्ण न होता हो ?" समारोह-के अन्तमें कृतज्ञता-ज्ञापनके लिये जब भाईजी खड़े हुए तो अश्रुपूरित नेत्रों सहित बोले—"जन्मस्थानके प्रति जो कुछ कहा गया, उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। एतन्निमित अपने क्षुद्र प्रयास भी अर्पित करनेको प्रस्तुत हूँ। शीघ्र ही दस हजार रुपये आप लोगोंकी सेवामें भेजनेका विचार है। वास्तवमें यह कार्य आपके ही कर्तव्य-पालनकी अपेक्षा करता है।" इसे सुनकर उपस्थित लोगोंके हर्षका पार नहीं रहा।

गोरखपुर लौटनेपर दस हजार रुपये भाईजीने तत्काल भेज दिये। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर श्रीकेशवदेव-मन्दिरके निर्माणके लिये डालमिया बन्धुओंको प्रेरित किया। श्रीरामकृष्ण डालमियाने अपनी मातुश्री-की पुण्य स्मृतिमें श्रीकेशव-देव मन्दिरका निर्माण करवाया। इस मन्दिरका उद्घाटन करनेके लिये भाईजी मथुरा गये एवं श्रीकृन्ण-जन्माष्टमी सं० २०१५ के दिन भाईजीके कर-कमलोंसे इस मन्दिरका उद्घाटन हुआ। उद्घाटन-महोत्सवके समय भाईजीने अपने भाषणमें कहा—"श्रीकृष्णजन्मभूमि-उद्धारके इस महान कार्यसे 'देशका मुख उज्जवल' हुआ।"

श्रीराधाष्टमी-महामहोत्सव

वैसे तो भाईजीके यहाँ प्रायः सभी अवतारोंके प्राकट्य-उत्सव मनाये जाते थे—जैसे नृसिंह-चतुर्दशी, वामन-द्वादशी, राम-नवमी, जानकी-नवमी आदि—परन्तु श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीके उत्सव विशेष रूपसे मनाये जाते थे। इनमें भी श्रीराधाष्टमीका स्थान सर्वोपरि रहा। राधाष्टमीको महोत्सव रूपमें मनानेका प्रचार विशेषतया भाईजीके द्वारा ही हुआ। बरसानेमें तो यह उत्सव मनाया ही जाता था पर अन्य स्थानोंमें इसका अधिक प्रचार नहीं था। नित्यलीलालीन होनेके लगभग ३० वर्ष पूर्वसे इसका महोत्सव रूप प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे विस्तार होने लगा एवं बाहरसे भी सम्मिलित होनेके लिये प्रेमीजन आने लगे। तीर्थयात्राके बाद सं० २०१२से इसका रूप बहुत विशाल हो गया और यह महोत्सव एक साधनाका अमर बोधिवृक्ष हो गया। इसकी सघन छायामें लाखों नर-नारी आश्रय पाकर शान्तिका अनुभव करने लगे। जो व्यक्ति एकबार इसमें सम्मिलित हो गया उसे दुबारा आनेके लिये किसीको कहना नहीं पड़ता।

महोत्सवके लगभग एक मास पूर्वसे इसकी तैयारी प्रारम्भ हो जाती। चित्रकार, राजमिस्त्री, बढ़ई सब दत्तचित्त होकर कार्यमें जुट पड़ते। दो तीन दिन पूर्वसे ही बाहरसे महानुभावोंके समूहके समूह पधारने लगते। सभीके आवास-की व्यवस्था भाईजी स्वयं संभालते। हजारों लोग बाहरसे पधारकर एक राधा-परिवारमें सम्मिलित होनेका अनुभव

करते। प्रातः एवं सायंकाल पद-गायन, संकीर्तन एवं प्रवचन-का संचालन भाईजी स्वयं करते। लोग आनन्दमें डूबे रहते।

भाद्रपद शुक्ल ८ को महोत्सवका प्रारम्भ प्रातः लगभग ४।। बजे शहनाईवादनसे। उसके पश्चात् ५।। बजेसे प्रभात-फेरी प्रारम्भ होती। लोग भाव-विभोर नृत्य करते हुए ऊपर भाईजीके पास जाते एवं भाइजी भी बाहर छतपर आ जाते। लगभग ८।। बजे बिशाल पंडालमें गरिमाके मूर्तिमान रूप भाईजी आकर बैठ जाते। पंडालमें सर्वप्रथम भाईजीका प्रवचन होता। तदुपरान्त भाईजी कुटियासे बाबाको ले आते दोनों मंचपर विराजमान हो जाते। बाबा भावराज्यमें स्थित रहते दिनभर पदगायन, संकीर्तन, प्रवचन आदिका क्रम चलता रहता। सभी लोग आँखे बन्द किये पाँच मिनट जन्मकी प्रतिक्षा करते और बारह बजे शंख, घण्टा, घड़ियाल-के स्वरसे दिशायें निनादित हो उठती। लगभग ४ बजे कार्यक्रमका समापन होता, फिर प्रसाद-वितरण। रात्रिमें भावुक भक्तों द्वारा जागरण होता, जिसमें संकीर्तन और पद-गायन होते। दूसरे दिन दधिकर्दमोत्सव होता, जिसमें मनों दहीके साथ हरिद्रा, केसर, कपूर, इत्र, गुलाबजल आदि मिलाकर दधिकीच तैयार किया जाता जिसे श्रीराधाकुमारी-को अर्पण करनेके पश्चात् उद्दाम-कीर्तनके समय सभी पर उछाला जाता—सभी रसमें सराबोर हो जाते। बधाईके पदोंके पश्चात् भाईजीका समापन प्रवचन होता, जिसकी प्रतिक्षा उपस्थित समूह करता रहता। वे कहते "अब यह उत्सव सम्पन्न हो रहा है—समाप्त नहीं, समाप्त तो यह कभी होता ही नहीं—यह तो नित्य चलता रहता है। आजके

दिन हम कामना करें--हमें भी श्रीराधाजीकी कृपाका एक सीकर प्राप्त हो जाय। आने वाले सब कष्ट उठाकर आये हैं, उनका स्नेह है, कृपा है, धन्यवाद किसे दूँ ? सभी तो अपने हैं।"

इस दो दिनोंके आनन्दका शब्दों द्वारा चित्र प्रस्तुत करना असम्भव है। जो इसमें सम्मिलित हुए हैं, वे ही इसका अनुभव कर सके हैं। किसको भाव राज्यमें क्या मिलता था यह वर्णनका विषय नहीं है। इसका प्रारम्भ एक विशेष उद्देश्यसे हुआ था और उस उद्देश्यकी पूर्ति कहाँ तक हुई--इसका निर्णय भी वे ही कर सकते हैं। महोत्सव तो आजतक भी उसी रूपमें गीता वाटिकामें मनाया जाता है पर उसके प्राण भाईजी सशरीर नहीं रहे। अब तो यह महोत्सव और भी कई स्थानोंपर मनाया जाने लगा है।

ग्यारह रहस्यपूर्ण घटनायें

भाईजीने अपने अपने जीवनमें चमत्कारपूर्ण घटनाओं-को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया, अपितु सभी अलौकिक घटनाओंको छिपानेका सतत प्रयास किया। किन्तु उनमें एक ऐसी दिव्य शक्ति कार्य कर रही थी, जिससे केवल निकट रहनेवालोंको ही नहीं बल्कि अपरिचित साधकों, दूर-दूर स्थानोंके निवासियोंको अलौकिक अनुभूतियाँ भाईजीके सम्बन्धमें होती रहीं। ऐसी दिव्य अनुभूतियोंका सम्पूर्ण विवरण सम्भव नहीं है। यहाँ थोड़ेसे ऐसे प्रसङ्ग दिये जा रहे हैं, जिससे भाईजीके जीवनकी दिव्यताकी झलक प्राप्त होती है—

(१) पारसी प्रेतसे साक्षात् मिलन एवं अन्य लोकोंसे सम्बन्ध

भाईजीके बम्बई-निवासके समय लगभग सं० १९८२ की घटना है। भाईजीने इसका विवरण एक प्रसङ्गमें बताया था—

"साधना प्रारम्भ होनेपर उसमें तीव्रता आने लगी थी। मैं प्रतिदिन सायङ्काल भोजन करनेके पश्चात् चौपाटीमें समुद्रके किनारे चला जाता था। बहुत-सी बेन्चें पड़ी रहती थीं, वहाँ बैठकर नाम-जप एवं भगवच्चिंतन करता था। एकान्त रहता था, कुछ अंधेरा-सा रहता था। एक दिन मैं बेन्चपर बैठा नाम-जप कर रहा था। अचानक मेरी बेन्चके ठीक सामने मेरे पैरोंकी तरफ एक पारसी सज्जन खड़े दिखायी दिये। पारसियोंके जो पुरोहित विशेष प्रकारकी पोशाक पहनते हैं, वैसी पोशाक पहने हुए थे। बहुत देर तक मैं नाम-जप करता रहा, वे खड़े रहे। फिर सभ्यतावश मैंने कहा—"साहेबजी ! आप बैठ जाइये, खड़े-खड़े आपको बहुत देर हो गयी।" वे बोले—"आप डरियेगा नहीं, मैं प्रेत हूँ।" यह सुनते ही मैं भयभीत हो गया, मुझे पसीना आ गया। उन्होंने फिर कहा—"आप डरिये नहीं, मैं आपका अनिष्ट नहीं करूँगा। मैं आपसे सहायता चाहता हूँ, आपका मङ्गल होगा।" यह सुनकर मैं कुछ आश्वस्त हुआ। उन्होंने कहा—"यदि आप पहले मुझसे बात नहीं करते तो मैं बोल नहीं पाता। मुझमें ऐसी ताकत नहीं है कि यहाँके लोगोंसे मैं पहले बोल सकूँ। इसीलिये मैं प्रतिक्षा करता रहा कि आप बोलें। प्रेत लोकमें अनेक स्तर हैं, प्रेतोंकी विभिन्न

शक्तियाँ हैं। मैं सब जगह जा सकता हूँ, हर एकको दिखायी दे सकता हूँ, पर मुझसे कोई पहले नहीं बोले तो मैं बोल नहीं सकता। प्रेत-लोकमें मेरी स्थिति अच्छी नहीं है। आप कृपा करके किसीको भेजकर गयामें मेरे लिये पिण्डदान करवा दें तो मेरी सद्गति हो जायेगी।" मैंने उनसे कहा—"आप पारसी हैं, आप लोग श्राद्धपर विश्वास नहीं करते, फिर श्राद्ध करनेकी बात कैसे कहते हैं।" उन्होंने उत्तर दिया—"सत्य यदि सत्य है तो जाति सापेक्ष नहीं है। जीवमें जातिका भेद नहीं होता।" उन्होंने अपने बम्बईके निवास स्थानका नाम-पता बताया। इसके पश्चात् वे अन्तर्धान हो गये। दूसरे दिन उनके कथनानुसार मैंने उनका पता लगाया। वे बम्बईके बाँदरा नामक अञ्चलमें रहते थे। छः महीने पहले उनकी मृत्यु हुई थी। उनके नाम आदि सब पता मिल गया। वे पारसी होनेपर भी गीतापाठ किया करते थे। सब बातोंका ठीक-ठीक पता लग जानेपर मैंने अपने पास रहने वाले हरीराम ब्राह्मणको गया भेजकर उनका श्राद्ध एवं पिण्डदान करवाया। जिस दिन गयामें उनके लिये पिण्डदान हुआ, उसी दिन चौपाटीमें ही मुझे उनके फिर दर्शन हुए। उन्होंने कहा—"मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने आया हूँ। आपने मेरा काम कर दिया। अब मैं प्रेतलोकसे उच्च लोकमें जा रहा हूँ।" उनकी बात सुनकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ।

मैंने प्रेतसे प्रेतलोककी स्थिति, वहाँके जीवन-कर्मोंके फल आदिके बारेमें बहुत-सी बातें पूछी। उन्होंने सब बातोंका सविस्तार उत्तर दिया। उन्होंने बताया—किसीके प्रति

बैर लेकर मरने वालेकी बहुत दुर्गति होती है। उसे नरकों-में बड़ा कष्ट होता है। सब नरक सत्य हैं। नाना प्रकारके पाप करने वालोंकी भी बहुत दुर्गति होती है। प्रेतलोकमें बहुतसे सद्भावना युक्त प्रेत हैं, बहुत-से दुर्भावना युक्त। वृत्ति-के अनुसार उनके स्वभाव एवं कर्म होते हैं। इस जीवनके सम्बन्ध उनको स्मरण रहते हैं और उसी प्रकारका बर्ताव यहाँके व्यक्तियोंके प्रति करनेकी चेष्टा करते हैं। अच्छे प्रेतों-को कुछ दिन वहाँ रखकर पितृलोकमें भेज दिया जाता है। वहाँ भी पहलेके अभ्यासके अनुसार भजनकी प्रवृत्ति होती है। प्रेतलोकके प्राणियोंके लिये अन्न-जल वस्त्रादिका दान उनके नामपर घरवालोंको सदा करते रहना चाहिये। प्रेतों-को सद्गति प्राप्त करानेके लिये गयाश्राद्ध, पिण्डदान, गायत्री-जप, भागवत-पारायण, विष्णुसहस्रनाम-पाठ और अपने-अपने धर्मानुसार भगवान्‌की प्रार्थना करनेसे उन्हें बहुत लाभ होता है।

इसके पश्चात् भाईजीने उस प्रेतके माध्यमसे वहाँकी कुछ आत्माओंसे सम्पर्क स्थापित कर लिया। कुछ दिव्य लोकोंसे भी सम्बन्ध हो गया। किसी व्यक्तिकी मृत्युके बाद क्या स्थिति है, इसका पता वहाँके कुछ प्राणियोंके माध्यमसे, जिनसे भाईजीने घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर लिया था, लगाया करते थे। भाईजीके निकट सम्पर्कमें आने वाले लोग अपने स्वजनोंकी गतिके विषयमें पता लगाया करते थे। भाईजी मृत व्यक्तिका नाम, गोत्र, जिस स्थानपर मृत्यु हुई तथा उसके दाह-संस्कारके स्थानका पता उन लोकोंके प्राणियोंको दे देते थे। उनके प्रयत्नसे कुछ व्यक्तियोंका

ठीक-ठीक पता लग जाता था, कुछका अधूरा एवं कुछका बिलकुल ही नहीं लगता था। ऐसे दस-बीस 'केस' बराबर पता लगानेके लिये रहते थे।

कुछ वर्ष पूर्व बनारसके एक होटलमें एक व्यक्ति द्वारा अपने मित्रकी हत्या कर दी गयी। उसकी पत्नी गोरखपुरकी बालिका थी। वह बहुत दुःखी थी। भाईजीने उसके कहनेपर वहाँके लोकोंके प्राणियोंसे पता लगाया और उनका बताया हुआ उपाय करवाया। उस व्यक्तिकी सद्गति हो गयी। ऐसे ही कलकत्तेके एक सज्जनने अपने पिताकी स्थितिका पता लगानेके लिये भाईजीसे प्रार्थनाकी तो कुछ दिनों बाद भाईजीने पता लगाकर बताया कि वे ऊँचे लोकोंकी ओर जा रहे हैं।

(२) स्वप्नमें भाईजी द्वारा लिखित पुस्तक-प्राप्ति

नागपुरके पास किसी गाँवमें एक सज्जन श्रीदेश पाण्डेजीको रातमें स्वप्नमें एक महात्माके दर्शन हुए, जिनकी आकृति श्रीशिवजी जैसी थी। उन्होंने स्वप्नमें ही श्रीदेश पाण्डेको भाईजी द्वारा लिखित पुस्तक "साधन-पथ" दी। जागनेपर वह पुस्तक उन्हें बिछावन पर मिली तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। इस घटनाका विवरण देकर उन्होंने भाईजीको पत्र लिखा उस पत्रको भाईजी-ने नष्ट कर दिया। भाईजीने जो उत्तर भेजा वह नीचे दिया जा रहा है—

श्रीहरिः

गोरखपुर

श्रीदेशपाण्डेजी, बैसाख कृष्ण ८ सं० १९९२

सप्रेम हरिस्मरण।

आपका पत्र मिला। आपके पत्रमें लिखी बात यदि सत्य है तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। इससे मैं आपके लेखकी सत्यतामें संदेह करता हूँ, ऐसा नहीं समझना चाहिये। मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मुझे इस सम्बन्धमें कुछ भी पता नहीं है। आपका यह पत्र मिलनेसे पूर्व मैं इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानता था। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझमें कोई भी सिद्धि नहीं है। 'साधन-पथ' नामक पुस्तक स्वप्नमें आपको किसी महात्माने दी और जागनेपर वह आपके बिछावनपर मिली, यह आपकी ही श्रद्धाका फल होगा। वे महात्मा कौन थे, मैं कुछ भी नहीं जानता। इसमें क्या रहस्य है, मुझे कुछ भी पता नहीं है। आप कृपया अवश्य लिखिये कि उन महात्माने आपको और कुछ कहा या नहीं, कहा तो क्या कहा? आपने जो उनकी आकृति लिखी, वह तो भगवान् शिवकी-सी मालूम होती है। आप भाग्यवान् हैं, जो स्वप्नमें महात्माने आपको दर्शन दिया। 'साधन-पथ' में जो कुछ लिखा गया है, सो सब शास्त्रोंके आधारपर ही लिखा गया है। मेरा उसमें क्या है? देखता हूँ तो मुझमें वे बातें सब नहीं मिलती। अतएव मैं आपको क्या उपदेश दूँ? उपदेश देनेका तो मेरा अधिकार भी नहीं है। 'साधन-पथ'

पढ़नेसे आपको शान्ति मिलती है, इसको आप महात्माका प्रसाद समझिये, मेरा कुछ भी न समझिये। आप साधन करके भगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हैं, यह बड़े आनन्दकी बात है।

आपका,

हनुमानप्रसाद पोद्दार

(३) अंग्रेजभक्तको 'हृषिकेश'का दर्शन

'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु'के द्वारा कितने विदेश-वासियोंको अध्यात्मका मार्ग-दर्शन मिला इसकी गणना करना सम्भव नहीं है। इसकी एक झलक अंग्रेज कृष्णभक्त श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारी (रोनाल्ड निक्सन) के निम्नलिखित पत्र एवं उत्तरसे मिल सकेगी—

श्रद्धेय सम्पादकजी, १७-१-३५

'कल्याण', गोरखपुर।

करीब ११ वर्षका 'हृषिकेश' नामका साँवरे रङ्गका परम सुन्दर बालक आज लगभग १२ बजे दोपहरको आया। उस समय यह 'श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारी' पौष मासके 'कल्याण' भाग ९ संख्या ६ को बड़े ध्यान और प्रेमसे पढ़ रहा था। बड़ी नम्रता-पूर्वक उस बालकने इस भिखारीसे एक छोटी ताबीज साइजकी गीता माँगी और कहा कि "गीता अध्याय ८ के २२ वें श्लोकको पढ़ा दीजिये एवं समझा दीजिये।" ज्यों ही यह भिखारी 'अनन्याश्चिन्त-यन्तो माम्' पढ़ने लगा, त्यों ही वह कहने लगा कि "गीता भगवान्‌का एक स्वरूप है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।"

इस भिखारीने हृषिकेशसे पूछा--"भाई, तुम कहाँ रहते हो और क्या करते हो ?" उसने प्रेम तथा आनन्दाश्रुओं सहित बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया, "मैं तो 'कल्याण' में रहकर 'कल्याण' द्वारा सब प्राणियोंकी चिन्ता किया करता हूँ। भक्त ही मेरे चिन्तामणि हैं। भगवान्, भक्त और भागवत–तीनों एक ही हैं।" तब इस भिखारीने उनसे पूछा, "भाई, तुम्हारा घर कहाँ है ?" उन्होंने धीमी स्वरमाधुरीसे कहा, "मेरा निवास-स्थान वृन्दावन, सेवाकुञ्जमें है। वहाँके श्रीराधाकृष्ण मेरे इष्टदेव हैं।" इतना सुनकर उन्हें कुछ जलपान करानेकी मेरी इच्छा हुई। तुरन्त यह भिखारी अन्तरङ्ग-विभागमें जलपान लानेके लिये गया। लौटकर देखा—हृषिकेश कहीं चले गये हैं। अनुमानतः ५ मिनटका समय लगा होगा। इस भिखारीने बहुत चेष्टा की और स्वयं ४ मील तक दौड़ा गया, परन्तु उनका कहीं कुछ पता न चला।

जब इस भिखारीसे हृषिकेशका साक्षात्कार हुआ, तब उस स्थानपर संयोगवश कोई नहीं था। बस, इतना आप कृपया सूचित कर दें कि 'हृषिकेश' नामक कोई बालक आपके कार्यालयमें कार्य करता है। क्या वह सेवाकुञ्ज, वृन्दावनमें रहता हैं ? इस कृपाके लिये यह भिखारी आपका अत्यन्त कृतज्ञ होगा।

आपका विनीत शरणागत

राधाकृष्ण प्रेम-भिखारी

भाईजी द्वारा 'श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारी' को लिखा गया उत्तर :–

गोरखपुर
दिनाङ्क २०-१-३५

सम्मान्य श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारीजी,

सादर हरिस्मरण।

आपका तारीख १७-१-३५ का पत्र मिला। 'कल्याण' में हृषिकेश नामक कोई परम सुन्दर बालक नहीं रहता। सेवाकुञ्ज-बिहारी श्रीश्यामसुन्दर सर्वत्र रहते ही हैं। इसलिये 'कल्याण'-कार्यालयमें भी जरूर रहते हैं। 'कल्याण' में विशेषरूपसे रहते हों तो वे जानें। हमलोगोंको तो कभी उन्होंने ब्राह्मण-बालकके रूपमें दर्शन दिया नहीं। सचमुच वे हृषिकेश आपको प्रेम-भिक्षा देनेके लिये यदि आपके समीप पधारे हों तो आप बड़े भाग्यवान् हैं। आपने यह भूल अवश्य की, जो उनको पकड़ नहीं लिया और अपने साथ ही जलपान कराने नहीं ले गये। उन्होंने आपको 'हृषिकेश' नाम कब और कैसे बतलाया, लिखनेकी कृपा कीजियेगा।

आपका
हनुमानप्रसाद पोद्दार

(४) एक बहिनको स्वप्नमें श्रीवृन्दावन-विहारीका श्रीभाईजीसे उपदेश लेनेका आदेश

६ - ५ - ३५

श्रीयुत सम्पादकजीको कृष्णकुमारीका 'ॐ नमो कृष्णाय' ज्ञात हो। मुझे ता० २-५-१९३५ को एक स्वप्न हुआ।

मैंने स्वप्नमें देखा——भगवान् वृन्दावनविहारी आज्ञा दे रहे हैं कि 'मुझे पानेके लिये और मुझमें प्रेम होनेके लिये…… ……हनुमानप्रसादसे उपदेश लो………।

"जात पाँत पूछे नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई॥"

बस इतना ही मैंने सुना कि मेरी आँख खुल गयी। रातके करीब दो बजे थे। मैंने सोचा—'हनुमानप्रसाद' किसका नाम है? यहाँपर तो मैंने किसीका नाम 'हनुमान-प्रसाद' नहीं सुना………। यही सोचते-सोचते निद्रा आ गयी और पुनः स्वप्नमें मुझे सुनायी पड़ा कि 'तुझे भ्रम हो गया कि कौन हनुमानप्रसाद है। अरे, वही हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'कल्याण'-सम्पादक, गोरखपुर।' बस फिर क्या था। मुझे परम आनन्द हुआ। अब आपसे मेरी बार-बार यही प्रार्थना है कि अपनी पुत्री समझकर समय-समयपर आप मुझे उपदेश देते रहिये। भूल-चूक क्षमा कीजिये।

इस पत्रके उत्तरमें भाईजीने जो पत्र लिखा, उसे भी नीचे दिया जा रहा है—

गोरखपुर

प्रिय बहन, ज्येष्ठ सुदी १२, सं० १९९२

सप्रेम हरिस्मरण।

आपका पत्र आये बहुत दिन हो गये। मैं समयपर उत्तर नहीं लिख सका, इसलिये आप क्षमा करें। स्वप्नकी घटना ज्ञात हुई। जिनको स्वप्नमें श्रीवृन्दवनविहारीकी वाणी सुननेको मिलती है, वे सर्वथा धन्य हैं। मेरा तो यह

निवेदन है कि आप श्रीवृन्दावनविहारीसे ही उनसे साक्षात् मिलनेका उपाय पूछिये । उनसे प्रार्थना कीजिये कि किसी दूसरेका नाम बतलाकर क्यों छलते हैं ? मेरा तो यह विश्वास है कि यदि आपकी प्रार्थनामें करुणा और उत्कट इच्छा होगी तो वे स्वयं अपने मिलनेका उपाय आपको बतला सकते हैं । भगवान् श्यामसुन्दर इतने दयालु हैं कि वे अपने बँधनेकी रस्सी आप ही दे देते हैं और आकर स्वयं बँध जाते हैं । बस आप यही प्रार्थना कीजिये और दृढ़ विश्वास रखिये कि जरूर दर्शन देंगे । जिन्होंने आपको स्वप्नमें मुझसे मिलनेकी आज्ञा दी है, वे आपकी सच्ची उत्कण्ठा होनेपर नहीं मिलेंगे, ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये । मेरा तो यही निवेदन है ।

आपका भाई

हनुमानप्रसाद पोद्दार

(५) देवर्षि नारद तथा महर्षि अंगिराके साक्षात् दर्शन

इस अलौकिक घटनाका विवरण देते हुए भाईजीने बताया—

सन् १९३६ में गीता वाटिका (गोरखपुर) में एक वर्षका अखण्ड-संकीर्तन हुआ था । शिमलापालमें 'नारद भक्ति सूत्र' पर मैंने एक विस्तृत टीका लिखी थी । वह टीका उन दिनों प्रकाशित हो रही थी । भागवतकी कथामें भी नारदजीका प्रसङ्ग सुन रखा था । इन सब हेतुओंसे उन दिनों नारदजीके प्रति मनमें बड़ी भावना पैदा हुई । बार-बार उनके दर्शनोंकी लालसा जगने लगी ।

एक दिन रात्रिमें स्वप्नमें दो तेजोमय ब्राह्मण दिखायी दिये। मैं उन्हें पहचान न सका। परिचय पूछनेपर उन्होंने बताया कि हम दोनों नारद और अंगिरा हैं। फिर उन्होंने कहा, "हम कल दिनमें तीन बजे तुमसे मिलनेके लिये प्रत्यक्ष रूपमें आयेंगे।" यह स्वप्न प्रायः जाग्रत अवस्थाके समयका था और इतना स्वाभाविक था कि मुझे उसमें कोई संदेह नहीं रहा। मैंने पीछे बगीचेमें इमलीके पेड़ोंके पास एक कुटिया साफ करवाकर उसके सामने एक बेंच लगवा दी और उसपर दो आसन लगा दिये। मैंने किसी भी व्यक्तिसे इसकी चर्चा नहीं की। मैं स्वयं अपने निवास स्थानके बाहर बरामदेमें बैठ गया और उनकी प्रतिक्षा करने लगा। ठीक तीन बजे दो ब्राह्मण आये और मुझसे मिलना चाहा। मैं उन्हें पहचान गया। ठीक वही आकृति, वही स्वरूप, जो स्वप्नमें मैंने देखा था। मैं पीछे बगीचेमें बढ़ने लगा और वे मेरे पीछे-पीछे चलने लगे। हम लोग उस एकान्त कुटियापर पहुँचे। उन दोनोंको मैंने बेंचपर लगे हुए आसनोंपर बैठा दिया, मैं नीचे बैठ गया। दोनों ब्राह्मण सफेद कपड़े पहने हुए थे, किन्तु आसनपर बैठते ही दोनोंका वास्तविक रूप प्रकट हो गया। बड़ा ही भव्य और दर्शनीय रूप था। वे कुछ देर बैठे रहे और उन्होंने मुझे कुछ बातें कही। अन्तमें उन्होंने कहा, "जब कभी याद करोगे, तब हम आ जायेंगे।" वे मुझ जैसी वाणीमें बोल रहे थे। वे जिस व्यक्तिके सामने प्रकट होते हैं, उससे वे उसकी समझमें आनेवाली भाषामें बोलते हैं।

नारदजीने भाईजीके सामने बहुत-से गूढ़ तत्त्वोंका

रहस्योद्घाटन किया, जिनका शास्त्रोंमें विस्तृत वर्णन नहीं है। इसके बाद भाईजीके जो प्रवचन होते थे तथा 'कल्याण'-में जो लिखते थे, उनमें उन्हीं सिद्धान्तोंका प्रतिपादन होता था। किसीका विरोध करनेकी प्रवृत्ति नहीं थी।

इसके पश्चात् तो नारदजी आदि देवर्षिगण भाईजीसे वार्तालाप करनेके लिये पधारते रहते थे क्योंकि भाईजी भी दिव्य-संत-मण्डलमें सम्मिलित कर लिये गये थे। ऐसी एक और घटनाका संकेत वृन्दावनके एक रसिक विद्वान्से प्राप्त हुआ जो कई बार भाईजीसे मिलने आया करते थे। एक बार वे गोरखपुर आये हुए थे। भाईजीसे मिलनेके लिये ऊपरवाले कमरेकी सीढ़ियोंपर चढ़ रहे थे। वे प्रायः नजर नीचेकी ओर रखा करते थे। उन्हें लगा कि कोई ऊपरसे आ रहा है तो वे एक तरफ हो गये। फिर भाईजीके कमरेमें गये तो भाईजी मुसकुराने लगे। उन्होंने कारण पूछा तो भाईजी ऐसे ही टालने लगे। वे आग्रह करते रहे तो भाईजीने पूछा—"अभी आपको रास्तेमें कोई मिले थे क्या ?" उन्होंने उत्तर दिया कोई ऊपरसे आ रहे थे पर मेरी नजर नीची होनेसे मैंने ध्यान नहीं दिया। भाईजीने कहा—"अभी नारदजी आये थे।"

(६) श्रीरामनाथजी 'सुमन' पर अयाचित कृपा

किसीकी सहायता करनेका भी भाईजीका एक अद्भुत तरीका था। ऐसे अगणित उदाहरण है जहाँ दूसरेको तो क्या स्वयं जिसकी सहायता करते थे उसे प्रकट रूपसे पता नहीं लगता था। ऐसा ही एक उदाहरण श्रीरामनाथजी 'सुमन' के शब्दोंमें पढ़िये—

"बिना लिखे, बिना कहे महीनोंसे जब पत्र-व्यवहार नहीं, मिलना नहीं, न जाने कैसे उन्हें मेरे कष्टोंका पता लग जाता था। सन् १९३९ की बात है। मैं अत्यन्त मारक रोगोंके पंजेमें फँसी पत्नीको जलवायु-परिवर्तनार्थ दिल्लीसे प्रयाग ले आया था। साधन-हीन और अकिंचन, पास कोई पूँजी नहीं, क्योंकि मुझपर उन दिनों बापूजीका गहरा रंग चढ़ा था और वे कलके लिये सोचने और संचय करनेको नास्तिकता कहते और मानते थे। महीनेका अन्तिम दिन था। मैं बाहर चबूतरेपर बैठा चिंतामें मग्न था, मेरे पास कुल तीन चार रुपये बच रहे थे और पहली तारीख (आने वाला कल) को ग्वाले, महरी, महाराजिन, मकान मालिक सबको पैसे चुकाने थे। मैं नया नया आया था और अपरचित था। मेरे कहनेपर कोई विश्वास ही क्यों करता? सौ बैठा हुआ आँखे मूँदकर भगवान्को पुकार रहा था—कैसे होगा, क्या होगा, पत्नीके गहने एक एक करके पहले ही बिक चुके थे। आँखे मेरी बन्द हैं और 'निरालम्बमीश'के प्रति गुहारके साथ भी अपनी विवशता और असहाय अवस्था पर आँसू गिर रहे हैं। अचानक एक पोस्टमैन आता है। मैं अपनेमें इतना डूबा हूँ कि मुझे कुछ भान नहीं होता। पोस्टमैन पुकारता है—'बाबूजी आपका बीमा है।' अब मैं सोचता हूँ कि जो सज्जन पहले उस मकानमें रहते होंगे उनका होगा। इस लिये सूखी हँसी हँसकर कहा—'भैया मेरा नहीं होगा।' परन्तु देखिये तो कहकर उसने उसे मेरे हाथमें पकड़ा दिया। सचमुच मेरा ही है। तीन सौ रुपयेका बीमा है, 'कल्याण' से आया है। इस बीमारीके कारण

लगभग डेढ़ सालसे मैंने भाईजीको कोई पत्र नहीं लिखा था, कोई हाल चाल उन्हें मालूम न था। उनके अनुरोधपर 'कल्याण' में मैंने कुछ लेख लिखे थे। 'कल्याण' प्रायः पारिश्रमिक नहीं देता, न उसकी कोई बात चीत थी, न माँग थी, आज तक मैं न जान सका कि भाईजीको कैसे ये सब मालूम हुआ, कैसे उन्हें मेरे तत्कालीन पतेका ज्ञान हुआ और कैसे उन्होंने बिना किसी भूमिका या पत्रके, पर्देकी ओटमें छिपे दीनबन्धुकी भाँति, वे रुपये भिजवाये। पूछने पर वे हँस देते थे, कभी बताया नहीं।

अब मेरी हालत सुनिये। बीमा लेना तो मैं भूल गया हूँ, आँखे पुनः मूँद गयी हैं और आँसू गिर रहे हैं। पोस्टमैन घबरा गया है और कुछ देर तक ठक सा देखता रह जाता है। फिर मेरा कंधा हिलाकर कहता है बाबूजी क्या बात है? रसीदपर दस्तखत तो कीजिये। मैं हस्ताक्षर करता हूँ, परन्तु रोये जा रहा हूँ। और रोये जा रहा हूँ। यह जीवनमें भगवद्दर्शन है और भाईजी भगवान्के आवाक हैं।

(७) श्रीरियाज अहमद अन्सारीको आत्म-हत्या करनेसे बचाया

'श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर' अयोध्यामें श्रीअन्सारीके विचार समाचार-पत्रमें पढ़कर भाईजीने इन्हें मिलनेके लिये बुलाया था। उसी समयसे इनका परिचय भाईजीसे बढ़ने लगा एवं कई बार भाईजीसे मिले। कुछ कारण-वश ये अत्यन्त आर्थिक कठिनाईका सामना करने लगे। किन्तु भाईजीके समक्ष इन्होंने अपने कष्टको कभी नहीं रखा। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि घरमें खानेके लिये कुछ नहीं बचा।

इनके घर लगातार तीन दिनोंतक भोजन नहीं बना। इनका शरीर कमजोर हो गया और बीमार जैसे प्रतीत होने लगे। घरमें दो बच्चोंसे छोटी लड़की शहेदा, जिसकी उम्र चार सालकी थी, भूखसे बहुत रोने लगी। घरका दृश्य देखकर और विशेषतया बच्चीको भूखसे रोता देखकर इनकी सहन-शक्ति समाप्त हो गयी। बहुत सोच-विचारकर इन्होंने आने वाली रात्रिमें आत्म-हत्या करनेका निश्चय कर लिया। और कोई उपाय न देखकर अपने निश्चयके पश्चात् बिस्तर पर लेट गये; दिनके लगभग १० बजे थे। अचानक किसीने दरवाजा खटखटाया। वे उठकर बाहर आये तो देखा सड़क पर मोटरके निकट भाईजी खड़े है। इन्होंने भीतर आनेकी प्रार्थना की और भाईजी भीतर एक कुर्सीपर बैठ गये। भाईजीने मुसकुराते हुए कहा—"भाई साहब, आप तो बीमार-से लगते हैं" अब ये क्या उत्तर देते कि बीमारी तो कुछ और है, तीन दिनोंसे पानीके अलावा कुछ खानेको नहीं मिला उसीके फलस्वरूप यह हालत हो गयी है। अतः केवल इतना ही बोले—'जी'। भाईजीने तत्काल पूछा—क्या तकलीफ है आपको? कौन-सी बीमारी है? श्रीअन्सारीने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुप रहे। उन्हें चुप देखकर भाईजी आश्वासन देते हुए बोले—"भाईसाहब! यह संसार दुःखालयं ही है। यहाँ सभीको दुःख सहने पड़ते हैं और सच्चे लोगोंपर तो और भी कष्ट आते हैं, इसलिये कि भगवान् उनकी परीक्षा लेते हैं। भाईजीकी बातोंका उनपर कोई विशेष असर नहीं हुआ, क्योंकि आने वाली रातमें वे आत्म-हत्याका निर्णय कर चुके थे और उसके पश्चात् वे सभी दुःखोंसे छूटनेकी

कल्पनामें लीन थे। उन्होंने कोई उत्तर न देकर केवल सिर हिला दिये, मानो भाईजीको बातोंका समर्थन कर रहे हों। बातें करते हुए भाईजीने एक लिफाफा उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा—“आपको इसकी जरूरत है, इसे रख लीजिये। अस्वीकार करनेसे मुझे दुःख होगा। शीघ्र ही मैं आपके व्यवसायके लिये और रुपयोंकी व्यवस्था करनेकी चेष्टा करूँगा।” वे बोले——“भाईजी आपके इन एहसानोंका बदला मैं कैसे चुका सकूँगा ?” भाईजीने उत्तर दिया—“कैसा एहसान, कैसा बदला ? मैं यही चाहता हूँ कि आपको आराम हो जाय। एक प्रार्थना और है आपने आनेवाली रातमें अपने जीवनके साथ जो करनेका निश्चय किया है, वह ठीक नहीं है। जीवन भगवान्‌का दिया हुआ है और उसे समाप्त करनेका अधिकार उन्हींको है। आप अपने निश्चयको छोड़ दीजिये।” उन्हें लगा मानो बिजली गिर पड़ी। उन्होंने अपने निश्चयके सम्बन्धमें किसीको भी नहीं कहा था फिर भाईजीको कैसे पता लगा। अवश्य ही इनमें कोई दिव्य शक्ति है। वे उठ खड़े हुए और बोले——“भाईजी ! आप इन्सान नहीं, फरिश्ता हैं। आपको मेरे इरादेका कैसे पता चला ?” भाईजीने उत्तर दिया——“आपके मनमें जो बात आई, उसकी स्फुरणा मेरे मनमें हो गयी। मुझे आज्ञा दीजिये, फिर मिलेंगे। भाईजी हँसने लगे।

भाईजीके जानेके बाद उन्होंने लिफाफा खोलकर देखा तो सौ-सौके बीस नोट। कुछ देर पहले जिसके पास दो रुपये नहीं थे उसके पास दो हजार रुपये आनेसे

कितनी प्रसन्नता हुई होगी इसकी हम लोग कल्पना कर सकते हैं। उस समय वे दो हजार उनके लिये दो करोड़से भी अधिक थे। लगभग बीस दिनों बाद भाईजीने आठ हजार रुपये और उन्हें दिये और कहा कि इन्हें लौटानेकी जरूरत नहीं है। हैंडलूमसे कपड़े बनवाना उनका पैतृक व्यवसाय था और वे उसमें लगकर आनन्द पूर्वक अपने परिवारका भरण-पोषण करते हुए जीवन व्यतीत करने लगे।

(८) श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र'की प्राण-रक्षा

'कल्याण' के प्रसिद्ध लेखक श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र'की भाईजीपर अपार श्रद्धा थी। भाईजीने अपनी भविष्य-ज्ञान शक्तिसे एक बार किस प्रकार उनकी जीवन-रक्षाकी व्यवस्था की इसका विवरण उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये—

सन् १९५५ की बात है। मैं कैलाश-मानसरोवरकी यात्रा करके लौटा था। थकावटके स्थानपर मनमें उत्साह था। चाहता था कि लगे हाथ मुक्तिनाथ-दामोदर कुण्डकी भी यात्रा हो जाय तो उत्तराखण्डके प्रायः सब तीर्थोंकी मेरी यात्रा पूरी हो जाय। मैंने भाईजीसे मुक्तिनाथ जानेकी अनुमति माँगी और वह मिल गयी।

सितम्बरके दूसरे सप्ताहसे अक्टूबर तक यात्रा होनी चाहिये थी। यही सबसे उपयुक्त मौसम था। सब तैयारी हो चुकी थी। सोचा था कि गोरखपुरसे ऐसी बस पकड़ेंगे कि उसी दिन हवाई जहाज मिल जाय। भैरहवामें रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन पैदल यात्रा प्रारम्भ कर दें।

सामान बाँध लिया गया। बस-अड्डेके लिये रिक्शा बुला लिया गया। तब मैं भाईजीको प्रणाम करने उनके कमरेमें गया।

भाईजी गीता वाटिकाके सम्पादन-कार्यालयवाले अपने कमरेमें चटाईपर बैठे थे। कागज देख रहे थे। मैंने जाकर प्रणाम किया।

'आप जा रहे हैं'? अचानक भाईजीने मुख लटका लिया। उनका स्वर भारी और उदास हो गया। वे बोले, "जाइये, 'कल्याण' के विशेषाङ्क (सत्कथाङ्क) के लिये अभी चित्र निश्चित नहीं हुए, चित्रकारोंको निर्देश नहीं दिये गये। मैं खटूँगा, करूँगा ही किसी प्रकार।"

सर्वथा अकल्पित स्थिति थी। मैंने बहुत पहले इस यात्राके सम्बन्धमें उनसे पूछ लिया था। उन्होंने प्रसन्न होकर अनुमति दे दी थी। आवश्यक प्रमाण-पत्र पानेमें सहायता की थी। चित्रोंका चुनाव, उनके सम्बन्धमें चित्रकारोंको निर्देश श्रीभाईजी ही सदा करते थे। मैंने बहुत अल्प सहायता ही इसमें कभी-कभी की थी।

सबसे विशेष स्थिति यह थी कि श्रीभाईजीको इस प्रकार बोलते सुननेका यह मेरे लिये पहला अवसर था। आगे भी कभी मैंने उनको इस स्वरमें बोलते नहीं सुना। मेरे लिये उनका यह स्वर असह्य था। अतः मैंने कह दिया, "आप ऐसे क्यों बोलते हैं? मना करना है तो सीधे मना कर दीजिये।"

इतना सुनते ही उल्लास-भरे स्वरमें पूरे जोरसे भाईजीने उस समयके सम्पादन-विभागके व्यस्थापक दुलीचन्दजी

दुजारीको पुकार कर कहा, "भाया, रिक्शा लौटा दे। सुदर्शनजी नहीं जा रहे हैं।"

अब मेरे कहनेको कुछ रह ही नहीं गया था। मैं चुपचाप उठ आया। रिक्शा लौट गया। बिस्तर खोल दिया गया। मनमें कुछ दुःख हुआ ही।

दूसरे दिन मैं अपने नित्य-कर्मसे निवृत हुआ ही था कि भाईजी मेरे कमरेके द्वारपर आ खड़े हुए। बड़े गम्भीर स्वरमें बोले, 'सुदर्शनजी ! बड़ी दुर्घटना हो गयी।'

'क्या हुआ ?' मैंने पूछा।

अभी जिलाधीशका फोन आया था। उन्होंने पूछा था कि 'आपके यहाँसे जो मुक्तिनाथ जानेवाले थे, वे कल गये या नहीं।' मैंने कह दिया कि 'नहीं गये।' उन्होंने बतलाया कि 'कल जानेवाला हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उसके सब यात्री मर गये।'

पीछे समाचार पत्रोंमें छपा कि आँधी-तूफान और भयानक ओलावृष्टिसे हवाई जहाज तो नष्ट हुआ ही मोटर मार्गकी सड़क भी कई मील टूट गयी मार्गके पन्द्रह-बीस दिन पहले खुलनेकी सम्भावना नहीं थी।

(६) "नहीं चाहती जाने कोई मेरी इस स्थितिकी कुछ बात"

शरीरको कँप-कँपा देनेवाली सर्दी चली गयी, शरीरको झुलसा देनेवाले ग्रीष्मका अभी पदार्पण नहीं हुआ है। प्रातःकालका समय है, मन्द समीर बह रही है। ऐसे ही सुहावने समयमें एक प्रातः स्मरणीया देवी अपने आराध्यके

चित्रपटके सामने भावमग्न बैठो है। उसे न सर्दीका पता है, न गर्मीका। भावकी प्रबलतामें अश्रु रुक नहीं सके। आज भाव और प्रगाढ़ होनेसे अश्रु टपकनेके स्थानपर कबसे अश्रुधाराने उसके आञ्चलको भिगो दिया यह भी वह नहीं जान पायी। प्रातःकालसे बैठे-बैठे कितना समय बीत गया और भगवान् भुवन-भास्कर आकाशके मध्य आने लगे, इसका भी उसे पता नहीं लगा। उसकी स्थितिका शब्दोंमें चित्रण किया जाय तो—

"पता नहीं कुछ रात दिवसका,
पता नहीं कब सन्ध्या भोर।"

यह एक दिनकी बात नहीं है, न जाने कितने वर्षोंसे हृदयके गुप्त कोनेमें एक ही साध लिये बैठी है—एक बार मेरे आराध्यके दर्शन हो जाँय। आराध्य यदि सर्वव्यापी भगवद्‌विग्रहके रूपमें हों तो यह स्थिति बहुतसे भाग्यवान् साधकोंकी हो सकती है। पर जिसके आराध्य एक पाञ्च-भौतिक ढाँचेके अन्दर प्रकट होकर लीला कर रहे हों और जिसके दर्शन सुलभ होनेपर भी अभीतक न हुए हों उसके हृदयकी स्थिति लिखी नहीं जा सकती। पर अन्तर्यामीसे तो कुछ भी छिपा नहीं है और अब प्रतिक्षा कराना उचित न समझकर उसकी व्यवस्था कर दी।

सन् १९५६ में भाईजीभारतके सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्रा करते हुए दक्षिण-भारतमें बेजवाड़ाके आस-पास पहुँचे। एक परिचित प्रतिष्ठित वकीलके घर मिलने गये। बातें करते हुए उन्होंने बताया कि उनके पड़ोसमें ही एक प्रौढ़ा लड़की दिन-रात एकान्तमें भजन करती है। दैवी सम्पदासे युक्त

वे प्राय: पूजा-पाठमें ही लगी रहती है, आप पधारे हैं तो एक बार उससे अवश्य मिलें। उनके आग्रहवश भाईजी उससे मिलने गये। साथके लोगोंको बाहर बैठाकर वे अकेले ही उसके साधन-कक्षमें गये। देखा एक अत्यन्त सात्विक वातावरणमें एक देवी भाव-विह्वल बैठी है सामने ठाकुरजी-का विग्रह है और पासमें ही भाईजीका चित्र। देवीने आँखें नहीं खोली सोचा प्रतिदिनकी भाँति प्रसाद ग्रहण करनेका कहनेके लिये सूचना देने कोई आया होगा। देखकर भाईजी भाव-विभोर हो गये। कुछ समय बाद बोले—"देवी! ये चित्र किसका है?" सिर झुकाये ही देवीने उत्तर दिया कि बहुत वर्षों पूर्व मैंने इनके बारेमें कुछ पढ़ा था, तबसे मेरा इनके प्रति समर्पण भाव हो गया। बहुत प्रयत्न करनेपर बम्बईसे मुझे यह फोटो मिला। तबसे मैं इन्हें अपने इष्टदेवके रूपमें पूज रही हूँ। भाईजीने कहा—"क्या तुम इन्हें जानती हो, कभी इनसे मिली हो? ये कहाँ रहते हैं?"

देवीने बताया—"मैं इनका नाम जानती हूँ पर कभी इनसे मिली नहीं हूँ। जब मैंने अपना समर्पण इन्हें कर दिया तो पता-ठिकाना जाननेकी आवश्यकता नहीं है।"

भाईजीने बड़े संकोचसे कहा—"एक बार आप ऊपर देखिये।"

बड़े लज्जा भरे नेत्रोंसे देवीने ऊपरकी ओर दृष्टि डाली और अपने आराध्यको सामने देखकर रोमाञ्चित हो गयी और भाईजीके चरणोंमें मस्तक रख दिया। कुछ देरके बाद वह उठी और भाईजीके मस्तकपर चन्दनका तिलक किया,

चरणोंमें चन्दन चढ़ाकर पुष्प अर्पण किये और धीरेसे बोली—"आप जा सकते हैं।"

भाईजी बोले—"देवी ! आपका परिचय मैं जान लेता।"

उत्तर मिला—"मेरा परिचय जाननेकी आपको आवश्यकता नहीं है। जो परिचय मिला है उसे भी आप कृपा करके अपने व्यक्तिको मत दीजियेगा, नहीं तो मेरे यहाँ भीड़ लग जायेगी।"

भाईजीने कहा—"आप मेरा पता नोट कर लें।"

देवीने कहा—"मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। मेरे मनमें तो एक ही साध थी कि एक बार मुझे दर्शन हो जायँ। वह साध अन्तर्यामी प्रभुने बड़े विचित्र ढङ्गसे पूरी कर दी। अब और कुछ नहीं चाहिये, मनसे तो मैं निकट ही रहती हूँ। बस, मेरा यह समर्पण अन्ततक निभ जाय।"

भाईजी देखकर भाव-विह्वल हो गये और मनसे आशीर्वाद देते हुए बाहर चले आये। बहुत वर्षों बाद भाईजीने यह घटना अपने एक अन्तरङ्गको बतायी। बहुत आग्रह करनेपर नाम तो बता दिया—"चिन्मयी देवी" पर स्थानका नाम पता अन्ततक नहीं बताया। पूछनेपर भी कह देते—"वह नहीं चाहती कि जगत्का कोई व्यक्ति उसके निष्काम मूक समर्पणको जान पाये।"

एक दिन भाईजी बैठे थे, उसके भावोंकी कुछ स्मृति आ गयी और कलम चल पड़ी—

"हुआ समर्पण प्रभु चरणोंमें जो कुछ था सब—मैं-मेरा।
अग-जगसे उठ गया सदाको चिर-संचित सारा डेरा॥

× × × ×

नहीं चाहती जाने कोई मेरी इस स्थितिको कुछ बात ।
मेरे प्राणप्रियतम प्रभुसे भी यह सदा रहे अज्ञात ॥
सुन्दर सुमन सरस सुरभित मृदुसे मैं नित अर्चन करती ।
अति गोपन, वे जान न जायें कभी, इसी डरसे डरती ॥
मेरी यह सुचि अर्चा चलती रहे सुरक्षित काल अनन्त ।
रहूँ कहीं भी, कैसे भी, पर इसका कभी न आये अन्त ॥
इस मेरी पूजासे पाती रहूँ नित्य मैं ही आनन्द ।
बढ़े निरन्तर रुचि अर्चामें बढ़े नित्य ही परमानन्द ॥
बढ़ती अर्चा ही अर्चाका फल हो एकमात्र पावन ।
नित्य निरखती रहूँ रूप मैं, उनका अतिशय मनभावन ॥
वे न देख पायें पर मुझको, मेरी पूजाको न कभी ।
देख पायँगे वे यदि, होगा भाव-विपर्यय पूर्ण तभी ॥
रह नहीं पायेगा फिर मेरा यह एकाङ्गी निर्मल भाव ।
फिर तो नये-नये उपजेंगे 'प्रिय' से सुख पानेके चाव ॥

ऐसे भावोंका प्रत्यक्ष आदर्श रख दिया चिन्मयी देवीने । अनन्त वन्दन है उस चिन्मयी देवीको एवं और भी ऐसे गुप्त प्रेमियोंको ।

(१०) भारतके गृह-मन्त्री श्रीगोविन्दबल्लभ पंतको दिव्य अनुभूति

पं० गोविन्दबल्लभ पंत जब भारत सरकारके गृह-मन्त्री थे, उन्होंने भारतकी सर्वोच्च उपाधि 'भारत रत्न' (जो केवल कतिपय व्यक्तियोंको ही दो गयी थी)से भाईजीको विभूषित करना चाहा । वे गोरखपुर पधारे और भाईजी जब

उनसे मिलने गये तो वे बड़ी आत्मीयतापूर्ण बातें करते हुए बोले कि इस कागजपर स्वीकृति कर दीजिये मैं इसे भारत सरकारके पास भेज दे रहा हूँ। कागजमें 'भारत-रत्न' की उपाधि प्रदान करनेका प्रस्ताव था। भाईजी तो देखते ही सकुचा गये और उनके हृदयकी व्यथाको पंतजी समझ गये और बोले—"हम आपकी भावनाओंका आदर करेंगे।" दिल्ली जानेपर पंतजीको भाईजीके सम्बन्धमें अलौकिक अनुभूति हुई। उन्होंने भाईजीको विस्तारसे पत्र लिखा जिसे भाईजीने नष्ट कर दिया। भाईजीका उत्तर नीचे दिया जा रहा है--

माननीय श्रीपन्तजी,

सादर प्रणाम।

आपका कृपापत्र मिला। आप सकुशल दिल्ली पहुँच गये, यह आनन्दकी बात है। आपके इस नये ढङ्गके पत्रको पढ़कर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। पता नहीं, भगवान्‌के मङ्गलमय विधानसे क्या होनेवाला है?

आपने जो स्वप्न तथा प्रत्यक्ष चमत्कार देखनेकी बात लिखी है, वह मेरी समझमें तो आयी नहीं। हाँ, आपके आज्ञात मनके किन्हीं संस्कारके ये चित्र हो सकते हैं। मेरे बाबत आपने जो-कुछ देखा-लिखा, उसके सम्बन्धमें तो इतना ही कह सकता हूँ कि "मैं न योगी हूँ, न सिद्ध महापुरुष हूँ, न पहुँचा हुआ महात्मा हूँ, न किसीको दिव्य दर्शन देकर कृतार्थ करनेकी या वरदान देनेकी ह मुझमें शक्ति है। मैं साधारण मनुष्य हूँ, मुझमें कमजोरियाँ भरी पड़ी हैं। भगवान्‌की अहैतुकी कृपा मुझपर अनन्त है, इसमें

मेरा विश्वास है। मुझे इस पत्रसे पहले आपके स्वप्न तथा जाग्रतमें चमत्कार देखनेका कुछ भी पता नहीं था। अतएव मैं क्या कहूँ ? अवश्य ही आपके निकट भविष्यमें देहावसानकी जो सूचना इसमें मिलती है, उससे मुझे चिन्ता हो रही है। आप उचित समझें तो स्वयं मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप कीजिये और किन्हीं विश्वासी शिवभक्तके द्वारा सवा लाख जप करा दीजिये। मैं यह जानता हूँ कि आप आस्तिक हैं। भगवान्‌में और शास्त्रमें आपका विश्वास है। आपने लिखा 'जवाहर लाल भी, ऊपरसे कुछ भी कहे, आस्तिक हैं', सो ठीक है, उनके बारेमें मैं भी यहीं मानता हूँ।

आपने मेरे लिये लिखा कि, "आप इतने महान् हैं, इतने ऊँचे महामानव हैं कि भारतवर्षको क्या, सारी मानवी दुनियाको इसके लिये गर्व होना चाहिये। मैं आपके स्वरूपको महत्त्वको न समझकर ही आपको 'भारतरत्न'की उपाधि देकर सम्मानित करना चाहता था। आपने इसे स्वीकार नहीं किया, यह बहुत अच्छा किया। आप इस उपाधिसे बहुत-बहुत ऊँचे स्तरपर हैं, मैं तो आपको हृदयसे नमस्कार करता हूँ।" आपके इन शब्दोंको पढ़कर मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। पता नहीं आपने किस प्रेरणासे यह सब लिखा है। मेरे तो आप सदा ही पूज्य हैं। मैं जैसा पहले था, वैसा ही अब हूँ, जरा भी नहीं बदला हूँ। आप सदा मुझपर स्नेह करते आये हैं और मुझे अपना मानते रहे हैं। मैं चाहता हूँ, वैसा ही स्नेह करते रहें और अपना मानते रहें। मैं आपकी श्रद्धा नहीं चाहता। कृपा और प्रीति

चाहता हूँ, स्नेह चाहता हूँ। मेरे लायक कोई सेवा हो तो लिखें। आपके आदेशानुसार पत्र जला दिया है। आप भी मेरे इस पत्रको गुप्त ही रखियेगा।

शेष भगवत्कृपा।

आपका,

हनुमानप्रसाद पोद्दार

(११) उद्दाम-संकीर्तनमें सम्मिलित होनेका अद्भुत-चमत्कार

यह घटना सं० २०१८ की है। लगभग ३०-३५ व्यक्तियोंका एक समूह कलकत्तेसे श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें सम्मिलित होने आ रहा था। उनके साथ एक लड़का था जिसे रीढ़की हड्डीमें बोन टी० बी० होनेके कारण एक लोहे और चमड़ेका पट्टा हर समय पीठपर बाँधना पड़ता था। उसके हटानेपर बिना किसी सहारेके वह न बैठ सकता, न खड़ा हो सकता था। रास्तेमें काशीमें सब लोगोंने गङ्गाजीमें स्नान किया तो उसकी अत्यधिक इच्छा होनेसे दो व्यक्तियोंने सावधानी पूर्वक उसे पकड़कर गङ्गाजीमें स्नान करवाया। जिस दिन ये लोग गोरखपुर पहुँचे, रात्रिके प्रवचनमें भाईजीने कहा कि मुझे किसी विश्वस्त व्यक्तिने बताया है कि राधाष्टमीका महोत्सव देखनेके लिये श्रीकृष्ण ७-८ दिनोंसे यहाँ घूम रहे हैं एवं ३-४ दिन और घूमेंगे। किसीकी तीव्र उत्कण्ठा हो तो उसे दर्शन भी दे सकते हैं। इस लड़केकी उत्कण्ठा कलकत्तेसे ही थी और इसीलिये महोत्सवकी विशेषता सुनकर पहली बार गोरखपुर आया था।

श्रीराधाष्टमी महोत्सवके दूसरे दिन सदा कि भाँति उद्दाम नाम संकीर्तन हो रहा था। यह लड़का भी पट्टा बाँधे हुए ही बड़ी मस्तीसे नाचते हुए "राधे-राधे" का संकीर्तन कर रहा था। बीचमें ही वह बेहोश होकर गिर गया। लोगोंने उसके साथियोंसे कहा तो वे लोग उसे उठाकर पंडालके पीछे ले गये और एक स्थानपर लिटा दिया। कुछ लोग डाक्टरको बुलाने गये, कुछ लोग भाईजी-को। भाईजीने कहा—कोई बात नहीं है। उसे बाह्य-ज्ञान सर्वथा नहीं था पर जीभसे "राधे-राधे" का उच्चारण हो रहा था। थोड़ी देर बाद भाईजी आये और उसके कानमें बोले—देख, मैं आ गया हूँ। हम लोगोंने उसे बैठा दिया। उसने भाईजीके चरण पकड़ लिये। भाईजीने कहा—उठो, तुम्हें विशेष वस्तु प्राप्त हो गयी है। फिर हम लोगोंको कहा—इसे पंडालसे बाहर नहीं लाना चाहिये था। डाक्टर-की कोई आवश्यकता नहीं है। उसका हाथ पकड़कर भाईजी पुनः पंडालमें ले आये।। उसके निरन्तर अश्रुपात हो रहा था और भाईजीके चरण पकड़कर वह बैठ गया। फिर भाईजीके गोदमें अपना सिर रख दिया। भाईजीने उसके कानमें एक-दो बार कुछ बात कही और गद्‌गद् होकर अपने गलेकी तुलसीकी माला उसे पहना दी। फिर प्रवचनमें बोले—यह लड़का अभी बेहोश था। इसे मैंने अभी पूछा नहीं है पर मेरा विश्वास है इसे विशेष अनुभूति हुई है। कोई चाहे तो इसे पूछ सकता है। कौन अधिकारी है इसे कौन जानता है ? इतना कहते-कहते भाईजी गद्‌गद् हो गये और चुप हो गये। इसके पश्चात् लगभग ४० घण्टे

तक वह लड़का अर्ध-चेतनामें रहा।

उसे विशेष-अनुभूतिकी बात तो वह जानेपर यह तो हम सबने अपनी आँखोंसे देखा कि जो बिना पट्टेके बैठ भी नहीं सकता था, वह इस घटनाके बाद बिना पट्टेके अच्छी तरह घूमने लगा। उसके साथ आनेवालोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं था। अन्तमें पट्टा गोरखपुरमें ही छोड़कर वह लौट गया। पता नहीं उसकी बोन टी० बी० हठात् कहाँ चली गयी ?

श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंका वर्णन

वैसे तो भाईजी श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंका वर्णन कई बार अपने प्रवचनोंमें करते थे पर कुछ भावुक-जनोंका आग्रह था कि इन लीलाओंका विस्तृत वर्णन हो। यह आग्रह कई वर्षोंतक चलता रहा पर ऐसे सुअवसरकी प्रतीक्षा ही होती रही। अन्तत्वोगत्वा मार्गशीर्ष सं० २०१६ से लगभग एक महीनेतक नित्य प्रातः दो घण्टे भाईजीने श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंका विस्तृत वर्णन करना स्वीकार किया। दूर-दूर स्थानोंसे भावुक-जन जो इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, गोरखपुरमें एकत्रित हो गये। विभिन्न टीकाओंके आधारपर श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके पहले अध्यायसे कथा प्रारम्भ हुई। यद्यपि उन दिनों भाईजी बहुत देर तक 'भाव-समाधि'में रहने लगे थे, अतः श्रोताओंकी भीड़ देखकर उपराम हो जाते थे पर जब कथा प्रारम्भकर देते तब उसीमें तल्लीन होकर सरस वर्णन करने लगते। जिन लोगोंने उस रस-कथाका पान किया है वे ही जानते हैं

कि उस एक महीनेमें कैसी रस-वर्षा हुई। कथा समाप्त होते ही भाईजी पुनः उपराम हो जाते।

'गोविन्द-भवन'के नये भवनका शिलान्यास

'गोविन्द-भवन' नामसे एक न्यासकी स्थापना बहुत वर्षों पूर्व हुई थी। गोरखपुरका गीताप्रेस और स्वर्गाश्रमका गीताभवन इसी न्यास द्वारा संचालित होते हैं। कार्यक्षेत्र विस्तृत हो जानेसे कलकत्तेमें 'गोविन्द-भवन'का पुराना स्थान पर्याप्त नहीं था। कई वर्षोंसे नये भवनके लिये विचार-विमर्श चल रहा था। व्यवस्थापकोंके निर्णयानुसार महात्मा गाँधी रोडपर नये भवनके निर्माण हेतु जमीन खरीदी गयी। शिलान्यासका कार्य भाईजीके हाथों करानेका निश्चय हुआ।

माघ कृष्ण १३ सं० २०१६ को भाईजी गोरखपुरसे रवाना होकर कलकत्ता गये। हवड़ा स्टेशनपर सैकड़ों व्यक्तियोंने भाईजीका हार्दिक स्वागत किया। कलकत्ता शहरसे लगभग बारह मील दूर पानीहाटीमें भाईजीके निवासकी व्यवस्था हुई। लगभग पन्द्रह दिन भाईजी वहाँ रहे। बहुत वर्षों पश्चात् कलकत्ता-निवासियोंको भाईजीके इतने दिनोंके सत्सङ्ग-लाभका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसी प्रवासके समय 'गोविन्द-भवन'के नये विशाल भवनके शिलान्यासका कार्य वैदिक विधिसे भाईजीके हाथों सुसम्पन्न हुआ।

शिमलापालकी पुनः यात्रा

बहुत-से प्रेमीजन भाईजीको शिमलापाल, जहाँ भाईजीने

अपनी साधना प्रारम्भ की थी, चलनेके प्रार्थना करते थे। कलकत्तासे यह स्थान निकट होनेसे आग्रह बढ़ने लगा। इसी समय एक संयोग और बन गया। बाँकुड़ामें श्रीसेठजी-का आँखका ऑपरेशन होनेवाला था अतः भाईजी कलकत्ता-से कुछ परिकरों सहित बाँकुड़ा गये। वहाँसे शिमलापाल लगभग २४ मील दूर था। अतः परिकरोंके अनुरोधसे सभीके साथ शिमलापालकी मोटरसे यात्रा की। सबसे पहले उस झोपड़ीके सबने दर्शन किये, जहाँ भाईजी लगभग ४४ वर्ष पहले रहे थे। उसके भीतर छोटेसे कमरेमें भाईजीका उन दिनोंका बङ्गलामें गेरूसे लिखा "नृत्य गोपाल" वर्तमान था। भाईजीने अतीत कालकी कई स्मृतियाँ सुनायी। फिर लोग पासमें बहनेवाली छोटी-सी नदीके दर्शन करने गये, जहाँ भाईजी उन दिनों स्नान करते थे। तत्पश्चात् वहाँके थानेपर गये जहाँ भाईजीके हाथसे लिखे कागज देखे। ग्रामवासियोंको वस्त्र, द्रव्य आदि वितरित किये गये।

पुरी एवं नवद्वीप यात्रा

कुछ प्रेमीजनोंकी भाईजीके साथ पुरी एवं नवद्वीपकी यात्रा करनेकी हार्दिक अभिलाषा थी। कई बार ऐसा कार्यक्रम बना किन्तु किसी-न-किसी कारणवश स्थगित होता रहा। कलकत्तेके कुछ भावुक-जन भी इसके लिये बराबर आग्रह करते थे। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि फाल्गुन सं० २०१८ में जब श्रीमोहनलालजी गोयन्दकाकी पुत्रीके विवाहमें कलकत्ता जानेका कार्यक्रम बने, तब वहींसे नवद्वीप एवं पुरीकी यात्राकी जाय। फाल्गुन कृष्ण १४

सं० २०१८ को भाईजीने अपने परिकरोंके साथ गोरखपुरसे रात्रिमें बनारसके लिये प्रस्थान किया। अगले दिन वहाँसे वायुयानसे कलकत्ता पहुँचे। कलकत्तेमें शहरसे दूर पानीहाटीमें भाईजीके निवासकी व्यवस्था हुई। सत्सङ्गके कार्यक्रम तो भाईजी जहाँ जाते वहीं अवश्य आयोजित होते। विवाहके कार्य सम्पन्न होनेके पश्चात् फाल्गुन शुक्ल ८ सं० २०१८ को रात्रिमें कलकत्तेसे पुरीके लिये प्रस्थान किया साथमें लगभग २०० व्यक्ति हो गये थे। भाईजी सपरिवार वहाँ बाँगड़ोंके स्थानमें ठहरे एवं और सभी लोग दूसरी धर्मशालाओंमें। दिनमें भाईजीके साथ सभीने श्री-जगन्नाथजीके मन्दिरके दर्शन किये एवं मन्दिरके प्रांगणमें ही सुमधुर संकीर्तन हुआ। संकीर्तनके समय भाईजीकी वहीं बाह्य-चेतना लुप्त हो गयी। संकीर्तन, पद-गायनके पश्चात् बहुत चेष्टा करनेसे भाईजीको बाह्य-ज्ञान हुआ। सायङ्काल सब लोगोंने भाईजीके साथ समुद्रमें स्नान किया। दूसरे दिन सब लोगोंने साक्षी गोपाल एवं भुवनेश्वरकी यात्रा की। वहाँसे वापिस कलकत्ता लौटकर कुछ दिन पश्चात् नवद्वीपकी यात्रा सम्पन्न हुई।

श्रीदूलीचन्दजी दुजारीकी प्राण-रक्षा

श्रीदूलीचन्दजी अपनी शिक्षा समाप्त करके सं० १९९० में भाईजीके पास काम करने आ गये थे। श्रीगंम्भीरचन्दजी दुजारीके ये रिश्तेमें भतीजे थे एवं उनके कहनेसे ही भाईजीकी सेवामें आये थे। तबसे ये निरन्तर भाईजीकी सेवामें ही रहे। अपनी सेवाकी निष्ठा एवं योग्यताके कारण कुछ ही वर्षोंमें ये भाईजीके अपरिहार्य परिकर हो गये।

दो-तीन व्यक्तियोंका कार्य ये अकेले सम्भालते थे। ये भाईजीके परिवारके सदस्यकी तरह हो गये थे।

४ अप्रैल सन् १९६२ को रात्रिमें चोर इनके घरमें घुस गये और इनको बुरी तरहसे मारा। चोटसे इनका सिर फट गया एवं सारा शरीर रक्तसे लथपथ हो गया। दूलीचन्दजी सर्वथा बेहोश एवं मृतप्राय हो गये। उनको तुरन्त अस्पताल ले जाया गया एवं सर्वोत्तम चिकित्साकी व्यवस्था की गयी। भाईजी स्वयं अस्पताल जाते एवं घंटों उनके पास बैठे रहते। सेवाकी पूर्ण व्यवस्था की गयी थी। पर्याप्त चिकित्साके पश्चात् भी उन्हें पूरा होश नहीं आया एवं १६ अप्रैल सन् १९६२ को इनकी हालत चिन्ताजनक हो गयी। उपचार करनेवाले डाक्टर भी निराश-से हो गये। प्रतीत होने लगा कि मृत्युके साथ अन्तिम संघर्ष हो रहा है एवं बचनेकी आशा क्षीण हो गयी। भाईजीको इसकी सूचना दी गयी। सबकी दृष्टि भाईजीकी ओर थी कि अब इनको बचानेका उपाय और कोई नहीं कर सकता। परिवारवाले भाईजीसे आग्रह पूर्वक प्रार्थना करने लगे। भाईजीने सभीको कमरेसे बाहर जानेको कहा और कमरा अन्दरसे बन्द कर लिया। कमरेके अन्दर भाईजीने क्या किया, इसे तो वही जानें पर इसके पश्चात् ही लोगोंने अस्पतालमें देखा कि दूलीचन्दजीके हालतमें आशातीत सुधार हो गया। दिन-प्रतिदिन उनकी हालत सुधरने लगी। थोड़े ही दिनों बाद वे स्वस्थ होकर घर लौट आये। यद्यपि चोटके कारण शरीर पूर्ववत् नहीं हो सका फिर भी वे यथा-शक्ति भाईजीकी सेवा करते रहे।

इसी तरह श्रीदिलीपकुमारजी भरतियाकी भी भाईजीने प्राण-रक्षा की, जब उनके दूसरी बार ऑपरेशनके समय डाक्टर सर्वथा निराश हो गये थे।

भागवत-भवनका शिलान्यास

वाराणसीके मानस मन्दिर जैसा ही भागवत-भवन, जिसमें सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत महापुराणके अठारह हजार श्लोकोंको सङ्गमरमरके पत्थरपर खुदवाकर दिवालोंपर लगवाया जाय, के निर्माणपर कई दिनोंसे विचार हो रहा था। कई स्थानोंका सुझाव आया पर अन्तमें श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरापर ही भागवत-भवन बनवानेकी विशाल योजना तय की गयी। शिलान्यास माघ शुक्ल १० सं० २०२१ को होना निश्चित हुआ। इसी निमित्तसे भाईजी गोरखपुरसे प्रस्थान करके माघ शुक्ल ७ सं० २०२१ को मथुरा पहुँचे। लगभग डेढ़-दो सौ की संख्यामें परिकर मण्डल गोरखपुर, लखनऊ, कानपुर आदि स्थानोंसे साथ हो गया। मथुरा स्टेशनपर संत-समुदाय एवं सम्भ्रान्त नागरिकोंने भाईजीका भव्य स्वागत किया। पुष्प-मालाओंसे भाईजी लद-से गये।

उत्सवकी जोरोंसे तैयारी की गयी। विभिन्न प्रान्तोंसे सम्भ्रान्त अतिथि पधारे। विद्युत्-प्रकाशसे सारे स्थान जगमगा रहे थे। श्रीकृष्ण चबूतरेके समक्ष विशाल पण्डालमें लगभग २५० विद्वान् श्रीमद्भागवतका सप्ताह पारायणकर रहे थे। क्या अनोखा दृश्य होगा जब २५० कंठ एक स्वरसे पाठ कर रहे होंगे। मथुराके वृद्धजनोंने कहा 'न भूतो न

भविष्यति'। इसके अतिरिक्त व्रज-विख्यात पूज्यपाद श्री-नित्यानन्दजी भट्ट द्वारा श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथाका आयोजन हुआ।

माघ शुक्ल १० सं० २०२१ को भाईजी श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर पधारे। श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा देवी-देवताओंका पूजन करवाया गया। इसके पश्चात् शिलान्यासके लिये लगभग १२-१३ फीट गहरा गड्ढा खोदा गया था। सीढ़ियोंसे नीचे उतरनेकी व्यस्था थी। भाईजी धर्मपत्नी सहित नीचे उतरे और आसनपर बैठ गये। विधिपूर्वक श्रीगणेशजी, श्रीवास्तुदेवता आदिके पूजनका कार्य लगभग एक घण्टे तक हुआ। पूजनके बाद भाईजीने भागवत-भवनके नींवकी ईंटें रक्खीं एवं उनपर चाँदीकी करनीसे गारा लगाया। भगवन्नामकी जयकार गूँजने लगी। दूसरे दिन उत्तर भारत-के प्रमुख दैनिक समाचार-पत्रोंमें इसका विवरण फोटो सहित छपा। इस अवसरपर भाईजीने बड़ा जोशीला भाषण दिया। उसका कुछ अंश यह है—

"लगभग ३५० वर्ष पूर्व अत्याचारी औरङ्गजेबके द्वारा मन्दिरके ध्वंस किये जानेके बाद यही पहला अवसर है, जब इस पुण्य-भूमिमें व्रजके विद्वानोंद्वारा श्रीमद्भागवतका मङ्गल-पारायण हो रहा है।............................आज राष्ट्रीयताके नामपर जातिवाद, भाषावाद और प्रान्तवाद चल रहे हैं। अधिकारका भूखा नेतृत्व बुरी तरह झगड़ रहा है एवं निरीह विद्यार्थी एवं जनताको भड़काकर उनके द्वारा देशको लजानेवाले उपद्रव यत्र-तत्र करवाये जा रहे हैं। हम एक ही ईश्वरको माननेवाले, एक ही

भारतमें रहनेवाले एक-दूसरेपर घृणित प्रहार कर रहे हैं। यह हमारे लिये बड़ी ही अशोभनीय और दुर्भाग्यकी बात है।............आज हमारा देश स्वतन्त्र है, गणराज्य है। हिन्दू-मुसलमानका कोई प्रश्न नहीं। इस अवस्थामें बर्बरता पूर्ण आक्रमणोंद्वारा जिन मन्दिरोंको, धार्मिक स्थानोंको भ्रष्ट करके छीन लिया गया था; हमारे आजके मुसलमान भाईयोंका यह कर्तव्य है कि वे हिन्दुओंके उन पवित्र स्थानोंको बड़े प्रेम भावसे लौटा दें।............इसमें उनका कल्याण है, हिन्दुओंका कल्याण है और देशका भी कल्याण है। वे मानेंगे या नहीं, भगवान् जानें पर यदि स्वेच्छासे न मानेंगे तो भगवान् और काल उन्हें मनवा लेगा, आज चाहे न मानें।............धनिकोंको भी खुले हृदयसे धन देना चाहिये। जीवन किसीका स्थायी रहेगा नहीं, धन किसीका बना रहेगा नहीं और कौन जानता है ऐसा शुभ अवसर फिर कभी आयेगा या नहीं? अतः इस पावन कार्यमें जितना सहयोग दिया जा सके देना चाहिये।"

भाईजी जितने दिन रहे, वृन्दावन और मथुराके सैकड़ों ब्राह्मणोंको दक्षिणा भेंट की। असहाय और आर्त्तजनोंकी वस्त्र-धनसे सहायता की गयी। बहुत-सी संस्थाओंको दान दिया। सन्तोंकी सेवा की गयी। बरसाना गोवर्धन आदि स्थानोंकी परिवार, परिकरों सहित यात्राकी गयी।

वृन्दावन नगरपालिकाकी ओरसे भाईजीका परम रसिक भक्त, भारतीय संस्कृतिके प्रतीक, धर्मके महान् रक्षक, आध्यात्मिक प्रेरणाके केन्द्रके रूपमें अभिनन्दन किया गया।

इस प्रकार फाल्गुन कृष्ण ११ सं० २०२१ तक व्रजवास करके भाईजी राजस्थानकी ओर चले गये।

चतुर्धाम-वेद-भवनकी स्थापना

विश्ववाङ्मयकी सर्वप्रथम अभिव्यक्तिके रूपमें वेदोंका सर्वोच्च स्थान है। उत्तर प्रदेशके तत्कालीन राज्यपाल श्रीविश्वनाथदास वैदिक साहित्यके भक्त थे। एक बार जब उन्होंने बद्रीनाथ-धामकी यात्राकी तो उनके मनमें वैदिक ज्ञानके विशेष प्रचार हेतु, वेदोंके अध्ययन-अध्यापन, शोधकार्य, वैदिक ऋचाओंका नित्य पाठ आदि करनेकी व्यवस्था करनेका विचार आया। उस यात्रामें जगन्नाथपुरीमें वेद-भवनकी स्थापनाका निश्चय हुआ। यात्रासे लौटनेपर वे गोरखपुर आये तो भाईजीसे इस सम्बन्धमें चर्चा की। भाईजीको उनके विचार अच्छे लगे। भाईजीने कहा—'केवल पुरीमें ही क्यों, भारतके चारों दिशाओंके चारों धामों—बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर और द्वारकामें—वेद-भवनकी स्थापना होनी चाहिये। श्रीदास महोदयको भी यह बात प्रिय लगी। भाईजीने गोरखपुरके गोरक्षपीठाधिपति पूज्य महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीसे इस कार्यमें साथ रहनेकी प्रार्थना की। उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। फलतः श्रीगोरखनाथ मन्दिरके पवित्र स्थानमें २७ जनवरी सन् १९६५ के दिन सम्मिलित गोष्ठीमें न्यास बनानेकी नींव पड़ी। संस्थाके महासचिवके रूपमें श्रीविश्वनाथदास सक्रिय हो गये एवं संयुक्त मन्त्रीके रूपमें भाईजी। कई व्यक्तियोंने धनका दान दिया केवल यही देखकर कि भाईजी इस कार्यमें रुचि ले रहे हैं। श्रीभाईजीके प्रयाससे

जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्योंने 'संरक्षक-पद' स्वीकार किया। आज अनेक स्थानोंपर वेद-भवनकी शाखाएँ अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें संलग्न हैं। वर्तमान मुख्य केन्द्र हैं—बद्रीनाथ, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, द्वारका, रुद्रप्रयाग, कालड़ी (केरल), श्रीरङ्गम् एवं प्रयाग।

सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका परम प्रयाण

श्रीसेठजीका शरीर लगभग एक वर्षसे अधिक समयसे रुग्ण चल रहा था। वे बाँकुड़ामें थे। मार्च सन् १९६५ में ऐसा अनुमान होने लगा था कि उनका भौतिक देह बहुत दिन नहीं चलेगा। अतः उनकी इच्छानुसार उन्हें बाँकुड़ासे स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) के पवित्र गङ्गातटपर उन्हींके द्वारा संस्थापित गीताभवनमें लाया गया। वे दि० ३१ मार्च सन् १९६५ को वहाँ पहुँचे। रास्तेमें लखनऊ स्टेशनपर दर्शनार्थ आये हुए लोगोंसे उन्होंने बहुत-सी साधन-सत्सङ्गकी बातें कही। भाईजीको सूचना मिलनेसे वे भी ६ अप्रैलको गीता-भवन पहुँच गये। श्रीसेठजीके शरीरकी स्थिति उत्तरोत्तर गिरने लगी, पर देहावसानके पाँच दिन पहले तक वे पत्र सुनते तथा उनके उत्तर लिखवाते रहे। बोलनेकी शक्ति कम हो गयी थी और उदर, पीठ तथा सिरमें भयानक पीड़ा थी, तथापि वे धीरे-धीरे बोलते और उपदेशकी बात कहते थे। प्रतिदिन—यहाँतक कि देहावसानके दिन तक उन्होंने सन्ध्या की, सूर्यार्घ्य दिया। नाम-जप तो अन्तिम क्षण तक चलता रहा। सदाचारादि नियमोंका पालन भी अक्षुण्णरूपसे अन्त समयतक उनका

चालू रहा। उन्होंने भयानक पीड़ामें भी कभी एलोपैथिक दवाई नहीं ली।

१६ अप्रैलकी रातको उन्होंने भाईजीसे ध्यान करानेको कहा। पहले तो वे समझे नहीं, परन्तु पुनः संकेत प्राप्त करनेपर उन्होंने सेठजीके प्रिय 'आनन्द' तत्त्वका विशेषणों सहित उच्चारण किया। उन्होंने उसे बार-बार सुना। बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर पुनः वैसा ही संकेत मिला, तब भाईजीने उन्हें पुनः आनन्द तत्त्वके शब्द कई बार सुनाये, फिर अद्वैत ब्रह्मके बोधक कुछ श्रुतियाँ सुनायीं। जिस समय भाईजी उन्हें सब सुना रहे थे, उस समय सेठजीके चेहरेपर आनन्दकी लहरें-सी उठ रहीं थीं। वे अत्यन्त प्रसन्न थे। सोये-सोये ही बारम्बार भाईजीको हाथोंसे खींचकर उनके गलेमें दोनों हाथ डालकर उन्हें हृदयसे लगाना चाहते थे। बार-बार सुनानेका संकेत करते थे और इससे उन्हें बार-बार सुनाया भी जाता था। सब सुननेके बाद वे आनन्द गद्गद वाणीसे धीमे स्वरमें बोले--'ठीक है-ठीक है। सब ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही है। और कुछ भी नहीं है। आनन्द-आनन्द।'

शनिवार, वैसाख कृष्ण द्वितीया सं० २०२२ (१७ अप्रैल सन् १९६५) को दिनमें ४ बजे गीता-भवनमें ही श्रीसेठजीका देहावसान हो गया। उस समय भाईजी उनके पास बैठे हुए कीर्तन सुना रहे थे।

श्रीसेठजीके न रहनेसे भाईजीकी कामकी जिम्मेवारी और भी बढ़ गयी। उनके स्थानपर न्यासका सभापति भाईजीको ही बनाया गया।

गोरक्षा आन्दोलन

भारतके स्वतन्त्र होनेके बाद भी गोहत्या कलङ्क न मिटनेसे भाईजी व्यथित थे। इसीलिये जब कोई भी गोहत्या निरोधके लिये आन्दोलन करता तो भाईजी उसमें अपना पूर्ण सहयोग देते। किन्तु सभी लोगोंका सामूहिक एक साथ प्रयास न होनेसे सरकारपर विशेष दबाव नहीं पड़ता था। आसाढ़ सं० २०२३ में जब भाईजी स्वर्गाश्रममें थे, दिल्लीके प्रमुख कार्यकर्ता भाईजीके पास आये एवं गोरक्षाके लिये सभीका एक साथ प्रयास हो इसके लिये भाईजीको चेष्टा करनेकी प्रार्थना की। सभी धर्माचार्यों, सम्प्रदायों एवं राजनीतिक दलोंको एक मंचसे कार्य करनेके लिये राजी करना एक असाधारण कार्य था। उन्हीं दिनों श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी अपनी बद्रीनाथ यात्रासे लौटकर भाईजीसे मिलने आये। भाईजीने सबसे पहले उन्हींसे सारी बातें करके इसके लिये राजी किया। संयोगवश श्रीकरपात्रीजी महाराज भी उस समय ऋषिकेशमें थे। भाईजी श्रीब्रह्मचारीजी एवं अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओंको साथ लेकर श्रीकरपात्रीजीके पास गये और उनसे सारी बातें निवेदन की। भाईजीकी बातोंसे वे भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके एवं संयुक्त प्रयासके लिये सहमत हो गये। उसी दिन शपथ-पत्रपर श्रीकरपात्रीजी, श्रीब्रह्मचारीजी एवं भाईजीने हस्ताक्षर कर दिये। यहींसे आन्दोलनके 'सर्वदलीय' रूपका बीजारोपण हुआ। उसी शपथ-पत्रपर बादमें प्रमुख धर्माचार्योंके, राजनीतिक-समाजिक संस्थाओंके एवं गणमान्य व्यक्तियोंके हस्ताक्षर हो गये।

भाद्र कृष्ण १२ सं० २०२३ को श्रीकरपात्रीजीके नेतृत्वमें वाराणसीमें एक बैठक हुई, जिसमें भाईजी एवं अन्य प्रमुख व्यक्तियोंने भाग लिया तथा 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान समिति' का गठन एवं मुख्य बातोंका निर्णय हुआ। समय-समयपर गतिरोध आये पर भाईजीकी विनम्रता, बुद्धिमत्ता एवं कार्यकुशलता आदिके फलस्वरूप उनका निवारण होता गया। श्रीकरपात्रीजीने कह दिया कि—'भाई हनुमान, अर्थकी सारी व्यवस्थाका भार तुम पर है।' लाखों रुपयेका सारा भार भाईजीने वहन करना स्वीकार कर लिया। इसीपर श्रीसनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, पंजाबके प्राण स्वामी श्रीगणेशानन्दजीने भाईजीको पत्र लिखा—'यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने इस महान् यज्ञका यजमान बनना स्वीकार कर लिया'। यद्यपि अर्थ-व्यवस्थाके भारको कई लोगोंने संभाला पर भाईजीने अर्थ-संग्रहका जो कार्य गुप्तरूपसे किया वह अधिक महत्त्वपूर्ण था। इसके साथ ही 'कल्याण' के प्रत्येक अङ्कमें गोरक्षा सम्बन्धी सामग्री भाईजी देने लगे। 'कल्याण'के लगभग डेढ़ लाख तो ग्राहक ही थे, पाठक कितने लाख होंगे पता नहीं। इससे भी आन्दोलनको बड़ा बल मिला।

कार्तिक कृष्ण ६ सं० २०२३ (७–११–६६) को दिल्लीमें एक ऐतिहासिक विराट जुलूसका आयोजन किया गया जिसमें भाईजी स्वयं सम्मिलित हुए। ऐसी भी आशङ्का थी कि शायद भाईजी दिल्लीमें गिरफ्तार कर लिये जाँय। भाईजीके मनमें इसका किञ्चित् भी भय नहीं था। वे अपने परिकर-मण्डलके साथ दिल्लीके उस जुलूसमें सम्मिलित हुए

एवं जब पार्लियामेन्ट स्ट्रीटमें मंचके पास अश्रुगैस-गोलीकाण्ड हुआ तो भाईजी उसी मंचपर उपस्थित थे। भगवान्ने सब रक्षा की। कार्तिक शुक्ल ८ सं० २०२३ से श्रीपुरी शङ्कराचार्यजी एवं श्रीब्रह्मचारीजीने आमरण अनशन प्रारम्भ किया। साथ-साथ कई साधुओं एवं सद्गृहस्थोंने भी अनशन आरम्भ किये। ज्यों-ज्यों अनशनकी अवधि अधिक होने लगी भाईजी राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, गृह मन्त्री तथा विभिन्न सरकारी अधिकारियोंको प्रतिदिन तार या पत्र भेजते रहे। इसी तरह जगद्गुरु शङ्कराचार्योंको, श्रीविनोबाजी आदि महत्त्वपूर्ण व्यक्तियोंको तार, पत्र भेज-भेजकर प्रोत्साहित करते रहे। आनन्दमयी माँको भी कहलवाया कि वे इन्दिराजीको गोरक्षाके लिये प्रेरणा दें। भाईजीने उस समय अथक और अकथ प्रयास किया। उनके प्रयाससे कोने-कोनेसे जपके, अनुष्ठानके, प्रार्थनाके समाचार आने लगे। लोग उत्साह पूर्वक जेल जाने लगे। आन्दोलनके कार्यको संभालनेके लिये अपने व्यक्तियोंको भेजा। गणमान्य व्यक्तियोंको अपना दृष्टिकोण समझानेके लिये अपने सम्पादकीय विभागके प्रमुख व्यक्तियोंको विभागका आवश्यक काम छुड़ाकर स्थान-स्थानपर भेजा। सरकारी क्षेत्रमें लोगोंको सही ढङ्गसे सोचनेके लिये अनुरोध किया। विधान ऐसा ही था, यद्यपि आन्दोलन सम्पूर्ण भारतवर्षमें गोवंशकी हत्या बन्द करानेमें सफल नहीं हो सका किन्तु भाईजीका गोरक्षाके लिये किया गया प्रयास चिरस्मरणीय रहेगा।

नियम-पालनकी दृढ़ता

बहुत वर्षोंसे भाईजीकी इच्छा थी कि अनेक निकट

रहनेवाले आश्रम-वासियोंकी तरह सादगी-संयम पूर्ण जीवन व्यतीत करें। कई बार इसके लिये चेष्टा भी की, किन्तु आश्रमका रूप नहीं बन सका। अन्तमें भाईजीने यह विचार किया कि मैं स्वयं नियमोंका दृढ़तासे पालन प्रारम्भ करूँ तो शायद निकट रहनेवाले भी दृढ़तासे पालन करने लगे। इसी आशयसे उन्होंने नियम बनाये एवं लगभग सं० २०२४ के प्रारम्भसे वे दृढ़तासे पालन करने लगे। दिनमें दो बार भोजन; भोजनमें भी केवल चार वस्तुएँ, सबेरे चाय और अपराह्नमें कभी-कभी थोड़ा-सा फल—यही भाईजीका उस समयका आहार था। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से नियम थे, जिनका दृढ़ताके साथ पालन करते थे। उनके पालन करनेसे निकट रहनेवाले लोगोंने भी नियम पालन करना आरम्भ किया। दूर स्थानमें रहनेवाले अपने प्रिय-जनोंको भाईजीने पत्र लिखवाये एवं नियमोंका विवरण भेजा जिससे बहुत-से लोग अपने-अपने घरोंमें रहते हुए भी नियमोंका पालन करने लगे।

और नियमोंका पालन करें इसमें तो कोई बात नहीं किंतु भाईजीके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे वे ठीकसे नहीं खायें—इसके लिये उनकी धर्मपत्नीके मनमें व्यथा होना स्वाभाविक था। कई बार भाईजीसे प्रार्थना की, किन्तु भाईजी नियम पालनमें दृढ़ रहे। एक बार एक बहिन आयी हुई थी। भाईजीका उनपर विशेष स्नेह था एवं उनका भाईजीके प्रति भाव भी विशेष था। भाईजीकी धर्मपत्नीने उनको कहा कि—"जितने दिन तुम रहो, उनको रस पिला दिया करो"। उनकी आज्ञा पालनके लिये अपराह्नमें वह

बहिन मौसमीका रस लेकर भाईजीके पास गयी। भाईजीने समझा कि जल लायी है, अतः कहा—'अभी तो जल पिया है।' बहिनने कहा—'गर्मीमें चाहे कितना भी पी लीजिये।' कई बार टालते रहे फिर भी भाईजी बोले—'अच्छा, आधा गिलास जल दे दो।' बहिनने गिलास भाईजीको दे दिया। ज्यों ही भाईजीने देखा कि रस है, उनके चेहरेका रङ्ग बदल गया और बोले—'इसे नहीं पीऊँगा'। बहिनने बहुत आग्रह किया, बोली—'इसके पीनेमें क्या बात है?' भाईजी दृढ़तासे बोले—'बात क्यों नहीं है, आखिर नियम पालन भी तो कोई चीज है। नियम एक बार टूटा तो बार-बार टूटता ही जाता है।' इतनेपर भी जब उसने अनुरोध किया तो कड़ाईसे बोले—'आज तो मैं पी लूँगा, पर इसके बदलमें मैं दो दिन उपवास करूँगा। तब मत कहना, उपवास क्यों कर रहे हैं?' बहिनके पास कोई उत्तर नहीं था, गिलास वापिस ले लिया।

यह थी भाईजीके नियम पालनकी दृढ़ता। यद्यपि वे नियम पालनकी स्थितिसे बहुत वर्षों पहले ही ऊँचे उठ गये थे। वे तो—'वेदानऽपि संन्यस्यति' से भी आगे बढ़ गये थे पर निकट रहनेवाले नियमोंका दृढ़तासे पालन करें, इसीलिये ऐसा करते थे।

श्रीभगवन्नाम-प्रचारकी चतुर्थ योजना

भाईजीने श्रीभगवन्नाम-प्रचारके लिये जो कार्य किया, वह अद्वितीय कहा जा सकता है। ऐसे नास्तिक युगमें सहस्रों-सहस्रों नर-नारी नाम-जपमें उनकी प्रेरणा लगे।

कालके प्रवाहसे अब लोगोंमें वैसी श्रद्धा नहीं थी, जैसी भाईजी ३५-४० वर्ष पहले देखते थे, अतः अब उन्होंने श्रीभगवन्नाम-प्रचारका एक और तरीका सोचा। गीता-वाटिकामें सहस्रोंकी संख्यामें नर-नारी हर वर्ष आते ही थे। अतः उनके कानोंमें अनायास ही नाम-ध्वनि प्रवेश करती रहे और उनके मुँहसे भी यत्किञ्चित् नाम संकीर्तन हो, इस आशयसे उन्होंने राधाष्टमी सं० २०२५ से गीता-वाटिकामें अखण्ड नाम संकीर्तन प्रारम्भ करवाया। इसके लिये चैतन्य महाप्रभुकी जन्मभूमि बङ्गालसे कीर्तनकार बुलाये गये जो अपने मधुर कंठसे 'हरे राम' महामन्त्रके आकर्षक संकीर्तनका अमृत गीता वाटिकामें रहनेवाले और आनेवाले सभीके कर्ण-पुटोंमें उँडेलते रहते हैं। आज लगभग सोलह वर्षोंसे यह क्रम निरन्तर चौबीसों घण्टे चलता रहता है और न जाने कब तक इस रूपमें हर वर्ष सहस्रों नर-नारियों पर भाईजीकी कृपा-वर्षा होती रहेगी।

राजस्थानके भीषण अकालमें सेवा

सं० २०२५-२६ में राजस्थानमें भीषण अकाल पड़ा। इस भीषण अकालमें मनुष्यों तथा विशेषतया गो-वंशकी स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी थी। यद्यपि भाईजी उन दिनों अस्वस्थ थे पर उनको जब स्थितिका पता लगा तो वे चुप नहीं रह सके। अपनी अस्वस्थ अवस्थामें ही कई स्थानोंपर सेवा कार्यके बृहद् आयोजनकी व्यवस्था की। बीकानेरमें गायोंकी सेवाका कार्य विशेष रूपसे हुआ। अपनी धर्मपत्नीसे पाँच हजारकी अल्प पूंजी लेकर भाईजीने सेवा-कार्यका शुभारम्भ किया और भगवान्की कृपासे उस सेवा-कार्यमें

पन्द्रह लाख रुपये व्यय हुए। भाईजीके जीवन-कालमें जब भी ऐसे अवसर आये, उन्होंने सेवाकी व्यवस्था दत्त-चित्तसे की। सं० २०२६ में आसामके तूफानग्रस्त क्षेत्रोंमें सेवा-कार्य प्रारम्भ हुआ और सं० २०२७ में पूर्वी पाकिस्तानके तूफान पीड़ितोंकी सहायता की गयी।

सेवाके कार्य

जैसे भाईजीकी हिन्दी साहित्यकी सेवाओंका परिचय बिना एक स्वतन्त्र-ग्रन्थके संभव नहीं है, वैसे ही भाईजीकी अन्य सेवाओंका संग्रह किया जाय तो एक विशाल ग्रन्थ बन जायगा। यद्यपि सहायताके विषयमें भाईजीकी शैली थी—'दाहिना हाथ दे और बायेंको पता न चले'। फिर भी जो घटनायें छिपी न रह सकीं उनका परिचय भी यहाँ स्थानाभावसे संभव नहीं है। बचपनसे ही उनमें गुप्त-सेवाकी भावना थी और वह क्रमशः बढ़ती ही चली गयी। उनके द्वारा जो विपुल धन-राशि सेवा-कार्योंमें व्यय हुई उसपर विश्वास होना भी कठिन है। वे तन, मन, धनसे आजीवन इसमें लगे रहे और वाणीसे सम्पर्कमें आनेवालोंको प्रेरणा देते रहे। उनके पाससे किसीको निराश लौटते नहीं देखा गया।

यहाँ केवल संकेत किया जा रहा है जिससे पाठक स्वयं उनकी सेवाओंका अनुमान लगा सकें।

(१) घटना पुरानी है। गीता-भवन, स्वर्गाश्रम, सत्सङ्ग-मण्डप श्रोताओंसे भरा हुआ था। ओजस्वी वक्ता थे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी। पर्याप्त जनता होनेपर भी उनके

प्रवचनमें गम्भीर शान्ति चारों ओर विद्यमान थी। प्रवचन समाप्त होनेपर एक आवश्यक सूचना, जिसमें सेवा अपेक्षित थी, एक सत्सङ्गी भाईकी ओरसे वक्ता द्वारा सुनायी गयी—

'राजस्थानसे एक सम्भ्रान्त, किन्तु अभावग्रस्त ब्राह्मण देवता आये हुए हैं। अचानक भयानक हैजा हो जानेके कारण उनकी स्थिति चिन्ताजनक हो गयी है। इस अशक्त अवस्थामें उन्हें सेवाकी आवश्यकता है। कृपया उत्साही पुरुष अपना नाम लिखवाएँ; रात्रिभरकी सेवाके लिये चार व्यक्तियोंके नाम चाहिये।"

प्रथम बार सूचना पढ़े जानेपर केवल दो उत्साही भाइयोंने अपना नाम लिखवाया। वक्ताद्वारा सूचना दोहरायी गयी, इस बार भी संकोचवश एक व्यक्तिने अपना नाम और दिया। सूचना प्रसारित करनेवाले व्यक्तिने धीरे-से भाईजीसे कहा—'केवल एक नाम और चाहिये; कृपया एक बार पुनः सूचना दोहरा दें।'

'इसकी आवश्यकता नहीं—इतना कहकर भाईजी अपने स्थानसे उठ खड़े हुए। सूचना प्रसारित करनेवाला भी उलझनमें फँस गया—तीन व्यक्तियोंसे कैसे रात्रिभर काम चलेगा—दो व्यक्तियोंके बिना वमन और मलसे सने कपड़े कैसे बदले जायँगे और एक आदमी द्वारा आठ घण्टे एक साथ सेवा कर पाना संभव भी नहीं; पर उस भव्य व्यक्तित्वके सम्मुख पुनः कहे भी तो कैसे।

गीताभवनसे बाहर निकलनेपर भाईजीने साथ चलते जन-समूहपर दृष्टिपात करते हुए सूचना प्रसारित करवानेवाले

बन्धुसे कहा—'एक व्यक्ति सेवाके लिये जिस स्थानपर जितने बजे कहिये, पहुँच जायगा।'

'रात्रिमें ठीक दस बजे स्वर्गाश्रमसे बने मन्दिरके पिछवाड़े स्थित झोपड़ीमें पहुँच जाय। दो बजेतक उनको रहना होगा, उसके बाद दूसरा गुट आ जायगा।'

'अच्छा'—छोटा-सा उत्तर दे भाईजी आगे बढ़ गये।

रातके दस बजनेवाले थे। माँ भागीरथीके अङ्कमें चन्द्रमा शिशुवत् मचल-मचलकर खेल रहा था। उसी समय भाईजीने धीरेसे झोंपड़ीका दरवाजा खोलते हुए भीतर प्रवेश किया।

'आ..............प.........आप.......'—विचित्र विस्मयकी अनुभूति कर सूचना प्रसारित करनेवाले बन्धुने कहा—'आप रहने दीजिये; हमलोग सब संभाल लेंगे।'

'क्यों? क्या मैं सेवा नहीं कर सकता?'

'नहीं, यह बात नहीं—इनके कपड़े वमन तथा मलसे बार-बार सन जाते हैं, उनको साफ करना पड़ता है, फिर कपड़े बदलने पड़ते हैं।'

'तो क्या हुआ?' सहज, स्वाभाविक स्वरमें उत्तर दिया, श्रीभाईजीने।

'नहीं.........बड़ी भयानक दुर्गन्ध होती है, इसीसे कह रहा हूँ।'—ये शब्द भाईजीके कानमें कहनेका प्रयास किया उन्होंने।

'मल-ही-मल तो भरा है इस शरीरमें; दुर्गन्ध नहीं तो सुगन्ध कहाँसे आयेगी।' फीकी हँसीके साथ भाईजीने कहा।

भाईजी द्वारा बिना किसी हिचकके सेवा चलती रही—मलसे सने कपड़ोंको बदलना, वमन साफ करना, दवा देना, कुल्ला कराना, जल पिलाना। घृणाकी तो बात क्या, वह तो प्रभुकी अर्चना समझकर की जा रही थी बड़ी ही लगनसे, प्यारसे, स्नेहसे। भाईजीका परिधिहीन 'स्व' की मान्यतामें रुग्ण भाई कोई दूसरा नहीं, अपना था——अपने-से-अपना था, अपना स्वरूप था।

सूचना प्रसारित करनेवाला विस्मयके साथ देख रहा था। वह मुग्ध था कि भाईजी केवल सेवाका उपदेश देनेमें ही पटु नहीं हैं, सेवा करनेमें वे उससे भी अधिक दक्ष हैं, निपुण हैं।

भाईजी जैसे संतके स्पर्शसे, उनकी ममता भरी सेवासे उनकी महिमामयी उपस्थितिसे रोगीको भी बड़ी शान्तिका अनुभव हुआ। भाईजीकी पारीका समय पूरा होते-होते उसकी स्थितिमें पर्याप्त सुधार हो गया और जब भाईजी वहाँसे लौटने लगे, उसने सजल नेत्रोंसे भाईजीका भाव-अभिनन्दन किया।

(२) गोरखपुर आनेके पश्चात् न भाईजीके पास अपना एक पैसा था, न कहीं कुछ जमा था। न उन्होंने कुछ कमाया ही। गीताप्रेस, 'कल्याण' या अन्य किसी भी संस्थासे उनका कोई आर्थिक सम्बन्ध न था। न उन्होंने भेंट, पूजा, उपहार आदिके रूपमें किसीसे भी एक पैसा कभी स्वीकार किया। ऐसी स्थितिमें सेवा-कार्य स्वजनों, मित्रों और श्रद्धालुओंके भगवत्प्रेरित या स्वेच्छाप्रेरित दानसे चलते थे, और चलते थे प्रचुर परिमाणमें। परन्तु कभी-कभी

ऐसे अवसर भी आ जाते थे, जब सेवा-कार्यके लिये प्राप्त राशि समाप्त हो गयी है और सामने उपस्थित भाईके कष्ट-निवारणके लिये उतने रुपयोंकी व्यवस्था करना अनिवार्य होता। ऐसी विवशताकी स्थितिमें भाईजीका हृदय द्रवित हो जाता था और वे किसीसे ऋण लेकर, इतना ही नहीं अपनी पत्नीके गहने बेचकर भी उस आर्त भाईके आँसू पोंछते थे। यहाँ भाईजीके केवल एक पत्रका कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है; आप स्वयं अनुभव करें कि उनका हृदय कितना संवेदनशील था !

श्रीहरिः

गोरखपुर

ज्येष्ठ बदी २, सं० २०१०

प्रिय....................जी,

सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका २७-५-५३ का पत्र मिला। एक कार्ड जयपुरसे मिला था।..............की पत्नीको..........रुपये मासिक देकर रसीद लेते रहियेगा।

श्री.....बाबत लिखा, सो ठीक है। मुझे स्वयं उनकी बड़ी चिन्ता है कि उनकी बीमारीकी स्थिति सुनकर मैं कुछ भी कर नहीं सकता। जो कुछ व्यवस्था हो सकी, उनको दे दिया तथा भविष्यमें (छः महीनेके लिये सोचकर) सौ रुपया महीना भेजनेकी बात भी उनसे कह दी है। पर आप जानते हैं, मैं तो सर्वथा अकिञ्चन हूँ। मेरे पास पैसा नहीं। दुनियाँकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो गयी है कि पहले लोग अपनी इच्छासे अच्छे काममें पैसा लगानेको कहते थे, अब वह तो सर्वथा बन्द हो गया—

कहनेपर भी नहीं होता। × × × श्री······को कह तो दिया, पर मेरे पास एक पैसा भी नहीं। गीताप्रेसकी रोकड़से उचंत (अर्थात् उधार) लेकर उनको दे दिये, पर अभीतक वे वापस नहीं किये जा सके। पिछले दिनों एक सज्जनको ·········रुपये देने थे—सहायतामें। कहीं प्रबन्ध नहीं हुआ सावित्रीकी माँ (धर्मपत्नी) का एक गहना बेचकर दिये। यह स्थिति है कैसे देता-लेता हूँ, इसीसे आप अनुमान कर सकते हैं। किससे कहूँ ? लाभ भी क्या है ? इसीसे श्री·········को पत्र नहीं दिया। उनके दो पत्र आ गये—एक पहले आया था, दूसरा आज आया। आप उन्हें मेरे नाम लिखकर एक सौ रुपया दे दीजियेगा।

उन्होंने·········रुपया अंदाज ऋणके लिखे हैं, मासिक खर्च भी १५० रुपये अंदाज बताया है और ठण्डी जगह जानेकी बात लिखी है। बात तीनों ही ठीक हैं; पर मैं उन्हें क्या लिखूं ? मेरे पास कोई व्यवस्था नहीं है। एक सौ रुपये महीना तो मैं छः महीनेतक किसी तरह भेजता रहूँगा, पर इससे अधिक कुछ भी करनेकी मेरी परिस्थिति नहीं है···············।

आपका भाई,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

इस तरह दैनिक सहायताके अतिरिक्त अकाल, बाढ़, भूकम्प आदि दैवी-प्रकोपोंके समयमें निरन्तर यथा साध्य सेवा व्यवस्था करते थे। कड़कड़ाती सर्दीके समय रात्रिमें

वे स्वयं जीपमें कम्बलें लदवा कर कुछ साथियोंको लेकर जाते एवं ठिठुरते हुए भिखमङ्गोंको अपने हाथसे कम्बल ओढ़ाते।

सामाजिक सेवामें भी भाईजीकी विशेष रुचि थी। गोरखपुरमें सन् १९५५ में भाईजीने एक मूक-बधिर विद्यालयकी स्थापना की। जिसमें मूक-बधिरोंको उचित शैक्षणिक उपचार एवं व्यसायिक प्रशिक्षण प्रदान कर समाजके योग्य नागरिक बनानेका प्रयत्न किया जाता है।

गोरखपुरमें 'कुष्ठ सेवाश्रम' के स्थापनामें भाईजीका प्रारम्भसे ही सक्रिय सहयोग रहा। सन् १९५१ में इसकी स्थापना हुई एवं सन् १९५३ में भाईजीने प्रयत्न करके इस संस्थाको 'कुष्ठ-सेवाश्रम'के नामसे एक रजिस्टर्ड संस्था बना दिया। आज यह संस्था देशकी कुष्ठ निवारण हेतु महत्त्वपूर्ण संस्थाओंमेंसे एक है।

इनके अतिरिक्त सञ्चालन-परामर्श आदिके माध्यमोंसे उन्होंने विभिन्न सेवा-संस्थाओंको अपने-अपने क्षेत्रोंमें सेवा-संलग्न रखा। जिनमेंसे कुछके नाम निम्नलिखित हैं—
(१) गाँधी-बाल-निकेतन, रतनगढ़। (२) श्रीरतनगढ़-नेत्र चिकित्सालय, रतगढ़। (३) जनहित-न्यास, सरदारशहर। (४) नवद्वीप-भजनाश्रम-ट्रस्ट। (५) चित्रकूट-भजनाश्रम। (६) श्रीभगवान्-भजनाश्रम, वृन्दावन (७) श्रीपञ्चायती-गोशाला, वृन्दावन। (८) श्रीमङ्गलनाथ-गोशाला, ऋषिकेश। (९) श्रीकृष्ण-जन्मभूमि-सेवा-सङ्घ, मथुरा। (१०) अखिल-भारतीय-आर्य-हिन्दू-सेवा-सङ्घ, दिल्ली। (११) अखिल-भारतीय-अग्रवाल-सेवा-समिति, प्रयाग, आदि-आदि।

भाईजीकी परोक्ष सेवाका एक अनुपम उदाहरण

सेवा और संभालके भाईजीके अनूठे तरीके थे। पं० लक्ष्मण नारायणजी गर्देका नाम हिन्दी-पत्रकारिता जगत्में विख्यात है। इन्होंने 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें बहुत दिनों तक कार्य किया और भाईजीका स्नेह प्राप्त किया। बादमें वे बनारस चले गये। मानवमें दुर्बलता रहती ही है और सङ्ग पाकर पुराने संस्कार अच्छे मनुष्यको भी दबा लेते हैं। यही गर्देजीके साथ हुआ। किन्तु गोरखपुरमें रहते हुए भी भाईजीने बनारसमें उन्हें कैसे संभाला—इसका वर्णन उनके ही शब्दोंमें पढ़िये—

"कल सन्ध्या समय पापमें प्रवृत होनेके अवसरपर ऐसा प्रतीत हुआ कि बीकानेरी पगड़ी बाँधे हुए आप मेरे पास आकर खड़े हो गये। आपका मुख-मण्डल उदास था। आपने कहा—'कहाँ जाते हो ? घर चलो।' (आपको मेरे लिये नरकमें उतरना पड़ा)।······मैं आपके पीछे-पीछे चला।······मैंने पूछा 'घर चलकर क्या करूँ ?' आपने कहा—'ॐ नमः शिवाय' का जप करो। मैंने पूछा कितना जप करूँ ? आपने कहा 'पाँच माला।' गोरखपुरसे चलनेके बाद जितने दिन तुम इस दोषमें प्रवृत हुए, उतनी पाँच माला जपो, जन्माष्टमी तक नित्य सायङ्काल··········· प्रायश्चित्त स्वरूप चीनी-फल आदि लेकर जन्माष्टमी तकका उपवास प्रारम्भ किया हैं विगत रविवारसे और १२ पञ्च-माला "ॐ नमः शिवाय" की कल मङ्गलवारसे आरम्भ की है। यह सब इसलिये निवेदन किया है कि आप यथोचित संशोधन बताकर मेरे जीवनको ऐसे रास्तेपर लगा दें कि यह जीवन व्यर्थ न जाय, भगवान्से कभी विमुख न हो।"

उपरामताकी चरम सीमा

भाईजी जिस महाभावमयी स्थितिमें थे, उनके द्वारा बाह्य व्यवहारका सुचारु रूपसे सम्पन्न होना सम्भव ही नहीं था। वास्तविकता यह है कि श्रीकृष्णको इनके माध्यमसे जगत्के समक्ष एक नया आदर्श उदाहरण रखना था। इसीका परिणाम था कि उस अनिर्वचनीय स्थितिमें रहते हुए भी विभिन्न क्षेत्रोंमें सेवाके नये-नये आदर्शोंका प्रस्तुतीकरण भाईजीके जीवन द्वारा हो सका। लगभग सं० २०१५-१६ के पश्चात् वृत्ति बार-बार जगत्को छोड़ने लगी। ऐसी अवस्थामें बाह्य-जगत्के कार्योंको सम्पन्न करनेमें बाधा उपस्थित होने लगी। नीचे भाईजीके पत्रोंके कुछ अंश प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनसे उनकी स्थितिका कुछ अनुमान लगाया जा सके—

दि० १२-६-६० के पत्रमें वे लिखते हैं—

प्रिय........................

सप्रेम हरिस्मरण।......................मेरा स्वास्थ्य तो प्रायः ठीक ही है। पर मनकी उपरति, एकान्त-प्रियता तथा अन्यमनस्कता बढ़ रही है। कभी-कभी जगत्को बिलकुल भूल जाता हूँ। बोलते-बोलते भूल जाता हूँ। कहना कुछ और चाहिये—सोचना कुछ और चाहिये, कर तथा सोच जाता हूँ कुछ और ही। यह दशा है।............

श्रीभाईजीके जीवनमें ऐसा इसलिये हो रहा था कि अब उनके समक्ष श्रीश्यामसुन्दर निरन्तर अपनी लीला-माधुरीका रसास्वादन करा रहे थे। दि० २१-११-५६ के एक पत्रमें उन्होंने लिखा—

प्रिय...............

सप्रेम हरिस्मरण।...............एक हटे तब न दूसरेसे बात की जाय--

हटे वह सामने से तब मैं अन्य कुछ देखूँ।
सदा रहता बसा मन में तो कैसे अन्य को लेखूँ॥
उसीसे बोलनेमें ही मुझे फुर्सत नहीं मिलती।
तो कैसे अन्य चर्चाके लिये फिर जीभ यह हिलती॥
सुनाता वह मुझे मीठी रसीली बात है हरदम।
तो कैसे मैं सुनूँ किसकी छोड़ वह रस मधुर अनुपम॥
समय मिलता नहीं मुझको, टहलनेसे एक पल उसकी।
छोड़कर मैं उसे, कैसे करूँ सेवा कभी किसकी?
रह गयी मैं नहीं कुछ भी किसीके कामकी हूँ अब।
समर्पण हो चुका मेरा जो कुछ भी था, उसीके सब॥

× × ×

चलत चितवत दिवस जागत सुपन-सोवत रात।
हृदय तें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात॥

पर यहाँ तो केवल हृदयकी बात नहीं है। हृदयमें भी और बाहर-भी तब क्या किया जाय? किवाड़ बन्द किये पड़ा रहता हूँ। यहाँ तो--

लूट गया डेरा, नहीं कुछ बच रहा।
हर तरफ हर वक्त ऊधम मच रहा॥
कर रहा वह है शरारत दिन औ रात।
हो गयी मेरी सभी वे किश्तें मात॥

...............इस श्याम सागरमें डूबनेपर किसीको

निकलते नहीं देखा गया। उस नशेमें चूर होनेपर कोई सयाना नहीं हुआ।............

श्रीभाईजीके तत्कालीन भावमयी स्थितिके संकेत कई पत्रोंमें मिलते हैं। दि० १६-११-६१ पत्रमें वे लिखते हैं—
प्रिय भैया..................

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे कई पत्र आये। मैंने इधर किसीको पत्र नहीं लिखा। रात-दिनमें कुल मिलाकर ५/६ घण्टे बाह्य-चेतना पूरी रहती है। उस समय जितना बन पड़ता है, प्रेसका काम देखता हूँ। पत्रादि लिख ही नहीं पाता। बड़ी विवशता है। कमरा अधिक समय बन्द ही रहता है। सत्सङ्गमें भी कभी दो-चार दिनों बाद जा पाता हूँ। भाई जयदयाल, विष्णुकी माँ आये हुए हैं। पर मैं तो उनसे नहीं मिल पाता। यह हालत है।...........
आज-कल मेरा न भूलना ही आश्चर्य है। पत्रोंमें कुछका कुछ लिख देता हूँ। लिफाफों पर नाम गड़बड़ कर देता हूँ।................

उन्हीं स्वजनको दि० २७-४-६२ के पत्रमें भाईजीने लिखा—

प्रिय भैया..................

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे पत्र मिले। मैं पत्र नहीं लिख सका सो भैया मेरी परिस्थिति पर विचार करके क्षमा करना। तुम लोगों जैसे सुहृदोंको पत्र लिखनेका मन बहुत रहता है। और यह उचित भी है। अतः मैंने पत्र देना एकदम बन्द ही नहीं कर दिया—परिस्थितिने बाध्य

कर रखा है। मेरी परिस्थितिका पूरा अनुमान करना भी कठिन है। प्रतिक्षण संसारको सर्वथा विस्मृत करा देनेवाली चित्तवृत्तिका प्रवाह, बलात्कारसे इस वृत्ति प्रवाहकी सहज गतिको रोककर संसारको पकड़ाये रखनेवाली परिस्थितियाँ, मस्तिष्कका विद्रोह तथा द्वन्द्वयुद्ध, मेरी स्थितिका अनुमान न कर सकनेके कारण सभीका अपने-अपने मनके महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये मेरी सम्मति, सहयोग तथा सहायताका आग्रह, भाँति-भाँतिकी संसारकी परिवर्तनशीलताके कारण प्रादुर्भूत स्थितियाँ—आदि; तथा काममें अनिच्छा, अरुचि, समय-समयपर कामकी आवश्यकता तथा पद्धतिकी भी विस्मृति होनेपर भी बलात्कारसे कामकी स्मृति तथा काममें लगाकर यथायोग्य कार्य सम्पादन करना। यह मेरी हालतका एक सांकेतिक रूप है। अब बताओ कैसे क्या सोचूँ, क्या लिखूँ। आज इस समय किसी प्रकार मनको बटोरकर पाँच-चार पत्र लिखनेका विचार किया है। तुम्हारा यह पत्र पहला ही है। लिख सकूँगा या नहीं पता नहीं, मेरी यह स्थिति न किसीको समझायी जा सकती है, न कोई समझ पायेगा, ऐसी आशा ही है।...............

जब भाईजीने देखा कि अब किसी भी तरह काम सम्भालना सम्भव नहीं है, तब श्रीसेठजीको दि० १६-५-६२ को पत्र लिखा—

परम पूज्यचरण,

सादर प्रणाम ।.....................कलकत्तेमें शायद ही दो-तीन रातें बीती होंगी, जिनमें मैं दो-तीन घंटे सोया हूँ। वहाँसे लौटनेपर काम बढ़ा मिला। फिर

दूलीचन्दको चोट लग गयी। वही परिस्थितिका पचड़ा यहाँ आ गया। अतएव यहाँ भी अबतक बड़ी ही गड़बड़ी चल रही है। अब फिर कलकत्ते जाना है। काम होता ही नहीं। पत्र-व्यवहार प्रायः बन्द है। लोगोंकी शिकायतें आती हैं, पर जैसे मुर्देपर कोई कितना ही मारे, वैसी ही दशा है। यहाँ रहना भी बाधक ही प्रतीत होता है। लोग मिलने आते हैं, पत्र लिखते हैं।...............'कल्याण' वाले लेख चाहते हैं, प्रेस वाले कभी-कभी कुछ सलाह चाहते हैं, यह सभी उचित है, पर मैं क्या करूँ ? विवशता बढ़ी जा रही है। कहीं भी आने-जाने, मिलने-जुलने, लिखने-पढ़नेकी वृत्ति एकदम नहीं होती।...... अतएव मेरी हाथ जोड़कर आपसे निम्नलिखित प्रार्थना है—

(१) 'कल्याण', 'गीताप्रेस' सब-के-सब क्षेत्रोंसे मुझे शीघ्र ही निश्चय ही अलग कर दिया जाय। कहीं भी मेरा नाम न रहे, न जिम्मेवारी रहे, न सलाह आदि ली जाय। मरा समझकर भुला दिया जाय।

(२) कहीं भी आने-जानेकी परिस्थिति न रहे। कहीं एकान्त स्थानमें रहा जाय। गोरखपुरमें भी रहा जाय, तो सर्वथा सब प्रकारकी इस क्रियाशीलतासे बिलकुल पृथक होकर।

(३) पत्र-व्यवहार सर्वथा बन्द कर दिया जाय।

मेरी आपसे, मित्र-बान्धवोंसे, घरवालोंसे—सभीसे यह प्रार्थना है।............

आपका,

हनुमानप्रसाद

भाईजी केवल पत्रोंमें लिखते थे, यह बात नहीं थी। वस्तुतः स्थिति ही ऐसी हो गयी थी। वे परम दिव्य भावराज्यमें निरन्तर अवस्थित रहते थे। ऐसी ही स्थितिमें उनके द्वारा एक पत्र लिखा गया, जिसमें पत्रके अन्तमें 'तुम्हारा—हनुमान'के स्थानपर लिख दिया गया —राधामाधव। दि० २२-७-६१ का एक पत्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्यारे............सभी प्यारे, सभी प्यारी—सभीमें सदा राधामाधव, सभीमें सदा राधामाधवकी मधुर मनोहर लीला।

'राधा-माधव—माधव-राधा', छाये देश काल सब ओर।
नाच रही राधा मतवाली, मुरली टेर रहे मनचोर॥
देखो—सुनो, सदा सबमें, सर्वत्र भरे दोनों रसधाम।
मधुर मनोहर मूरति, मुरली-धुनि बरसाती सुधा ललाम॥
लीला लीलामय ही हैं सब, लीला लीलामय सर्वत्र।
लीला लीलामय ही रहते, करते लीला विविध विचित्र॥
नित्य मधुर दर्शन सम्भाषण, स्पर्श मधुर नित नूतन भाव।
नित नव मिलन, नित्य मिलनेच्छा, नितनवरस-आस्वादन चाव

राधा-माधव

भाईजीकी वृत्ति प्रायः जागतिक और शारीरिक धरातलको छोड़ दिया करती थी, पर अब तो और भी अधिक इस पाञ्चभौतिक धरातलसे अतीत रहने लगी। जिन प्रेमीजनोंको वे प्रति सप्ताह तीन-चार या प्रतिदिन पत्र देते थे, उन्हें महीनोंसे पत्र दिये जाने लगे। आवश्यक

कार्य होने पर भी अन्यत्र जाना स्थगित करने लगे। धीरे-धीरे 'कल्याण' के अतिरिक्त सभी जिम्मेवारीके कार्योंसे सम्बन्ध समेट लिया। जो लोग दूर-दूरके स्थानोंसे मिलने, सहयोग प्राप्त करने एवं आवश्यक परामर्श करने आते, उनसे भी बात-चीत नहीं कर पाते थे।

"महाभावमयी स्थिति भाव--समाधि"

प्रेमका मर्म सदैव ही अनगाया रहा है। कोई भी उसका पूर्ण वर्णन कर ही नहीं पाया। यही कारण है कि देवर्षि नारदने भगवदीय प्रेमके स्वरूपको सर्वथा अनिर्वचनीय बताया है। उस परम सूक्ष्म और मात्र-अनुभव-गम्य प्रेमकी टेढ़ी-मेढ़ी, पर सरसीली गलियोंकी रजकणिकाको अपने मस्तकपर धारण करनेका यत्किञ्चित् सौभाग्य जिन रसिक मर्मज्ञोंको कभी हुआ हो उनकी मान्यताके अनुसार प्रेममें ज्यों-ज्यों प्रगाढ़ता आती है, त्यों-त्यों उसके नवीन-नवीन प्रगाढ़तरसे प्रगाढ़ाति-प्रगाढ़तर रूपोंका आविर्भाव होता चला जाता है, उन्हीं रसिक रस मर्मज्ञों द्वारा प्रणीत रस-शास्त्रोंमें प्रेमके विभिन्न प्रगाढ़तर रूपोंका विवेचन और निरूपण विस्तारसे किया गया है। परम प्रेष्ठ भगवान्के श्रीचरणोंके प्रति हृदयमें रतिका उद्भव होना ही प्रेम है। यह प्रेम धीरे-धीरे प्रगाढ़ होता है और प्रगाढ़ होते-होते क्रमशः——स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भावके स्तरोंको पार करके महाभावके स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। रस-शास्त्रमें महाभावको प्रेमके सर्वोच्च स्वरूपके रूपमें निरूपित किया गया है।

प्रेमके इस सर्वोच्च स्तर 'महाभाव' में भाईजीकी अवस्थिति बहुत पहले ही हो गयी थी। गिरधर गोपालकी मतवाली भक्तिमती मीराबाईने सं० १९९७ के आस-पास एक परम सौभाग्यशाली संतको दर्शन देकर बतलाया था कि हनुमानप्रसादका सूक्ष्म शरीर श्रीप्रियाजीका स्वरूप हो गया है। लगभग बीस वर्षोंतक भाईजी अपनी दिव्य लोकोत्तर स्थितिको छिपाये रहे। वे तो स्वयंको सदाके लिये छिपाये ही रखना चाहते थे, परन्तु अपने प्राणधन प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी अचिन्त्य योजनाके समक्ष वे विवश थे। प्रेम राज्यकी यह दिव्य स्थिति अभिव्यक्त करनेकी वस्तु है ही नहीं और उसे छिपाये रखनेका भाईजीने भरपूर प्रयत्न किया, परन्तु प्राणधान प्रियतम श्रीश्याम-सुन्दरकी इच्छा कुछ और ही थी। भाईजीने उस स्थितिको प्रकट किया नहीं, अपितु भाईजीके द्वारा न चाहे जानेके बाद भी ईश्वरीय इच्छाके अनुसार वह दिव्य स्थिति जगत्के सामने प्रकाशमें आ गयी।

जीवनके अन्तिम दस-बारह वर्षोंमें भाईजीकी स्थिति बड़ी विचित्र रही। भाईजीकी अभिलाषा थी और अभिलाषाके अनुरूप प्रयास था कि मेरी वृत्तियाँ जगत्की सेवा-कार्यमें लगी रहे, परन्तु उनकी वृत्तियाँ बलात् पहुँच जातो थी उस लीला राज्यमें। भाईजीकी अभिलाषाके विपरीत भाईजीकी वृत्तियाँ श्रीराधा-माधवकी मधुर लीलाओंके गहन सिन्धुमें विलीन हो जाती थी। यह कैसी अद्भुत विवशता है। लीला-सिन्धुमें उनकी वृत्तियोंके विलीन हो जानेके बाद जागतिक सेवाके सभी कार्य ज्यों-के-त्यों

धरे ही रह जाते थे। जगत्की सेवा करनेकी भाईजीकी चाह है और एतदर्थ सच्चाईसे प्रयास भी है, फिर भी अनोखी विवशता है। ऐसी विवशता कि सेवा-कार्य चाह करके भी हो नहीं पाता, जब देखो तब यही दिखलायी देता था कि भाईजीका शरीर निश्चेष्ट है, निस्पन्द है, श्वास-प्रश्वासके अतिरिक्त कोई स्पन्दन कोई क्रिया नहीं। यह निश्चेष्ट निस्पन्द स्थिति घण्टों-घण्टों रहा करती थी। इस निश्चेष्ट निस्पन्द स्थितिको निकटवर्ती आत्मीय जनोंने 'भाव-समाधि' कहना आरम्भ कर दिया।

एक ओर ऐसी भाव-समाधि लग जाया करती थीं तो उसीके साथ-साथ लोक-सेवाके कार्य भी भाईजीके द्वारा होते ही रहते थे।

भाईजीका जीवन विरुद्ध गुण-धर्मके आश्रयत्वका एक अद्भुत उदाहरण है। नारायण स्वामीका एक पद है उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जाहि लगन लगी घनश्याम की।
धरत कितै पग परत कितै हू भूलि जात सुधि धाम की।
छबि निहार नहीं रहत सार कछु निसि दिन घरिपल जामकी।
... ...
नारायण बौरी भई डोलै रही न काहू कामकी॥

जिसकी घनश्यामसे सच्ची प्रीति हो जाती है, उसे न तो शरीरकी स्मृति रहती है, न उसे घरकी सुधि होती है। न उसे जगत्में कोई सार दिखता है। न समयका भान रहता है। वह प्रीति-बावली किसीके लिये किसी कामकी नहीं रह जाती। 'रही न काहू काम की' पर भाईजीके

जीवनमें दोनों पक्षोंके निर्वाहका स्वरूप दिखलायी देता है। सामाजिक संस्थाओंकी संभाल, आर्तजनोंको सहायता, जनसेवाव्रती कार्यकर्ताओंको सहयोग, पारिवारिक व्यक्तियों-का पोषण, धार्मिक अनुष्ठानोंका निष्पादन, गोरक्षा आन्दोलनका सञ्चालन, साधकोंको प्रोत्साहन, प्रवचन एवं 'कल्याण' सम्पादन, पुस्तक प्रकाशन द्वारा समाजको प्रबोधन, इस प्रकारके अनेक लोकोपकारी कार्य भाईजी द्वारा होते रहते थे। लीलाराज्यमें लीन रहते हुए एक ओर लोकसे अतीत लीला सिन्धुमें तल्लीनता और दूसरी ओर लोकके सम्बन्धित विविध कार्य-क्षेत्रीय कर्तव्य-पालनकी तत्परता ऐसी दो विरोधी धाराओंका जीवनमें प्रवाह एक सर्वथा अद्भुत तथ्य है। इस अद्भुत तथ्यने भाईजीके जीवनको एक लोकोत्तर विशिष्टतासे समन्वित कर दिया है। ऐसे आदर्श संतका उदाहरण अन्यत्र भला कहाँ मिलता है? बस गृहस्थ संत भाईजीके समान एक मात्र भाईजी ही हैं।

भाईजीकी इस दिव्य स्थितिसे सम्बन्धित एक तथ्यकी ओर संकेत करना अति आवश्यक है। भाव-समाधिकी स्थितिमें भाईजीकी वृत्तियाँ श्रीराधा-माधवके लीला सिन्धुमें लीन रहती, इतनी तल्लीन रहती कि जगत्‌के कार्य छूट जाते और शरीरकी सुधि भी नहीं रहती। भाव-समाधिकी ऐसी स्थितिमें भाईजी घण्टों-घण्टों रहते पर ऐसा भी होता तो था ही जब भाव-समाधिकी स्थिति नहीं रहती थी। तब हम लोगोंके देखनेमें यही आता था कि वे 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादनका कार्य कर रहे हैं और उनके द्वारा लोकोपकारके विविध कार्य सम्पन्न हो रहे हैं। उसे देखकर

यही लगता था कि भाईजी सामान्य स्थितिमें हैं। भाईजी द्वारा सम्पन्न होनेवाले विविध और विभिन्न कार्य व्यापारोंको देखकर भले ही यह कह लिया जाय कि उनकी स्थिति सामान्य है, पर वास्तविकता यह है कि साधारण-सी लगनेवाली उस सामान्य स्थितिमें भी भाईजीका मन श्रीराधा-माधव-के लीला राज्यमें विहरण करता रहता था। उस सामान्य स्थितिमें यदि उनके शरीरके द्वारा लोकके अनेक कार्य सम्पन्न होते रहते थे तो उसीके साथ-साथ उनका मन लीला सिन्धुकी लहरोंपर सन्तरण करता रहता था। लहरों पर सन्तरण करते-करते जब मन श्रीराधा-माधवके लीला सिन्धुमें गहरे उतरकर अतल-तलमें निमग्न हो जाता, तब बाह्य कार्य व्यापारको सम्पन्न कर सकनेकी स्थिति रहती नहीं और उनका शरीर निश्चेष्ट निस्पन्द हो जाता। इस भाव-समाधिके समयकी कोई अवधि नहीं रहती। जीवनके परवर्ती वर्षोंमें भाईजी श्रीराधा-माधवके लीला-राज्यसे कभी विलग हुए ही नहीं, केवल होता यह कि लीला राज्यमें उनकी तल्लीनता कभी घनीभूत हो जाती और कभी सामान्य-सी रहती।

भाईजी चाहते थे कि मेरी वृत्तियाँ लीला-सिन्धुमें गहरी न उतरें, परन्तु यह उनके बसकी बात नहीं रह गयी थी, वे विवश थे। कभी-कभी स्वयंका स्वयंसे संघर्ष हो जाता था और वर्जन करते-करते ही भाव-समाधिकी स्थितिका प्रायः अवतरण हो जाया करता था। किसी संतके जीवनके सम्बन्धमें ऐसी बात क्वचित् ही किसीको देखने-सुनने या पढ़नेको मिलती हो जो स्वयं ही अपनी वृत्तिको 'इधर'

(अर्थात् जागतिकतासे) लगाये रखनेका प्रयत्न कर रहा हो फिर भी भाव-समाधि लग जाये । भाईजी किसी रुग्ण व्यक्तिसे मिलनेके लिये नगरमें गये हैं और वापस लौटते कारमें ही वृत्तिने शारीरिक धरातलको छोड़ दिया, भाईजी गीता-वाटिकामें श्रद्धालु भक्तोंके सामने प्रवचन दे रहे हैं, कमरेके एकान्तसे निकल करके समुदायके मध्य बैठे हुए इसलिये बोल रहे हैं कि वृत्ति जागतिक धरातलपर टिकी रहे पर प्रवचन देते-देते ही शारीरिक इन्द्रियोंने अपना कार्य व्यापार समेट लिया और श्रोता समूह निश्चेष्ट निस्पन्द भाईजीको निहार रहे हैं । भाईजी शौचालयसे आकर मिट्टीसे हाथ धो रहे हैं, पर धोते-धोते ही शरीरकी विस्मृति हो गयी और वृत्तियाँ लीला राज्यमें विहरण करने लग गयीं । भाईजी छतपर टहल रहे हैं, पर टहलते टहलते पाषाणवत् खड़े हो गये और फिर निकटवर्ती जनोंको उनके निश्चेष्ट-निस्पन्द शरीरकी सम्भालके लिये तत्पर हो जाना पड़ा । भाईजी आसनपर बैठे-बैठे 'कल्याण' का सम्पादन कार्य कर रहे हैं, उनकी लेखनी कागजपर चल रही है, चलते-चलते लेखनी अङ्गुलियोंसे छूटकर कागजपर गिर पड़ी और भाईजी एक लम्बी अवधिके लिये भाव-समाधिमें लीन हो गये । वास्तवमें भाईजीकी यह स्थिति लोक चक्षुसे सर्वथा अतीत है तथा मन, बुद्धि, चित्तसे परेके स्तर की है । यह पूर्णतः यथार्थ है कि प्राकृतिक शब्दोंके माध्यमसे और प्राकृतिक मन, बुद्धि द्वारा उस अप्राकृतिक स्थितिका स्वरूप समझा ही नहीं जा सकता ।

श्रीविश्वनाथदास उत्तर प्रदेशके राज्यपाल रह चुके थे,

तथा उड़ीसाके प्रसिद्ध राजनीतिक नेता थे। भाईजीके समर्थ सहयोगसे वैदिक ज्ञानके प्रसारके लिये उन्होंने 'भारतीय चतुर्धाम वेद भवन न्यास'की स्थापना की थी। उनका आग्रह था कि भाईजी संयुक्त मन्त्री पदपर रहकर न्यासके कार्यका सञ्चालन करें। अपनी विवशता व्यक्त करते हुए ५ मई १९६७ को भाईजीने उन्हें एक पत्र लिखा था। उस पत्रमें भाईजीने स्वयं ही अपनी उस अनिर्वचनीय स्थितिकी ओर संकेत किया है। पत्रका एक अंश इस प्रकार है—

"इधर बहुत वर्षोंसे मेरा अन्तर्मन निवृत्तिप्रिय हो रहा है। इसीसे मैं प्रायः प्रतिदिन ही अधिक समय एकान्त बन्द कमरेमें रहता हूँ। लोगोंसे मिलने जुलनेकी वृत्ति नहीं होती। साथ ही इधर कुछ वर्षोंसे भगवत्प्रेरित ही एक विचित्र परिस्थिति और आ गयी। उसे मैं प्रकाश नहीं करना चाहता और इसीलिये मैंने उसको 'मस्तिष्क ठीक न रहना' की संज्ञा दे रखी है। बात यह है कि अकस्मात् ऐसा हो जाता है कि इन्द्रियोंकी, मनकी सारी क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। जगत्का सर्वथा लोप हो जाता है, केवल प्राण चलते रहते हैं। शरीर जिस अवस्थामें इस प्रकारकी स्थिति होनेके आरम्भमें था, वैसे ही बैठा या पड़ा रहता है। आँखें खुली हों तो भी दिखता नहीं, क्योंकि कोई देखनेवाला ही नहीं रहता। इसे समाधि कहिये या और कुछ। पहले तो किसी समय ऐसी स्थितिकी मैं चाह करता था—उसके लिये प्रयत्न करता था; अब कोई प्रयत्न न करने पर भी, वरन् कभी-कभी तो वृत्तियोंको बलात्कारसे संसारमें लगानेकी चेष्टा करनेपर भी अकस्मात् ऐसा हो

जाता है और यह स्थिति कुछ मिनटोंसे लेकर १५–२० घण्टोंतक भी रह जाती है। उस समय शरीर, मन, बुद्धि सर्वथा अक्रिय रहते हैं। पहले यह स्थिति कई दिनों बाद हुआ करती थी, अब तो बहुत जल्दी-जल्दी हो जाती है। इससे बहुत सँभलकर रहना पड़ता है। वस्तुतः इस स्थितिमें प्रवृत्तिके कार्योंका सर्वथा त्याग ही सुविधाजनक तथा वाञ्छनीय है। पर मैं प्रवृत्तिके कार्योंमें रहता हूँ, इससे कई बार वृत्तियोंको बलात् संसारमें बनाये रखनेका प्रयत्न करना पड़ता है।"

भाईजीके जीवनका यह स्वरूप कितना विलक्षण है। शास्त्र-मर्मज्ञ एक संतने एक बार कहा था कि ऐसा उदाहरण ग्रन्थोंके पृष्ठोंपर कभी पढ़नेको भी नहीं मिलता। स्वर्गाश्रम, डालमिया-कोठीमें एक बार भाईजी भाव-समाधिमें थे। कुछ अन्तरङ्ग स्वजन पासमें बैठे हुए समाधिस्थ भाईजीका दर्शन कर रहे थे। तभी उनकी समाधि शिथिल हुई। एक श्रद्धालुने भाईजीसे भाव-समाधिकी स्थितिके बारेमें कुछ जिज्ञासा व्यक्त की। उस श्रद्धालु जिज्ञासुके आग्रहको देखकर भाईजीने बड़े संकोचके साथ कहा—

"मैं इस स्थितिके विषयमें विस्तारसे बतलानेमें लाचार हूँ। भगवत्कृपासे कैसा क्या होता है—भगवान् जानें। मैं तो अपनेको एक अनिर्वचनीय आनन्दकी स्थितिमें पाता हूँ। स्थितिकी ऐसी सम्भावना होते ही मैं कमरा बन्द कर लेता हूँ। पर कभी-कभी हठात् सब इन्द्रियोंका कार्य एकाएक बन्द हो जाता है और मैं जहाँ, जिस अवस्थामें होता हूँ, उसी अवस्थामें रह जाता हूँ उस अवस्थामें आँखे खुली रहनेपर भी दिखायी नहीं पड़ता,

कानोंसे सुनता नहीं, त्वक्से स्पर्शका अनुभव नहीं होता। इस प्रकार जब इन्द्रियोंका कार्य होना बन्द हो जाता है; तब मन निष्क्रिय हो जाता है और मनके निष्क्रिय होनेसे बुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। कभी सब इन्द्रियोंका कार्य एकाएक एक साथ ही बन्द हो जाता है और कभी-कभी एक-एक इन्द्रियका कार्य बन्द होते-होते सब इन्द्रियोंके कार्य बन्द हो जाते हैं। कार्य बन्द होनेमें क्रम नहीं है। वृत्ति इन्द्रियोंसे हटकर 'उधर' में केन्द्रित हो जाती है। 'उधर' का अर्थ या स्वरूप समझाया नहीं जा सकता। जब बाह्य ज्ञान पूरा हो जाता है, तब 'उधर' की स्मृति नहीं रहती और जब अधूरा बाह्य ज्ञान होता है, तब 'उधर' की कुछ स्मृति तो रहती है, पर वाणीमें आ नहीं सकती और जितनी वाणीमें आ सकती है, उसको भी बताना सहज नहीं है। वृत्ति लौटनेमें भी कभी थोड़ी-थोड़ी वृत्ति आती है, कभी एक साथ ही सारी वृत्ति आ जाती है।

जब वृत्ति जाती है, तब यह भी स्मरण नहीं रहता कि कहाँ हूँ, सामने कौन है। पर यह भी उस समयकी वास्तविक स्थिति नहीं है; क्योंकि इन्द्रियोंके कार्योंका रुक जाना, मन-बुद्धिकी वृत्तियोंसे जगत्का सर्वथा त्याग हो जाना और पूर्णतया वृत्तिका 'उधर' लग जाना ही 'भागवती स्थिति' नहीं है। जबतक वृत्तिजन्य 'इधर' का त्याग और वृत्तिजन्य 'उधर' का ग्रहण है, तबतक प्रकृतिराज्यमें ही स्थिति है। 'भागवती स्थिति' में मन-बुद्धि-अहंकी सत्ता नहीं रहती; उनके स्थानपर भागवतसत्ता आ जाती है, जिसका ज्ञान भी भगवत्सत्तामें ही होता है, अन्य किसीको नहीं।

आजकल वृत्ति जगत्को कम पकड़ती है, 'उधर' अधिक जाती है और 'भागवती स्थिति' हो जाती है।"

जब भाईजीकी स्थिति सामान्य धरातलपर होती तो लोग अपनी समस्याओंका समाधान प्राप्त करनेके लिये उनके पास आया करते थे। जिनसे स्नेहका सम्बन्ध था उनका आशा लेकर भाईजीके पास आना स्वाभाविक था। किन्तु अब भाईजीका मन ऐसे धरातलपर नहीं था कि वे उन सांसारिक समस्याओंका समाधान बतला सकें। अपनी विवशता और उसके हेतुकी अभिव्यक्ति एक स्वरचित पदमें भाईजीने स्वयं ही की है, जो 'कल्याण' में प्रकाशित भी हुआ है। वह पद है—

नाथ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान।
हटा असत् माया का पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन ज्ञान॥
नहीं रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोड़ कर तुमको एक।
मिथ्या जगमें रमने वाले, रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक॥
आते लोग, सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात।
सुलझानेका उन्हें पूछते साधन, सविनय कर प्रणिपात॥
कहूँ उन्हें, समझाऊँ क्या मैं, जब न दीखता कुछ सत् सार।
सुलझाने वाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार॥

दैनन्दिन कार्योंको करते-करते ही भाईजी भाव-समाधिमें लीन हो जाते थे, परन्तु कई बार संघर्ष-पूर्ण परिस्थितिके मध्य भी उनको भाव-समाधिमें निमग्न होते हुए देखा गया। सन् १९६७ में अखिल भारतीय स्तरपर गोरक्षा आन्दोलन चल रहा था। उसके प्रमुख सात सूत्रधारोंमेंसे भाईजी भी एक थे। आन्दोलन जब चरम सीमापर था तो

भाईजीकी व्यस्तता बहुत बढ़ गयी। उन दिनों 'कल्याण' का सम्पादन कार्य भी गौण पड़ गया था, इतना ही नहीं, भोजन एवं विश्राम भी अल्प हो गया था। पत्र लिखना, वक्तव्य देना, संदेश भेजना, उत्साहित करना आदि सम्पूर्ण कार्य सारे दिन तत्परता पूर्वक चलते रहते थे। टाइप किये हुए कागजोंको देखकर उनपर हस्ताक्षर करके देशके विभिन्न स्थानोंपर भेजना पड़ता था। एक दिनकी बात है, ऐसी व्यस्तता प्रातःकालसे रात्रिके दस बजे तक बनी रही। ज्यों ही अन्तिम लिफाफा भाईजीने भिजवाया उसके तुरन्त बाद ही देखा कि भाईजी समाधिस्थ हैं। निकटस्थ लोगोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। ऐसा लगा मानो सङ्घर्ष पूर्ण परिस्थिति, और शान्तिपूर्ण परिस्थिति, इन दोनोंमें भाईजीकी भेद-बुद्धि सर्वथा समाप्त हो गयी है और उनकी मान्यताके अनुसार इन दोनों परिस्थितियोंमें प्राणधन श्रीश्यामसुन्दरका लीला-विलास चल रहा है। यह एक अनहोनी बात थी। सचमुच भाईजी सर्वत्र और सर्वथा अपने प्रियतमकी मधुर-लीलाओंमें ही तल्लीन रहा करते थे। भाईजीके जीवनके अन्तिम दस-बारह वर्ष इसी प्रकारकी लीला-तल्लीनतामें ही व्यतीत हुए।

भाईजीके नित्य सहचर पूज्य श्रीबाबाके जीवनका एक प्रसंग उल्लेखनीय है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है पूज्य बाबा पहले सर्वथा अद्वैतवादी थे पर भक्ति-भाव-सिन्धु भाईजीके संस्पर्शसे उनकी जीवन-धारा बह चली श्रीराधा-कृष्णकी रसोपासनामें। जब पूज्य बाबाने सं० २०१३ की शरद् पूर्णिमाकी मध्य रात्रिमें काष्ठ मौनका व्रत लिया था,

उस समय भाईजीके गरिमामय जीवनकी ओर रूपकके माध्यमसे मात्र संकेत करते हुए कहा था—

"भाईजीके सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं कहूँगा, वे यहीं बैठे हैं। मैं श्रीहनुमानप्रसाद रूपी गुलाब-वृक्षकी डालीसे खिला हुआ एक पुष्प हूँ। हँसता हूँ। गुलाबकी डालीमें सृजनकी शक्ति रहती है।"

महाप्रयाणकी भूमिका

जगत्के बड़े-बड़े संतोंने शरीर छोड़नेके पूर्व भयङ्कर व्याधि एवं कष्टका भोग किया है। भाईजी भी इस संत-परम्परामें रहे। भगवान्की इच्छा थी कि विदा होनेके पूर्व भाईजीका पार्थिव शरीर भी ऐसी व्याधिसे ग्रस्त हो जिससे सभी देख लें कि वे इससे सर्वथा अप्रभावित थे। सभीने देखा कि वे व्याधिके केवल द्रष्टामात्र थे।

जिस भीषण व्याधिको निमित्त बनाकर भाईजीने अपनी लीला संवरण की, उसके सर्वप्रथम दर्शन २२ अप्रैल सन् १९६९ को ऋषिकेशमें हुए थे। पीछे उसके दौरे बराबर आते रहे। ४ नवम्बर १९७० को जो भीषण दौरा हुआ था, उसके बाद भाईजी सामान्य शारीरिक स्थितिमें नहीं देखे गये। डाक्टरोंका अनुमान था—पेटमें कैंसर होनेका। जनवरी १९७१ के अन्तिम सप्ताहमें जब डाक्टर महोदयकी आँखें सजल हो गयी तब भाईजीने कहा—आप लोग मुझे प्रेमसे देखने आते हैं तो मैं भी प्रेमसे दिखा देता हूँ।··· मेरा दृढ़ विश्वास है जो होना है, वह होगा ही। ······भीषण कष्ट है पर अंदर-ही-अंदर मुझे बड़ा आनन्द है पीड़ाके रूपमें भगवान्के सम्पर्ककी अनुभूति हो रही है।

उस समय भी भाईजी डाक्टरोंको उनके अनुरूप साधन बताते रहते थे—'आप लोगोंके पास जो रोगी आते हैं, उनकी सेवा भगवान्की सेवा है। वास्तवमें रोगीके रूपमें भगवान् ही आपसे सेवा चाहते हैं। आपकी वह सेवा भगवान्की प्राप्ति करानेवाली हो जायेगी।'

फरवरीके प्रथम सप्ताहमें डाक्टरोंको चिन्तित देखकर भाईजीने कहा—आप लोग जब देखने आते हैं, उस समय मुझे रोग याद आता है; अन्यथा जब मैं दिनमें कमरा बन्द किये अकेला रहता हूँ, तब रोगकी स्मृति प्रायः मुझे नहीं रहती। मैं अपने 'काम'में—भगवत-स्मरणमें लगा रहता हूँ।'

अब यह स्पष्ट होने लग गया था कि भाईजीके भौतिक कलेवरका भगवान्की इच्छानुसार अब अवसान होना था। शरीर उसी ओर अग्रसर हो रहा था। कोई भी उपचार सफल नहीं हो पा रहा था। घरवाले, मित्र, स्वजन, परिकर, डाक्टर—सभी चिन्तित थे, पर इस भीषण स्थितिमें भी कोई निश्चिन्त थे तो केवल भाईजी। उनपर व्याधिका कोई प्रभाव नहीं था। यहाँ तक कि जब बाहरसे डाक्टरोंको बुलानेकी बात होती तो भाईजी कहते—'बाहरसे डाक्टरोंको बुलानेमें जो रुपये खर्च कर रहे हो, वह गरीबोंकी सेवामें खर्च करने चाहिये।'

रोग बढ़ता जा रहा था तथा पोषण-तत्त्व किसी भी रूपमें शरीरमें नहीं पहुँच पा रहा था। इससे भाईजीको बोलनेमें भी कष्ट होने लगा। ८ मार्चको अचानक उनके मनमें आया—अपनी इस समयकी अनुभूतिको लिखित रूपमें जगत्को दे जाऊँ। उन्होंने सर्वथा अशक्तिकी अवस्थामें

काँपते हुए हाथोंसे कलम पकड़ी और लेटे-लेटे दो पद लिखे, जो उनकी मनःस्थितिके सजीव चित्र हैं। जगत्‌के लिये उनके वे अन्तिम लिखित उपदेश हैं। दुःखकी बात है कि हाथ काँपनेके कारण लिखावट अस्पष्ट होनेसे तथा लिपि बङ्गला होनेसे वे पूरे पढ़नेमें नहीं आये। उनका जितना अंश स्पष्ट हो पाया है, वह नीचे दिया जा रहा है—

अबकी बार व्याधि·····पीड़ा सज प्रिय तुम आये।
बीच-बीचमें स्वाँग बदलते रहते तुम मन भाये॥
देख तुम्हारी इस आकृतिको घरवाले थर्राये।
··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···

छोड़ शरीर तुम्हें पा नित मैं सानँद मौन समाऊँ।
··· ··· ··· ··· ··· ··· मैं सुख — सङ्ग सिधाऊँ॥
पर कैसे बच्चों, मित्रों, घरवालोंको समझाऊँ।
कैसे आश्वासन दूँ, कैसे उन्हें रहस्य बताऊँ॥

× × × ×

मेरी करुण प्रार्थना सुनकर इन्हें तुम्हीं समझा दो।
··· ··· ··· ···सबको कुछ अपना मर्म जता दो॥
हो जायें ये निहाल जानकर गूढ़ रहस्य तुम्हारा।
मिट जाये तुरन्त इनका भ्रम-शोक, मोह-दुख सारा॥
पा जायें ये तुमसे, प्यारे! ज्ञान-प्रेम सुख-आलय।
सदा-सर्वदाको मिट जाये मायामय दुःखालय॥
तुमसे होता नहीं अमङ्गल कभी किसीका, प्यारे।
करते नित मङ्गल··· ··· ··· ··· ··· ··· ···॥
भोक्ता-भोग्य-भोग-सब कुछ ही यहाँ बने हो तुम ही।
खेल-खिलौना बने··· ··· ··· ···खेलते तुम ही॥

कभी··· ··· ··· ···सब बन स्वयं नाचते-गाते।
कभी व्याधि··· ···दुख-शोक-मोह सज पड़े सिसकते॥
लीलामय! तुम नित मनमानी लीला करते रहते।
··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···॥
क्यों वैसी रचना करते हो, मजा तुम्हें क्या आता।
होता कोई··· ··· ··· ···तो इसे समझ कुछ पाता॥

× × × ×

नित्यलीलालीन

प्रायः सभी स्वजनों, श्रद्धालुओंको समाचार मिल गया था कि अब भाईजीका पार्थिव शरीर अवसानके पथपर है। लोग दूर-दूरसे दर्शनोंके लिये आ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो भाईजी भीषण व्याधि-कष्ट सहकर भी सबको अन्तिम दर्शनोंका अवसर प्रदान कर रहे हैं। १३ मार्चकी रात्रिमें भाईजी उपस्थित स्वजनोंको बोले—'जिन-जिनको मैंने भगद्धाम-प्राप्तिका आश्वासन दिया है, उन्हें निश्चितरूपसे उसकी प्राप्ति हो जायेगी, उन्हें विश्वास रखना चाहिये।' सबको ऐसे लगा जैसे वे विदाई ले रहे हों। सभीके नेत्र बरस पड़े। १४ मार्चको रात्रि में साढ़े बारह बजे जब डॉ० चक्रवर्ती उनकी नाड़ी अनुभव करनेकी असफल चेष्टा कर रहे थे, भाईजी मन्द स्वरमें बोले—'विचार शक्ति बिल्कुल ठीक है; स्मरण शक्ति कभी ठीक रहती है, कभी नहीं। मुँहसे बोला नहीं जाता।' इतना कहकर उन्होंने अपने काँपते हुए दाहिने हाथसे डाक्टर साहबसे इशारेमें पूछा—'आपने भोजन किया कि नहीं?' जहाँ घड़ी-पल गिने जा रहे थे, वहाँ भाईजीको डाक्टर साहबके भोजनकी चिन्ता

बनी थी । यह है उनकी वास्तविक स्थितिकी एक झलक ।

भगवन्नामकी निष्ठाका भाईजी अन्तिम श्वासतक निर्वाह करते रहे । २० मार्चकी रात्रिकी बात है । भाईजी के होंठ हिल रहे थे, मानो काँप रहे हों । डॉ० चक्रवर्ती महोदयके मनमें आया कि मुँहमें दाँत न रहनेसे होंठ काँप रहे हैं । वे भाईजीसे बोले—'आपके होंठ काँप रहे हैं, दाँत लगा दिये जायँ । कम्पन दुर्बलता बढ़ायेगा ।' भाईजीने वास्तविक बात बता दी—'जप कर रहा हूँ ।' यह उस समयकी बात है जब उनके शरीरका प्रत्येक कोष (cell) पानीकी एक-एक बूँदके लिये तरस रहा था । मुंहमें ड्रॉपरसे बूँद-बूँद करके पानी जीभपर डाला जा रहा था ।

२१ मार्चको दोपहरमें कलाईके समीपसे नाड़ी लुप्त हो गयी, रक्त-चाप बहुत कम हो गया । धीरे-धीरे नाड़ीने कोहनीका स्थान भी छोड़ दिया, पर भाईजीकी विचार-शक्ति वैसी ही बनी हुई थी । सभी डाक्टर-वैद्य आश्चर्यचकित थे । रात्रिमें लगभग ११ बजे (अर्थात् शरीर छूटनेके ६ घण्टे पूर्व) जब डा० चक्रवर्ती एवं डा० शर्मा उन्हें देख रहे थे, तब दाहिने हाथके इशारेसे पूछा—'आप लोगोंने भोजन किया है या नहीं ?' भाईजीकी इस प्यार भरी संभालने डाक्टरोंके हृदयको मथ दिया, उनके नेत्र बरस पड़े ।

२२ मार्चका प्रातःकाल हुआ । श्वासकी गति बढ़ गयी थी । सब लोगोंने अनुभव किया, अब शरीरके अवसानका समय दूर नहीं है । लगभग साढ़े सात बजे पूज्य बाबा भी आ गये । अन्तमें भाईजीने अपने काँपते हुए दोनों हाथ उठाये और उन्हें मिला लिया—सबसे बिदाई ले ली । लगभग

सात बजकर पचपन मिनटपर वे नेत्र जिनसे अनवरत स्नेह-वर्षा होती थी, सदाके लिये मुँद गये----अपने प्रियतमकी नित्यलीलामें लीन हो गये।

हजारोंकी संख्यामें जन समूह गीतावाटिकामें एकत्रित था। सभीके नेत्र बरस रहे थे। लगभग दो बजे स्नानादि कृत्योंका समापन करके भाईजीका पार्थिव देह अर्थीपर विराजित किया गया। अर्थी नीचे बरामदेमें लायी गयी जहाँ सभीने परिक्रमा, प्रणाम, श्रद्धा-सुमन अर्पित किये। वहाँसे अर्थी श्रीराधाष्टमी पंडालमें लायी गयी, तत्पश्चात् अन्त्येष्टि क्रिया विधिवत् गीतावाटिका गिरिराज-परिसरमें सम्पन्न हुई करुण नाम-कीर्तन चल ही रहा था। विधिका विधान भाईजी की मुख्य साधना-स्थली गीतावाटिकाको ही उनके शरीरके अणु-परमाणु समर्पित हो गये। उसी स्थानपर समाधिके रूपमें एक भव्य स्मारकका निर्माण हुआ, जहां आजभी सहस्रों श्रद्धालुअपने-अपने भावानुसार प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं।
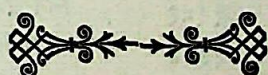
"वस्तु तुम्हारी तव चरणोंमें अर्पण कर
कर रहा प्रणाम।"

श्रीभाईजीकी रचनायें

पुस्तकका नाम	प्रथम प्रकाशन-का सम्वत्
१. मनको वशमें करनेके कुछ उपाय	१९८०
२. पत्र पुष्प (पाँचवाँ भाग) भजन-संग्रह	१९८०
३. स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी	१९८२
४. ब्रह्मचर्य	१९८२
५. समाज-सुधार	१९८५
६. मानव-धर्म	१९८६
७. साधन-पथ	१९८६
८. भक्त बालक	१९८७
९. भक्त नारी	१९८७
१०. आनन्दकी लहरें	१९८८
११. तुलसी दल (भगच्चर्चा भाग १)	१९८८
१२. भक्त पंचरत्न	१९८८
१३. नैवेद्य (भगवच्चर्चा भाग २)	१९८९
१४. आदर्श भक्त	१९९०
१५. प्रेमी भक्त	१९९०
१६. गोपी प्रेम	१९९१
१७. प्रेम दर्शन	१९९२
१८. कल्याण कुञ्ज (भाग १)	१९९२
१९. दिव्य सदेश	१९९२
२०. उपनिषदोंके चौदह रत्न	१९९२
२१. मारवाड़ी धार्मिक गीत	१९९२
२२. वर्तमान शिक्षा	१९९३
२३. प्राचीन भक्त	१९९६
२४. भवरोगकी रामबाण दवा	२००१
२५. लोक परलोकका सुधार (कामके पत्र) भाग १	२००१
२६. लोक परलोकका सुधार (कामके पत्र) भाग २	२००२
२७. हिन्दू क्या करें ?	२००२
२८. सत्संगके बिखरे मोती	२००७
२९. प्रार्थना	२००७
३०. हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप	२००८
३१. लोक परलोकका सुधार (कामके पत्र) भाग ३	२००८
३२. कल्याण कुञ्ज (भाग २)	२००८
३३. सिनेमा मनोरञ्जन या विनाशका साधन	२००९
३४. नारी शिक्षा	२००९
३५. भगवच्चर्चा (भाग ३)	२००९
३६. लोक परलोकका सुधार (काम केपत्र) भाग ४	२००९
३७. लोक परलोकका सुधार (कामके पत्र) भाग ५	२००९
३८. कल्याण कुञ्ज (भाग ३)	२००९
३९. भगवच्चर्चा (भाग ४)	२०१०
४०. भगवच्चर्चा (भाग ५)	२०१०

पुस्तकका नाम	प्रथम प्रकाशन-का सम्वत्
४१. भगवच्चर्चा (भाग ६)	२०१०
४२. विवाहमें दहेज	२०१०
४३. बलपूर्वक देवमन्दिर प्रवेश और भक्ति	२०१०
४४. दीन-दुखियोंके प्रति कर्तव्य	२०१०
४५. दैनिक कल्याण-सूत्र	२०१०
४६. जीवनमें उतारनेकी सोलह बातें	२०१४
४७. श्रीराधा नाम और राधा उपासना सनातन है	२०१४
४८, पद	२०१४
४९. श्रीराधा-माधव-चिन्तन	२०१८
५०. श्रीराधा-माधव-रस सुधा (षोडश गीत)	२०१८
५१. रास लीला-रहस्य	२०२०
५२. गीतामें विश्वरूप-दर्शन	२०२१
५३. रस और भाव	२०२२
५४. पूर्ण परात्पर भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव	२०२३
५५. मानव कल्याणके साधन (कल्याण कुञ्ज भाग ४)	२०२४
५६. दिव्य सुखकी सरिता (कल्याण कुञ्ज भाग ५)	२०२४
५७. सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ (कल्याण कुञ्ज भाग ६)	२०२४
५८. श्रीराधा-जन्माष्टमी व्रत महोत्सवकी प्राचीनता—महिमा और पूजा विधि	२०२५
५९. श्रीब्रज रस माधुरी	२०२५
६०. प्रार्थना पीयूष	२०२५
६१. मधुर (भाग १)	२०२५
६२. मधुर (भाग २)	२०२५
६३. कल्याणकारी आचरण	२०२६
६४. मेरी स्थितिका स्पष्टीकरण	२०२६
६५. श्रीराधा-माधव-चिन्तन परिशिष्ट	२०२६
६६. ब्रज रसकी लहरें	२०२७
६७. हरि प्रेरित हृदयकी वाणी	२०२७
६८. श्रीकृष्ण महिमाका स्मरण	२०२७
६९. श्रीराधा-माधवका मधुर रूप-गुण-तत्त्व	२०२७
७०. व्यवहार और परमार्थ	२०३०
७१. सुख और शान्तिका मार्ग	२०३०
७२. दाम्पत्य जीवनका आदर्श	२०३२
७३. परमार्थकी मन्दाकिनी (कल्याणकुञ्ज भाग ७)	२०३३
७४. सत्संग वाटिकाके बिखरे सुमन	२०३४
७५. परमार्थकी पगडंडिया	२०३४
७६. आरती माला	२०३४
७७. पद-रत्नाकर	२०३५
७८. शान्तिकी सरिता	२०३६
७९. समाज किस ओर जा रहा है	२०३६
८०. सुखी बनो	२०३६
८१. मानव जीवनका लक्ष्य	२०३७
८२. अमृत कण	२०३९
८३. सुखी बननेके उपाय	२०४१

Shri H. P. Poddar's writings reprodnced in English

1. The philosophy of love
2. Way to God realizaticn
3. Gopi's love fo Sri Krishna
4. Our present day educalion
5. The Divine name and Its practice
6. Wavelets of Bliss
7. The Divine Message
8. Trans cendent bliss and love
9. Neetarean Bliss of Sri Radha Madhav
10. Fountain of Bliss
11. Path to Divinity
12. Turn to God
13. Look Beyond the Veil
14. How to attain Eternal Happiness

आंशिक स्वरचित एवं सम्पादित पुस्तकें

पुस्तकका नाम	प्रथम प्रकाशन-का सम्वत्
१. भक्त चन्द्रिका	१९९०
२. भक्त सप्तरत्न	१९९०
३. भक्त कुसुम	१९९०
४. यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ	१९९०
५. भक्तराज हनुमान	१९९५
६. सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	१९९६
७. प्रेमी भक्त उद्धव	१९९६
८. महात्मा विदुर	१९९६
९. भक्तराज ध्रुव	१९९६
१० भक्त सौरभ	१९९६
११. भक्त सरोज	१९९६
१२. भक्त सुमन	१९९६
१३. ढ़ाई हजार अनमोल बोल (संत वाणी)	१९९६
१४. भक्त सुधाकर	२००८
१५. भक्त महिलारत्न	२००८
१६. भक्त दिवाकर	२००८
१७. भक्त रत्नाकर	२००८
१८. ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	२००९
१९. आरती संग्रह	२०१०

श्रीभाईजी द्वारा अनूदित साहित्य (टीका साहित्य)

१. श्रीरामचरित मानस
२. विनय पत्रिका
३. दोहावली
४. रास पञ्चाध्यायी

श्रीहरिः

संग्रहकर्त्ताका परिचय

श्रद्धेय भाईजीके अनन्य भक्त पूज्य श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीका जन्म राजस्थानके बीकानेर शहरमें भाद्रपद शुक्ल ८, शुक्रवार वि० स० १९५८ को एक धर्म परायण माहेश्वरी कुलमें हुआ था। पारिवारिक संस्कारोंके कारणवश बचपनसे ही इन्हें सत्संगकी लगन थी। चार वर्ष एवं सात वर्षकी उम्रमें क्रमशः मातृ तथा पितृ वियोगके फलस्वरूप इनका बाल्यकाल कष्टमय बीता। इसी कारण विधिवत् शिक्षा भी न पा सके। अल्पायुमें ही इन्होंने गीता पाठ शुरू कर दिया था, तथा श्रीइच्छालालजी जोशी, नाथ सम्प्रदायके स्वामी श्रीउत्तमनाथजी और श्रीलाली माईजीके सत्संगमें जाने लगे। सभीकी इनपर कृपा रही। घरेलू कारणोंसे बारह वर्षकी अल्पायुमें ही इन्हें व्यापार शुरू करना पड़ा। श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे इनकी भेंट सं० १९७९ में ऋषिकेशमें हुई। उनके व्यक्तित्वसे ये बहुत प्रभावित हुए। अतः अगले वर्ष जब सेठजी बीकानेर पधारे, तब उन्होंने उनके सत्संगका पूरा लाभ उठाया। सेठजीसे इनकी घनिष्ठताका उत्तरोत्तर विकास हुआ। सं० १९८० में बीकानेर प्रवास कालमें इनका भाईजीसे सम्पर्क हुआ। ये भाईजीके प्रति इतने आकर्षित हुए कि कुछ ही समय बाद व्यापार छोड़कर सदाके लिये अपने आपको भाईजीके चरणोंमें समर्पित कर दिया। इसके बाद भाईजी जब बीकानेर आते तो प्रायः उन्हींके घर रुकते थे। 'कल्याण'का प्रकाशन बम्बईमें आरम्भ होनेके बाद ये भाईजीके मुख्य सहयोगी बन गये। इन्होंने 'कल्याण'के प्रचारमें बड़ा परिश्रम किया। द्वार-द्वार घूम-घूमकर 'कल्याण'के सैकड़ों ग्राहक बनाये। 'कल्याण'के प्रारम्भिक अङ्कोंमें इनके बीकानेर स्थित मकानका पता भी दिया जाता था, जहाँपर 'कल्याण'के ग्राहक बनाये जाते थे। गीताप्रेसके उत्थानमें इनका महत्त्व पूर्ण योगदान रहा। गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंको घर-घर घूमकर बेचते थे।

सं० १९८४ में आश्विन कृष्ण पक्षमें भाईजीको जैसीडीहमें भगवान् विष्णुके दर्शन होनेपर उन्होने इनको तार देकर बीकानेरसे बुलाया। रात्रिमें भाईजीसे उन्होंने गोरखपुरमें जब जैसीडीहकी घटना सुनी उसी समय उन्होंने अपना जीवन भाईजीकी सेवाके लगानेका सङ्कल्प किया और तभीसे अपने जीवनका उद्देश्य भाईजीके जीवन सम्बन्धी तथ्योंका सग्रह करना बना लिया। सहयोगके अभावमें भी ये अपना काम बड़ी तत्परतासे करते थे। भाईजी कब कहाँ जाते हैं, उनसे कौन और कब मिलने आता है, सत्संगमें उन्होंने क्या कहा आदिका विवरण और भाईजीके पत्रोंकी प्रतिलिपि नियमित

रूपसे संग्रह करते। वे सदैव भाईजीके साथ रहनेकी चेष्टा करते तथा उनके जीवन सम्बन्धी छोटी-से-छोटी बात एवं घटनाको लिखते रहते थे। इनका यह कार्य भाईजीको रुचिकर नहीं था, क्योंकि भाईजी अपनी विशेषता द्योतक किसी चीजको रखना नहीं चाहते थे। अतः उन्हें भर्त्सना एवं रोष सहना पड़ता। श्रद्धास्पद द्वारा किया गया तिरस्कार और रोष ये प्रसाद समझकर प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करते। श्रीभाईजीके प्रति इनकी अनन्य निष्ठा थी। अपनी निष्ठानुसार वे प्रायः गाया करते थे।

और कोऊ समझें सो समझें, हमकूँ इतनी समझ भली।
ठाकुर भीमकुमार हमारे, ठकुराइन सियराम-लली॥

इनकी मुख्य रुचि थी, संसारके भूले-भटके संतप्त लोगों एवं दुःखी विधवाओंको भाईजी एवं सेठजीके सम्पर्कमें लाना। लोगोंको इधर लगानेमें ये अपने अपमानकी भी परवाह न करके उनके घरोंमें चाहे जब चले जाते चाहे रात्रिके बारह बजे भी अथवा प्रातः चार बजे भी। सेठजी कई बार कहा करते थे 'दुजारीजीने जितने व्यक्तियोंको सत्संगमें लगाया उतने शायद ही किसी एक व्यक्तिने लगाया।' स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजको इन्होंने ही सेठजीसे मिलाया। भाईजीने अपने 'वसीयतनामा'में लिखा है— "श्रीदुजारीजी वड़े ही सत्संग प्रेमी थे। बीकानेरसे सम्मान्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी-सरीखे सदाचारी विद्वान्को राज्यकी उच्च सेवासे छुड़ाकर 'कल्याण' में लानेवाले दुजारीजी है।" "दुजारीजीने साधु श्रीच्यवनरामजी, श्रीईश्वर-दासजी डागा श्रीवद्रीप्रसादजी आचार्य आदिको भी इधर प्रेरित किया था।" "मेरे पत्रादिके संग्रहमें मेरी इच्छा न होनेपर भी दुजारीजी लगे रहते थे। उनका प्रधान काम एक ही था—येन-केन प्रकारेण लोगोंको सत्संगमें लगाँना। अपमान-झिड़कियाँ सहते, पर अपने स्वाभाविक कार्यसे कभी विचलित नहीं होते, बड़े निष्ठावान् थे।"

वे न केवल औरोंसे बल्कि अपने परिवारवालोंसे भी सदा यही कहते थे—'अपना सब कुछ छोड़कर भाईजी और गीताप्रेसके कार्यमें लग जाओ।'

अपने जीवनकालमें विभिन्न प्रतिकूलताओंके कारण वे भाईजीकी जीवनी अत्यधिक इच्छा होते हुए भी मुद्रित नहीं करवा सके। साध मनमें लिये हुए ही वे फाल्गुन शुक्ल दशमी सं० २०१८ वि० को अपने उपास्य भाईजीका स्वागत करने गोलोक चले गये। आज विश्वको भाईजीके जीवनके विषयमें जो भी तथ्य प्राप्त है वे इन्हींके अथक परिश्रमका फल है।

('कल्याणपथः निर्माता और राही'के
आधार पर)

श्रीहरिः

पूज्य श्रीभाईजीके अमृतोपदेश

भगवान्

१. भगवान्की प्राप्ति इच्छासे होती है।

२. भगवान् प्राप्त होनेपर कभी बिछुड़ते नहीं।

३. भगवान्की प्राप्ति जब होती है, पूरी होती है।

४. भगवान्को प्राप्त करनेकी इच्छा होते ही पापोंका नाश होने लगता है।

५. भगवान्को प्राप्त करनेकी साधनामें शान्ति मिलती है।

६. भगवान्का स्मरण करते हुए मरनेवाला सुख-शान्तिपूर्वक मरता है।

७. भगवान्का स्मरण करते हुए मरनेवाला निश्चय ही भगवान्को प्राप्त होता है।

भोग

१. भोगोंकी प्राप्ति कर्मसे होती है, इच्छासे नहीं होती।

२. भोग बिना बिछुड़े कभी रहते नहीं।

३. भोगोंकी प्राप्ति सदा अधूरी ही होती है।

४. भोगोंको प्राप्त करनेकी इच्छा होते ही पाप होने लगते हैं।

५. भोगोंको प्राप्त करनेकी साधनामें अशान्ति बढ़ती है।

६. भोगोंका स्मरण करते हुए मरनेवाला अशान्ति और दु:खपूर्वक मरता है।

७. भोगोंका स्मरण करते हुए मरनेवाला निश्चय नरकोंमें जाता है।